RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN NUMBER : 2455-9717

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 11, अंक : 42, जुलाई-सितम्बर 2026
मूल्य 50 रुपये

वर्षा राग / उदय प्रकाश

1

बरसे मेघ भरी दोपहर, क्षण भर बूँदें आईं
उमस मिटी धरती की साँसें भीतर तक ठंडाईं
आँखें खोलें बीज उमग कर गगन निहारें
क्या बद्दल तक जा पाएँगे पात हमारे?

2

मैना डर कर फुर्र हो गई, बिजली तड़की
छींके के सपने में खोई पूसी भड़की
कैसी हलचल आसमान ने मचा रखी है
कल-परसों से नहीं किसी ने धूप चखी है

घड़ों-घड़ों पानी औटाओ,
मूसलधार गिराओ
लेकिन सब चुपचाप करो,
चिड़ियों को नहीं डराओ!

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

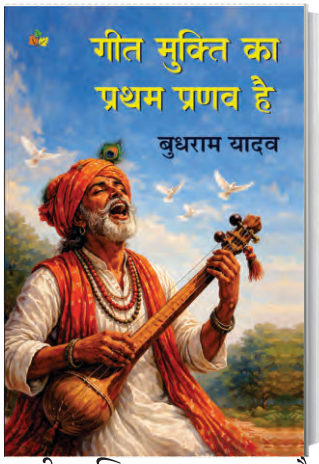

गीत मुक्ति का प्रथम प्रणव है
गीत संग्रह
बुधराम यादव
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-291-9

परवरिश एक नन्हीं परी की
डायरी
अभिषेक कुमार
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-63-8

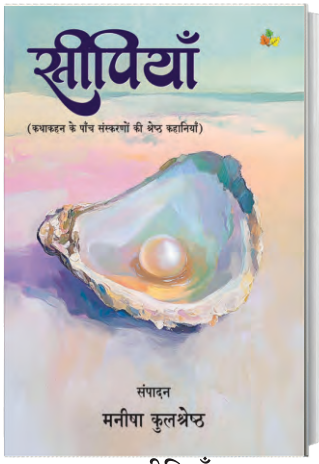

सीपियाँ
कहानी संकलन
संपादक- मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-36-2

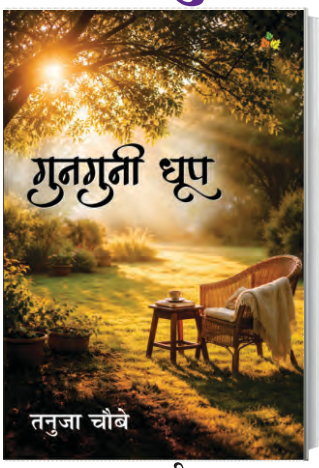

गुनगुनी धूप
कहानी संग्रह
तनुजा चौबे
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-42-3

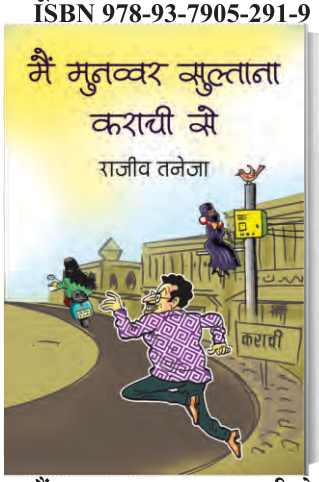

मैं मुनव्वर सुलताना कराची से
व्यंग्य संग्रह
राजीव तनेजा
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-94-2

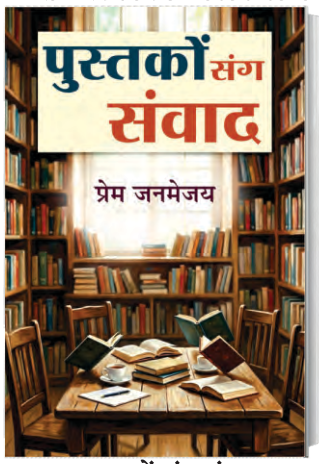

पुस्तकों संग संवाद
समीक्षा संग्रह
प्रेम जनमेजय
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-484-5

पंकज सुबीर का साहित्य- एक
अनुशीलन, शोधग्रंथ
डॉ. वर्षा गजानन पाटील
मूल्य- 600 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-56-0

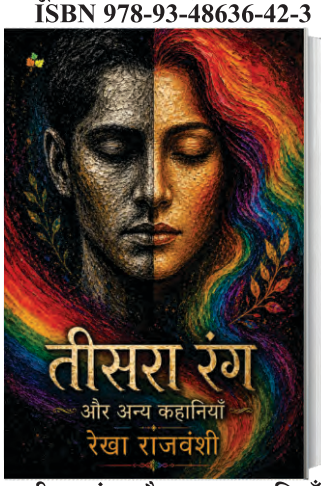

तीसरा रंग और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
रेखा राजवंशी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-015-1

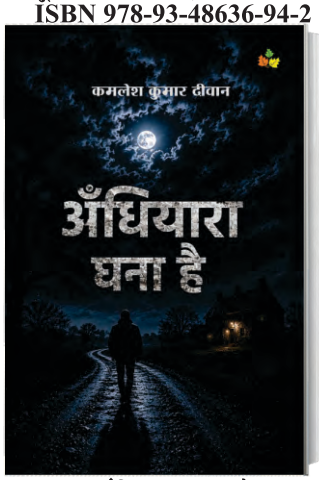

अँधियारा घना है
कविता संग्रह
कमलेश कुमार दीवान
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-000-7

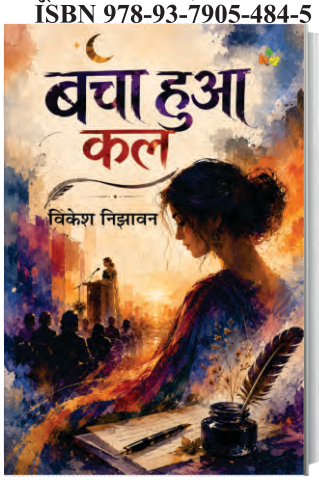

बचा हुआ कल
कहानी संग्रह
विकेश निझावन
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-007-6

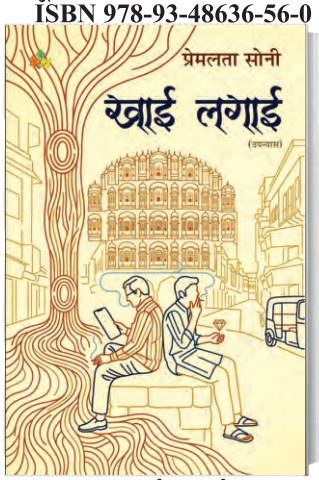

खाई लगाई
उपन्यास
प्रेमलता सोनी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-594-1

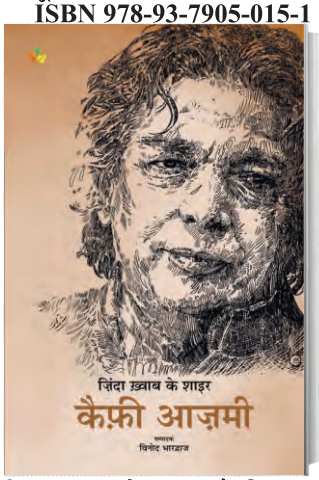

ज़िंदा ख़्वाब के शाइर कैफ़ी आज़मी
आलेख संग्रह
संपादक विनोद भारद्वाज
मूल्य- 400रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-074-8

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शॉप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com
Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं प्रकाशकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

ACCEPTED HERE
SHIVNA SAHITYIKI

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 42, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2026
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

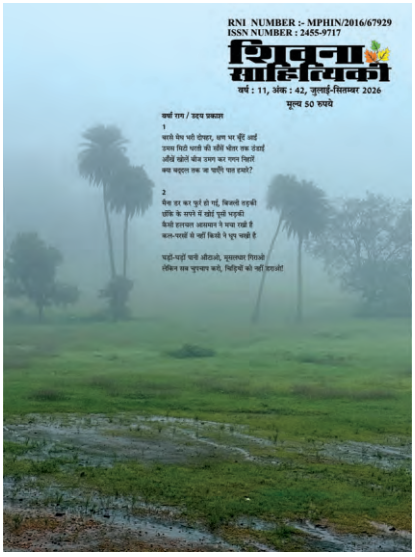

आवरण कविता
उदय प्रकाश

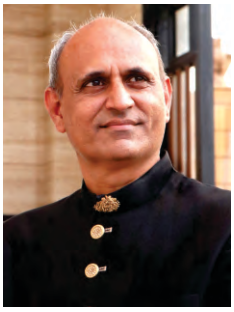

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

इस अंक में

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 11, अंक : 42,

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2026

आवरण कविता

वर्षा राग / उदय प्रकाश

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5

शोध आलोचना

दाग़-दाग़ उजाला

समीक्षक : वंदना वाजपेयी

लेखक : प्रज्ञा / 7

कुछ चाँद ने कहा कुछ उसने सुना

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : उर्मिला शिरीष / 10

बक्से का कोट

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा

लेखक : डॉ. अमरीश सिन्हा / 13

रेत होते ख़्वाब

समीक्षक : डॉ. अशोक वशिष्ठ

लेखक : मंजुश्री / 16

पर छवि कहाँ समाय

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे / 19

धूलकोट

समीक्षक : वंदना वाजपेयी

लेखक : मनीष वैद्य / 22

केंद्र में पुस्तक

सुर

समीक्षक : डॉ. मधु संधु, अतुल्य खरे, डॉ. सत्यनारायण

लेखक : नीलिमा शर्मा / 25

एक पुराना मौसम लौटा

समीक्षक : यतीन्द्र मिश्र, शैलेन्द्र शरण, दीपक गिरकर

लेखक : शहरयार / 30

उम्मीद की तरह लौटना तुम

समीक्षक : राजेश सक्सेना, कुंकुम गुप्ता, चारुमित्रा, अशोक अंजुम

लेखक : पंकज सुबीर / 33

पुस्तक समीक्षा

बीज और आकाश

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ममता सिंह / 38

जब से आँख खुली है

समीक्षक : मोहन कुमार डहेरिया

लेखक : लीलाधर मंडलोई / 40

साज़-बाज़

समीक्षक : डॉ. कुमारी उर्वशी

लेखक : प्रियंका ओम / 42

विचार और समय 2

समीक्षक : मधु संधु

लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 44

नयनभोग

समीक्षक : सीमा गुप्ता

लेखक : गोवर्धन गब्बी

अनुवाद : जसविन्दर कौर बिन्द्रा / 46

मन के चौहट्टे पर बोनसाई

समीक्षक : सुधा आदेश

लेखक : सुधा जुगरान / 48

कोई और रास्ता तथा अंतराल

समीक्षक : डॉ. स्वाति चौधरी

लेखक : प्रताप सहगल / 50

शिष्टाचार आयोग की सिफारिशें

समीक्षक : लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

लेखक : अरविंद मिश्र / 52

गधों का आदमी विमर्श

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : गोविंद सेन / 54

पहला मौसम

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : प्रेम रंजन अनिमेष / 56

दुनिया काठ की

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ज्योति जैन / 58

टेसू लेके ही टरे

समीक्षक : मधु संधु

लेखक : रेखा राजवंशी / 60

टनल

समीक्षक : डॉ. यशोधरा भटनागर

लेखक : सुनील चतुर्वेदी / 62

हरि सुमिरन

समीक्षक : विनय उपाध्याय

लेखक : डॉ. विनीता चौबे, संगीता चतुर्वेदी / 64

शोध आलेख

मुरारी गुप्ता के कथा साहित्य में युगीन संवेदना के स्वर

डॉ. विजेयता चारण / 65

विजयमोहन सिंह की आलोचना दृष्टि

डॉ. पूनम सिंह / 69

संपादकीय

मुख्य अतिथि की कुर्सी पर कृत्रिम बुद्धिमता ?

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

जब मुख्य अतिथि 'विषय' भूलकर 'विश्व भ्रमण' पर निकल जाएँ, तो साहित्यिक कार्यक्रमों का एक नया संकट सामने आने लगता है। आजकल कार्यक्रमों में एक नया ढर्रा चल पड़ा है। आप किसी किताब के विमोचन या चर्चा में इस उम्मीद के साथ जाते हैं कि देश के बड़े विद्वान आए हैं, तो उस किताब के बहाने कुछ नया सीखने-समझने को मिलेगा। मंच सजता है, मालाएँ पहनाई जाती हैं, और भारी-भरकम परिचय के साथ 'विद्वान वक्ता' को माइक सौंप दिया जाता है। लेकिन यहीं से शुरू होता है असली खेल। विद्वान तो आखिर विद्वान हैं, अगर वे मंच पर आकर अपनी विद्वत्ता का लोहा न मनवाएँ, तो काहे के विद्वान! किताब रह गई किनारे और वक्ता महोदय चले गए विश्व भ्रमण पर।

हाल ही में एक ऐसा ही वाक़या देखने को मिला। मौक़ा था एक नई किताब पर चर्चा का। वक्ता महोदय मंच पर आए, उन्होंने सामने रखी किताब को एक उड़ती हुई नज़र से देखा और शुरू हो गए। पहले दस मिनट उन्होंने ग्रीक साहित्य और अरस्तू के सिद्धांतों पर ख़र्च किए। अगले दस मिनट में वे लैटिन अमेरिकी उपन्यासों और रूसी क्रांति के साहित्यिक प्रभाव पर चले गए। श्रोता टकटकी लगाए देख रहे थे कि भाई साहब, घूम-फिर कर अपनी वाली किताब पर कब आएँगे! लगातार आधे घंटे तक विश्व साहित्य का भूगोल नापने के बाद अचानक वक्ता महोदय को होश आया (या शायद सामने बैठे लेखक के मुरझाए चेहरे को देखकर याद आया) कि अरे! मुझे तो इस मेज़ पर रखी किताब और उसके लेखक पर बोलना था। लेकिन समय तो अपनी सीमाएँ कब की पार कर चुका था। जैसे ही वे आनन-फानन में किताब के पन्ने पलटने लगे, तब तक संचालक महोदय ने 'समय समाप्त' वाली पर्ची आगे बढ़ा दी या माइक से खाँसने का संकेत दे दिया।

नतीजा यह हुआ कि जिस किताब पर पूरी चर्चा होनी थी, वह बेचारी पूरे भाषण में बस कभी-कभी 'रेफरेंस' की तरह आती-जाती रही। मुख्य अतिथि महोदय अपना पूरा पढ़ा-लिखा ज्ञान श्रोताओं पर थोपकर चलते बने। कड़वा सच तो यह है कि आजकल के 95 प्रतिशत साहित्यिक कार्यक्रमों में यही हो रहा है। एक अच्छा लेखक बहुत अच्छा वक्ता भी हो, ऐसा होना लगभग दुर्लभ है। मंच मिलते ही अतिथि विषय से भटककर किसी दूसरी ही दुनिया में चले जाते हैं। इस भटकाव का सबसे बुरा असर कार्यक्रमों में आने वाले श्रोताओं पर पड़ रहा है। ख़ास तो युवा पर, आज की जो युवा पीढ़ी है, उसे सरल, सहज और सीधे दिल को छूने वाली भाषा पसंद है। वे भारी-भरकम शब्दकोश सुनने नहीं, बल्कि कुछ नया सीखने और साथ ले जाने के लिए आते हैं। लेकिन जब मंच से कठिन और ऊबाऊ शब्दों की गोलाबारी होने लगती है, तो युवाओं के पास एक ही रास्ता बचता है- चुपचाप अपना स्मार्टफोन निकालना और रील्स स्क्रॉल करना। यही कारण है कि धीरे-धीरे साहित्यिक कार्यक्रमों से दर्शक, और ख़ासकर युवा ग़ायब होते जा रहे हैं और कुर्सियाँ ख़ाली नज़र आती हैं।

और इसी ख़ालीपन का फ़ायदा उठा रहा है एआई! साहित्यिक मंचों के इसी भटकाव और ऊबाऊपन का फायदा उठाकर अब एआई साहित्य की दुनिया में अपनी धाक जमा रहा है। मुख्य अतिथि ने जाने-अनजाने में अपनी ऊबाऊ शैली से एआई के लिए जगह साफ़ कर दी है। जहाँ हमारे बड़े विद्वान आधे घंटे में भी यह नहीं बता पाते कि किताब किस बारे में है, वहीं एआई से पूछिए तो वह पाँच सेकंड में उस किताब की पूरी समीक्षा, उसके मुख्य बिंदु और उसकी कमियाँ बेहद सरल भाषा में आपके सामने रख देता है। युवाओं को लगता है कि किसी उबाऊ कार्यक्रम में दो घंटे सिर खपाने से बेहतर है कि चैटजीपीटी या किसी एआई टूल से किताब का सारांश ले लिया जाए।

लेकिन बात सिर्फ इतनी सी नहीं है कि एआई अब किताबों की समीक्षा कर रहा है; अब तो एआई ख़ुद 'लेखक' और 'कवि' बन बैठा है। आजकल विभिन्न ऑनलाइन पोर्टल्स और एप्स पर एआई द्वारा लिखी गई कविताओं और कहानियों की बाढ़ आई हुई है। एआई द्वारा थोक के भाव में लिखी जा रही इन कहानियों के कारण ई-बुक का चलन बहुत तेज़ी से बढ़ा है। काग़ज़

संपादकीय

की किताब छपवाने का झंझट ख़त्म, न पब्लिशर के नखरे, न छपाई का ख़र्चा। एआई से कहानी लिखवाई, सुंदर-सा कवर पेज डिज़ाइन किया और किसी ऑनलाइन पोर्टल पर ई-बुक बनाकर अपलोड कर दी। शुरुआत में यह बड़ा सुविधाजनक लगता है, लेकिन इसके जो दूरगामी दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं, वे बेहद डरावने हैं।

यह ठीक वैसा ही है जैसे फास्ट फूड हमारी जीभ को तो अच्छा लगता है, पर पेट और सेहत ख़राब कर देता है; एआई का यह साहित्य भी बिल्कुल वैसा ही है। इसमें व्याकरण तो सही हो सकती है, लेकिन जीवन के गहरे अनुभव, दर्शन और वह 'अहसास' ग़ायब होते हैं, जो एक सच्चा लेखक अपनी साधना से पैदा करता है।

यह साहित्य अब केवल समय काटने का एक सतही साधन बनकर रह गया है। इसका एक और बड़ा संकट मौलिक लेखकों पर आया है। जब मशीनें दिन में दस कहानियाँ लिखकर पोर्टल्स पर मुफ्त या बहुत सस्ते में अपलोड कर देंगी, तो उस लेखक का क्या होगा जो एक कहानी लिखने के लिए महीनों रिसर्च करता है, अपना ख़ून-पसीना एक करता है? ऐसे बाज़ार से तो असली और मौलिक लेखक ग़ायब हो जाएँगे, क्योंकि वे एआई की इस अंधाधुंध रफ़्तार का मुक़ाबला शायद नहीं कर पाएँगे।

इस 'तुरंत पढ़ो और तुरंत भुलाओ' संस्कृति के कारण आने वाली पीढ़ी की गंभीर रूप से पढ़ने की क्षमता और उनकी मानसिक सोच कमज़ोर हो रही है। उन्हें अब 'गोदान' और 'मैला आँचल' जैसे कालजयी साहित्य बहुत कठिन और ऊबाऊ लगते हैं। एआई की लिखी हुई सपाट और फॉर्मूला आधारित भाषा को पढ़कर युवा पीढ़ी की ख़ुद की कल्पनाशीलता और रचनात्मकता कमज़ोर हो रही है। वे केवल 'उपभोक्ता' बनकर रह जा रहे हैं, 'विचारक' नहीं। एआई की सबसे बड़ा नुक़सान ही यही है कि उसे केवल और केवल उपभोक्ता ही चाहिए, उसके बाज़ार में स्वतंत्र रूप से विचार करने वालों की कोई आवश्यकता नहीं है। एआई की दुनिया में लोगों को ख़ाली दिमाग़ और भरी हुई जेबें लेकर जाना होगा, उस दुनिया में एआई उनकी जेबों को ख़ाली कर सके और उनके दिमाग़ों में अपनी सुविधा वाले विचार भर सके।

इसका सबसे बड़ा नुक़्सान हमारी आने वाली पीढ़ी उठा रही है। एआई जानकारी तो दे सकता है, लेकिन वह किसी बड़े विद्वान के जीवन के अनुभव, उसकी आँखों की चमक और उसके बोलने के लहज़े की 'ठंडक' और आत्मीयता नहीं दे सकता। जब युवा इन कार्यक्रमों से दूर होकर पूरी तरह एआई के भरोसे हो जाएँगे, तो साहित्य से मानवीय संवेदना ही ग़ायब हो जाएगी। मशीनें इंसानों की जगह इसलिए ले रही हैं क्योंकि इंसानों ने अपनी सहजता छोड़ दी है। अगर साहित्यिक कार्यक्रमों को बचाना है, दर्शकों को वापस लाना है और एआई के इस ठंडे आक्रमण को रोकना है, तो हमारे विद्वान वक्ताओं को थोड़ा सुधरना होगा। मंच पर आकर 'मैं कितना ज्ञानी हूँ' यह साबित करने के बजाय, 'जिस विषय पर बुलाया गया है' उस पर बात करनी होगी। भाषा को कठिन और बोझिल बनाने के बजाय सरल और आसान रखना होगा। आख़िरकार, साहित्य इंसानों के लिए है, कंप्यूटर के एल्गोरिदम के लिए नहीं!

ग़ज़ल को आम आदमी की भाषा में कह कर उसकी लोकप्रियता को जन-जन तक पहुँचाने वाले सुप्रसिद्ध शायर बशीर बद्र साहब लंबी बीमारी के बाद इस फ़ानी दुनिया को अलविदा कह गए। बशीर बद्र साहब के कई शे'र आज लोगों की ज़ुबान पर चढ़े हुए हैं। विभोम-स्वर, शिवना साहित्यिकी तथा शिवना प्रकाशन परिवार की तरफ़ से बशीर बद्र साहब को विनम्र श्रद्धांजलि।

कम्प्यूटरों से ग़ज़लें लिखेंगे 'बशीर-बद्र', ग़ालिब को भूल जाएगी इक्कीसवीं सदी'

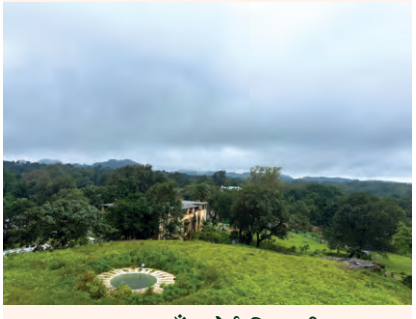

अगर तलाश करूँ कोई मिल ही जाएगा
मगर तुम्हारी तरह कौन मुझ को चाहेगा
तुम्हारे साथ ये मौसम फ़रिश्तों जैसा है
तुम्हारे बाद ये मौसम बहुत सताएगा
-बशीर बद्र

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

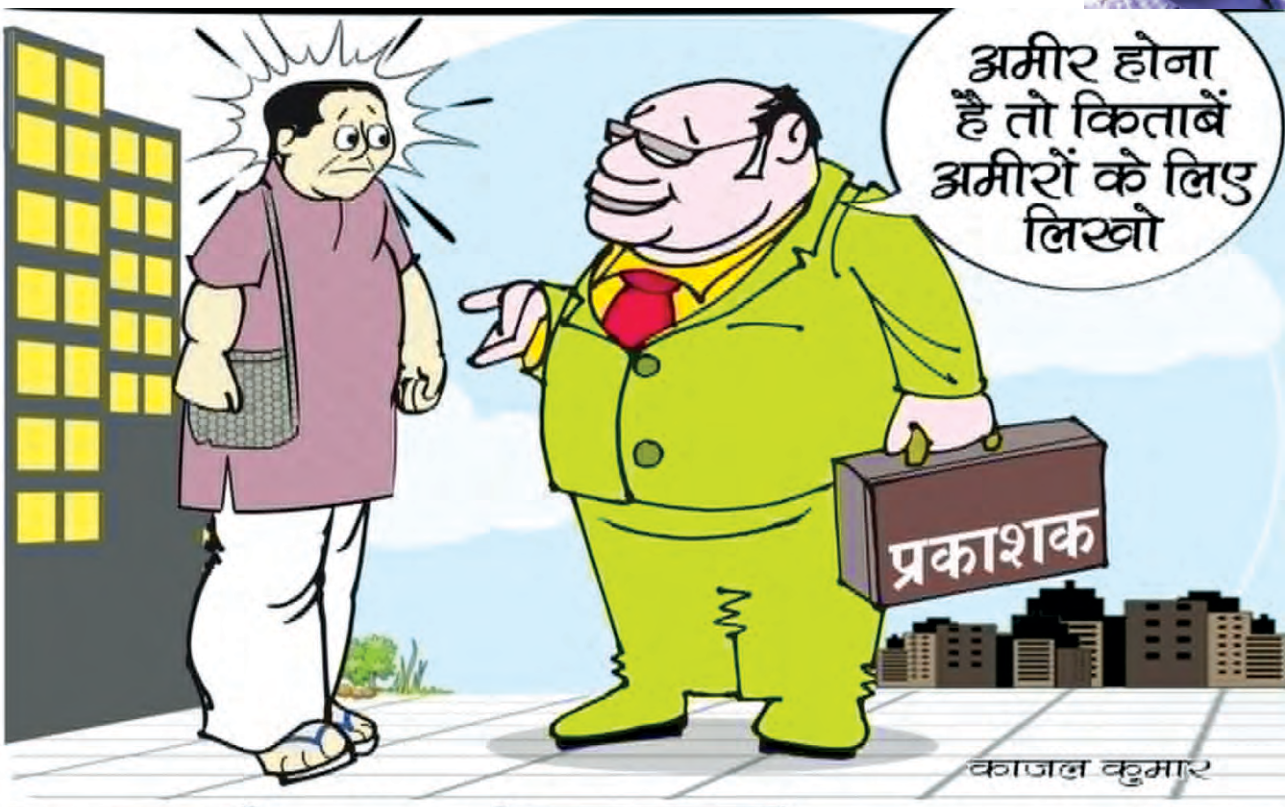

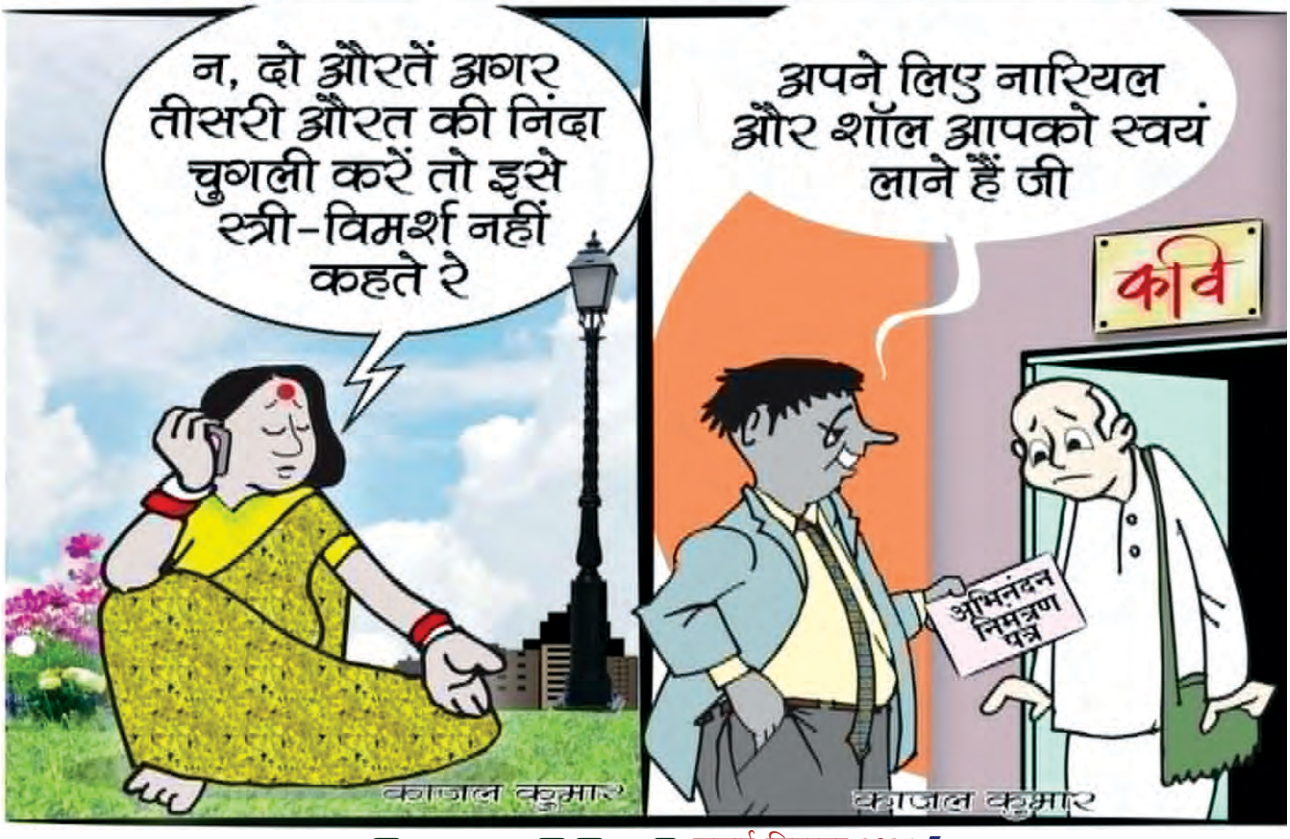

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना नवलेखन पुरस्कार 2026

शिवना प्रकाशन द्वारा नये लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' की शुरुआत की गई है। यह पुरस्कार गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास तथा कथेतर विधा में प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2026 के लिए कहानी, उपन्यास तथा कथेतर (डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज) विधाओं में पुरस्कार हेतु शिवना प्रकाशन द्वारा पांडुलिपियाँ आमंत्रित हैं।

पुरस्कार के लिये नियम तथा शर्तें-

1. पुरस्कार के लिए लेखक की आयु 45 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। (जिस वर्ष हेतु पांडुलिपि आमंत्रित की गयी है, उस वर्ष की 31 दिसंबर तिथि, अर्थात् 31 दिसंबर 2026 तक।) पांडुलिपि के साथ आधार कार्ड की छायाप्रति संलग्न करना आवश्यक होगा।

2. लेखक की पहली किताब होनी चाहिए, इससे पूर्व उसकी किसी भी विधा की कोई किताब प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में एक स्व-हस्ताक्षरित घोषणा पत्र लेखक को पांडुलिपि के साथ भेजना होगा।

3. पांडुलिपि कम से कम चालीस हज़ार तथा अधिकतम अस्सी हज़ार शब्दों की होनी चाहिए। इससे कम या अधिक शब्द संख्या होने पर पांडुलिपि अमान्य कर दी जायेगी।

4. पांडुलिपि 15 अक्टूबर 2026 के पूर्व शिवना पुरस्कार के ईमेल **shivna.awards@gmail.com** पर प्राप्त हो जाना चाहिए। पांडुलिपि वर्ड डॉक में यूनीकोड फॉण्ट में टाइप होनी चाहिए। किसी अन्य फॉण्ट में होने पर स्वीकार नहीं की जायेगी।

5. लेखक को 11,000 रुपये (ग्यारह हज़ार रुपये) का यह पुरस्कार शिवना के प्रतिष्ठा आयोजन 'शिवना साहित्य समागम' में प्रदान किया जायेगा।

6. लेखक को पांडुलिपि के साथ पुस्तक के मौलिक, स्वलिखित तथा अप्रकाशित होने का हस्ताक्षरित पत्र भेजना आवश्यक है।

7. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर लिखा होना चाहिए- 'शिवना नवलेखन पुरस्कार के लिए'।

8. प्रकाशित पुस्तकों के कॉपीराइट (प्रिंट, डिजिटल तथा ऑडियो) पाँच वर्ष तक लेखक तथा शिवना प्रकाशन के पास संयुक्त रूप से रहेंगे, इस अवधि में लेखक उस पुस्तक को अन्यत्र कहीं से प्रकाशित नहीं करवा सकेगा।

9. पुरस्कार के लिए अंतिम निर्णय निर्णायकों का होगा जो प्रतिभागियों के लिए मान्य होगा।

10. पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार किया जायेगा, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लेखक के अनुरोध पर नहीं किया जायेगा।

संपर्क- शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

दूरभाष- 07562-405545, व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.awards@gmail.com

निर्णायक, समन्वय तथा कार्यपालन समिति

सुधा ओम ढींगरा
कथाकार, उपन्यासकार

मनीषा कुलश्रेष्ठ
कथाकार, उपन्यासकार

यतीन्द्र मिश्र
कवि, कथेतर-लेखक

प्रभात रंजन
कथाकार, उपन्यासकार

गौतम राजऋषि
कथाकार, उपन्यासकार

ज्योति जैन
कथाकार, उपन्यासकार

शैलेन्द्र शरण
कथाकार, कवि

मनीष वैद्य
कथाकार, पत्रकार

पारुल सिंह
कवि, उपन्यासकार

शहरयार
कवि, संपादक

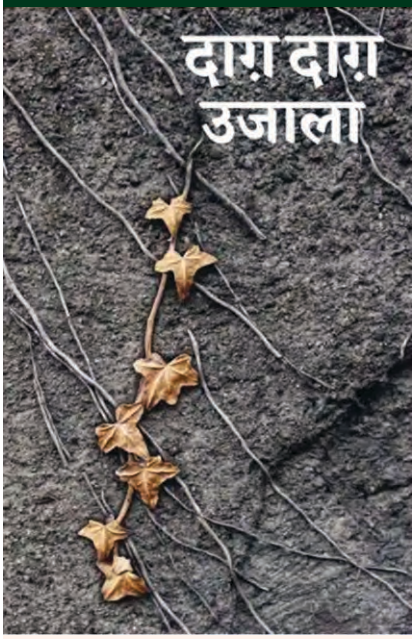

(कहानी संग्रह)

दाग़-दाग़ उजाला

समीक्षक : वंदना वाजपेयी

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

वंदना बाजपेयी
बी-125, प्रथम तल, निर्माण विहार,
नई दिल्ली 110092
मोबाइल- 9818350904
ईमेल- vandanabajpai5@gmail.com

निरंतर अपने क़लम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करती हुई सुपरिचित कथाकार प्रज्ञा का नया संग्रह 'दाग़-दाग़ उजाला' उन अँधेरों की ओर संकेत करता है, जो रोशनी की जगमगाहट में या तो अनचीन्हे रह गए हैं या आगे बढ़ने की होड़ में बिसरा दिए गए हैं। कहानियों की बात करूँ तो संग्रह की मेरी सबसे प्रिय प्रतीकात्मक नाम वाली कहानी 'जड़खोद' को प्रज्ञा की कथा यात्रा में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव के रूप में देखा जा सकता है। एक स्त्री के संघर्ष की कहानी कहते हुए ये कहानी समाज में होने वाले राजनैतिक और सामाजिक बदलाव को एक सूत्र में गूँथती हुई आगे बढ़ती है। विशेष बात यह है कि राजनैतिक घटनाओं को बिंबात्मक रूप में इस तरह पिरोया गया है कि कहीं भी कथारस बाधित नहीं होता।

कहानी की नायिका गंगा, भागीरथी गंगा की ही तरह प्रवाहमान है, जिसे बहना है और बहने के लिए उसे अपने रास्ते में आने वाले पर्वतों को काटना भी आता है और न काट सकने की स्थिति में किनारे से रास्ता बनाना भी। भागीरथी प्रेत योनि में भटकते राजा सगर के पुत्रों को तारने देवलोक से आई तो ये गंगा अपने पिता का क़र्ज़ उतारने दुनिया में आई है। गंगा, जो पहाड़ों से संघर्ष के साथ आगे बढ़ती है पर ज़मीन को समतल और हरा भरा करना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। कहानी की नायिका गंगा भी बचपन से संघर्षों के साथ पलती बढ़ती पितृसत्ता और धर्मसत्ता से टकराती है और अपनी तरह से जीवन को समरस बनाने का प्रयास करती है। कहानी में पाठक गंगा की उँगली पकड़कर चलता है और उसके सुख-दुख में डूबता उतराता है। अन्यायी अत्याचारी पिता का विद्रोह करती बच्ची का बाल मनोविज्ञान प्रज्ञा ने बख़ूबी पकड़ा है। फिर चाहे वो पुजारी की बेटी होते हुए भी बिना नहाए नाश्ता करना हो या अन्य नियम विरोधी कार्य, पिता के विरोध में की गई चोरी या रिक्शे के आगे लेट जाने की धमकी, या जमा हथियारों को नदी में बहा आना और माली के लड़के से प्रेम। धर्म, जाति, समाज इतने सूत्रों को एक साथ एक कहानी में पिरोने के बावजूद न कथारस कहीं भंग होता है और न ही प्रवाह, ये लेखिका के क़लम की विशेषता है। अगर राजनैतिक सूत्र पकड़ें तो गंगा में कहीं इंदिरा गांधी नज़र आती हैं तो कहीं महात्मा गांधी। इंदिरा शब्द का प्रयोग तो लेखिका ने स्वयं ही किया है। मंदिर और मंदिर के आस-पास का वातावरण का ज़िक्र करते हुए प्रज्ञा की 'गंगा' धर्म की सही व्याख्या करती है, जो अन्याय के ख़िलाफ़ अपनों से भी भिड़ जाने में है।

कहानी में सकारात्मकता बनाए रखना प्रज्ञा की विशेषता है। ऐसा नहीं है कि कहानी में सारे खल चरित्र और उनसे जूझती गंगा ही हो, सार्थक पुरुष पात्रों के साथ कहानी को एकतरफ़ा हो जाने से रोकती हैं। जहाँ प्रभात है, जिसके प्रेम में धैर्य है, किसी अबला को सहारा देने के लिए समाज यहाँ तक की अपने बेटों से भी भिड़ जाते हैं.... पर नैतिकता का दामन नहीं छोड़ते। सोनू और उसके जीवन में आने वाले सभी लोग सभ्य-सुसंस्कृत हैं। ये वो लोग हैं जिनकी वजह से हमारे घर, समाज, धर्म और राजनीति में बुराइयाँ थोड़ा थमती हैं। कहानी का अंत एक नई सुबह की आशा है... जो रात के संघर्ष के बाद आती है। अपने हिस्से की सुबह के लिए अपने हिस्से का यह संघर्ष हर स्त्री को करना होगा। चाहे इसके लिए जड़खोद ही क्यों ना बनना पड़े।

देश-विदेश, समकालीन परिस्थितियों के ताने-बाने से बुनी शीर्षक कहानी 'दाग़-दाग़ उजाला' नस्लीय और जातिवादी मानसिकता पर प्रहार करती है। वहीं यह कहानी एक स्त्री द्वारा विपरीत परिस्थितियों में धैर्य न खोते हुए व्यवस्था से टकराती सशक्त स्त्री की स्थापना भी करती है।

अचानक दूसरे देश से बेटे की हालत नाज़ुक होने के फ़ोन आने से रहस्य के साथ आकार लेती परतदार कहानी कई मुद्दों को अपने अंदर समेटे हुए है। कहानी शुरुआत में विदेश में नौकरी के प्रति बढ़ते युवाओं के मोह और पीछे छूटे माता-पिता की पीड़ा के साथ आगे बढ़ती कहानी रंग भेद, गौरव के व्यवहार, बैंजों की व्यस्तता के साथ आज के बदलते अमेरिका की ओर संकेत करती है, लेकिन मूल मुद्दा सामने आते ही पाठक उस कन्डीशनिंग पर उँगलियाँ उठाने लगता है, जो भारतीय यहाँ से विदेश भी ढो कर ले जा रहे हैं। कंपनी के टॉप भारतीय सी.

ई. ओ. द्वारा जातिगत दुर्व्यवहार की ख़बरें आजकल आए दिन अख़बारों में सुनने को मिल रहीं हैं। कहानी उसी पीड़ा की बानगी है। जाति है की जाती नहीं। कहानी सिद्ध करती है कि शिक्षा व्यक्ति की सोच में कोई परिवर्तन नहीं लाती। रोहित की उच्च शिक्षा, मेहनत, लगन जिस तरह से तिरस्कार का पात्र बनती है, वह हमारे समाज का आईना है।

कहानी पढ़ते हुए अनायास ही रोहित वेमुला का दर्द याद या जाता है। ये रोहित उस रोहित के क़िस्से से बचने के लिए विदेश जाना चुनता है। पर मनुष्य को मनुष्य के बराबर न समझने की इस बीमारी का पौधा पहले ही वहाँ रोपा जा चुका है। कहानी में उम्मीद दिखाता अंत लेखिका की सकारात्मकता का प्रतीक है, जो लगभग हर कहानी में पाठक से यह आशा करतीं है कि तुम बदलो, तो दुनिया बदलेगी।

लेखिका ने माँ सुधा के चरित्र को बहुत सचेतनता व गहनता के साथ बुना है। यह सीधे मन में गहरे उतर जाता है। अकेले विदेश जाकर अपने बेटे के हक़ के लिए लड़ती स्त्री जो घर को घर जैसा भी बनाती है और समस्याओं से अकेले निपटने में भी सक्षम है। वह टूटती है पर बिखरती नहीं है। यह आज की स्त्री है। कई जगह उसके साहस को सलाम करने का मन होता है।

इस सच्चाई से कौन अनभिज्ञ है कि यह दुनिया उगते सूरज को प्रणाम करती है। ढलता हुआ सूरज चुपचाप क्षितिज की फिसलपट्टी से सरक अँधेरे में खो जाता है। प्रकृति के नियम को मानव मन कहाँ मानता है। वह तो अतीत के वैभव से चिपका रहता है... जिसका अस्तित्व भले ही अब वर्तमान में कहीं न हो।

कहानी 'कलाकार' एक ऐसे व्यक्ति अनुराग की कहानी है, जिसने सफलता का सूरज देखा है, लेकिन उसे अवसान स्वीकार नहीं। व्यापार मेले की लकदक से शुरू हुई यह कहानी लाभ के गणित में कॉन्टेक्ट्स बढ़ाने की बखिया उधेड़ती है। व्यापार का विस्तार ही मेलजोल का आधार है। बाज़ार में टिके रहने के लिए किस तरह से आपसी संबंध बनाने की होड़ है। लाभ पाने के लिए की जाने वाली खींचतान और घमासान से वे शुरुआत से ही ध्यान खींचती हैं। यहाँ हर तरह के लोग हैं। कुछ व्यापार में पुराने खिलाड़ी हैं, कुछ नौसिखिये तो कुछ बाज़ार को समझने की कोशिश कर रहे हैं। ज़रूरत से ज़्यादा आत्मीयता दिखाने की कला को वे जिस सहजता से चित्रित करती हैं, तो पाठक के अपने अनुभव कहानी से जुड़ जाते हैं। भले ही वे अन्य क्षेत्र के हों। ऐसा लगता है पाठक स्वयं व्यापार मेला घूम रहा है।

कहानी कभी कलाकार रह चुके अनुराग की है जो अतीत में टेलीविज़न का हीरो रहा है। उसके पास एक ट्रॉफी है। कुछ स्मृतियाँ हैं और कुछ अहंकार भी, जिसे वह आज भी सहेजे हुए है। व्यापार मेले में वे गोवर्धन दास द्विवेदी से संपर्क साधना चाहते हैं। वे उन्हें अपना चाचा बताते हैं। पर गोवर्धन दास पुराने खिलाड़ी हैं। विशुद्ध व्यापारी की रुचि न उनकी ट्रॉफी देखने में है न ही उनके साथ बात करने और न ही फ़ोटो खिचाने में।

ख़ुद को पुन: स्थापित करने की कलाकारी को बहुत बारीकी से रेखांकित करती है। प्रज्ञा ने निष्पक्ष भाव से अनुराग के किरदार को जीवंत किया है। पहले वह चालाक लगता है, फिर उस पर दया आती है, फिर उसकी जिजीविषा से पाठक को संतोष महसूस होता है। जिस तरह से अनुराग की कला का स्थानांतरण हुआ है पाठक उसका गवाह बनता है। वस्तुत: ये दुनिया एक बाज़ार है और यहाँ येन-केन प्रकरेण ख़ुद को बनाए रखना एक कला। अनुराग और उसकी जिजीविषा के माध्यम से प्रज्ञा इसे जर्रा-जर्रा खोलती हैं। बाज़ारवाद की परतें खोलती कम शब्दों में लिखी गई इस बड़ी कहानी है कलाकार।

कहानी 'पुल' भाषा और सांस्कृतिक विविधता के मध्य स्नेह और मनुष्यता के पुल की बात करती है। कहानी बड़ी नरमाई से यह समझ विकसित करती है कि जो हमसे अलग है, वह ग़लत नहीं है। स्वयं के विस्तार के लिए भी ऐसे हज़ारों-हज़ार पुलों की आवश्यकता है। अवांतर कथा में बॉस के साथ उसकी टीम के रिश्तों, अपने काम में अपना पूरा योगदान देना एवं किसी काम को छोटा न समझना जैसे ज़रूरी मुद्दे गुथे हुए हैं।

हमारा देश विविधताओं वाला देश है। अलग भाषा, जीवन शैली अलग स्थानों की पहचान है। लेकिन हम अपने समुदाय में इस अलग को आसानी से स्वीकार नहीं करते है। ऐसे ही हैं बॉस क्लीटस जॉर्ज, जो केरल से गुड़गाँव में नौकरी करने आए हैं। क्लीटस एक कड़क बॉस है, जो अपने अधीन काम करने वालों को टोकते रहते हैं। यूँ वे अहंकार रहित हैं और मज़दूरों के साथ स्वयं भी काम करने को तत्पर रहते हैं। बॉस होकर भी अपने निजी कामों को करने में ख़ुद को छोटा नहीं समझते। लेकिन उनके मताहत काम करने वाले ऑफ़िसर्स उनकी भाषा, कपड़ों का मज़ाक उड़ाते हैं। अपनी गाड़ियों के बीच पार्क की गई उनकी स्कूटर का मज़ाक उड़ाते हैं। घर की साफ़-सफाई ख़ुद करने का मज़ाक उड़ाते हैं। इतना ही नहीं क्लीटस घर के अड़ोसी-पड़ोसी भी उसके साथ अलगाव से पेश आते हैं। समय वह चाकू है जो हर बुराई की परत को छील कर सच्चाई को दिखा ही देता है। कहानी का सकारात्मक अंत विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के मध्य एक पुल बनाते हुए मनुष्यता और कर्मठता के पक्ष में खड़ा हो जाता है।

'गर्दिश में हैं तारे' बाज़ारतंत्र पर लिखी बहुत शानदार कहानी, कई मुद्दों को समेटती है। कहानी में आपने बारीक बुनावट के साथ बहुत शाइस्तगी से धर्म और जाति के ताने-बाने को बिना है। मिनी मॉल के ख़तरे के बीच स्वाद, मेहनत और भरोसे के बल पर जीतने की कोशिशें और तमाम उठापटक के बीच कालिया का मज़बूती से अपनी बात रखने का सकारात्मक दृष्टिकोण पाठक मन को ख़ुशनुमा राहत देता है।

चाँद जैसे ख़्वाब कहानी का निहितार्थ इसी में लिखी दो कविताओं से मिल जाता है- दरख़्तों से झाँकती रोशनी / चाँद जैसे ख़्वाब हैं। और दूसरी कविता है- अंतस का अकेलापन / बाहर के शोर पर हावी है।

इन कहानी ने मुझे मशहूर अमेरिकी कवि और लेखक चार्ल्स बुकोवस्की एक अन्य कविता की याद दिला दी- 'तो आप लेखक बनना चाहते हैं'। कविता बताती है कि अगर

लिखना आपके दिल से एक ज़रूरत की तरह नहीं निकलता, तो आपको ऐसा नहीं करना चाहिए; बल्कि, यह एक गहरी, आंतरिक पुकार होनी चाहिए जो आपको लिखने पर मजबूर कर दे। लेकिन क्या ये संभव हो पाता है? ख़ासकर एक स्त्री लेखक के लिए। वह भी भारतीय परिपेक्ष्य में? ये कहानी उन्हीं प्रश्नों के उत्तर तलाशती है।

कहानी की शुरुआत भी अख़बार के दफ्तर से होती है। जहाँ काम करने वाली पूर्वा को प्रसिद्ध कवि शशांक निकेत जी के अगले माह छपने वाले जन्म शताब्दी विशेषांक के लिए उनकी पत्नी कल्पना को खोजकर उनका इंटरव्यू लेने का कार्य सौंपा जाता है। इस खोजबीन में हाथ आती है निकेत जी की पत्नी कल्पना नहीं बल्कि एक गुम हुई कवयित्री कल्पना। पूर्वा के लिए ही नहीं स्वयं 90 वर्षीय कल्पना जी के लिए भी। वे कल्पना जी, जो चार्ल्स की लेखक बनने की परिभाषाओं में सटीक बैठती हैं। वह बहुत नहीं लिखतीं बस मन आने पर लिखती हैं। जैसे किन्हीं सुंदर पलों में होंठों पर सहज ही आ जाती है मुस्कुराहट। किसी ख़ास ऋतु में खिल जाता है कोई ख़ास फूल, और किसी-किसी बरसात के बाद बन जाता है आसमाँ में इंद्रधनुष। भीड़ के शोर में अक्सर गुम हो जाती हैं ऐसी रचनाएँ और ऐसी स्त्रियाँ, जिन्होंने घर की ज़िम्मेदारियों के बचे-खुचे समय को क़लम को सौंपा था। दरख़्तों से झाँकती रोशनी के मानिंद। यह ऐसी ही गुम हुई कवयित्री की कहानी है। जहाँ पति-पत्नी कॉलेज के ज़माने से दोस्त हैं। दोनों कवि हैं। कवि के पास बहुत अधिक लिखने का समय है। ढेरों किताबें हैं। महफ़िलें हैं, गोष्ठियाँ हैं। कविता आंदोलन की बैठकें हैं और पत्नी के पास उन बैठकों में चाय-नाश्ता कराने की ज़िम्मेदारी है। यहाँ 'अभिमान' फिल्म का असुरक्षा बोध नहीं है। बस अपनी विजय यात्रा में पति भूल गया है कि पत्नी भी लिखती है और पत्नी भी भूल गई है कि वह लिखती है।

यहाँ यह कहानी कर्त्तव्य के नाम पर स्त्री पर लादी गई ज़िम्मेदारियों के भार से दम तोड़ते स्त्री क़लमों की कहानी बन जाती है। यह उस कंडीशनिंग की कहानी बन जाती है, जहाँ स्त्री अपने स्व को विस्मृत कर देती है। यह सच्चे स्त्री विमर्श की कहानी बन जाती है। संतोष यह है कि यह खोज भी एक स्त्री ही करती है।

अंत में कल्पना जी के रोने में पति के लिए कि नकार या द्वेष नहीं है। वह अभी भी प्रेम के उन पलों को सँजोये हैं। यह स्वयं के नकार का दर्द है। प्रज्ञा की अधिकांश कहानियाँ सकारात्मकता के साथ समाप्त होती हैं, पर यह कहानी पाठक के मन में गहरी टीस छोड़ती है। अख़बार की जद्दोजहद, दिए गए विषय की इंटरनेट की सामग्री से की गई तैयारी, टारगेट पूरा करने की बेबसी और भय कहानी का साथी रहा। दृशयात्मकता इस कहानी का बोनस पॉइंट है। ज़ीने के बाईं ओर एक फ्लैट और दाईं ओर दो फ्लैट वाले घरों में हम पूर्वा के साथ-साथ झाँकते हैं। कहानी के बीच में गहरे वाक्य पाठक की चेतना को झकझोरते हैं। यथा- 'पॉश कालोनी में घर यानी माहौल में घुली पुरानी पूँजी की नफ़ासत, नज़ाकत', 'हर आलीशान मुहल्ले के अपने अँधेरे होते हैं'।

जाति व्यवस्था पर प्रहार करती कहानी 'देवता जा चुके हैं' एक मासूम बच्चे के नज़रिए लिखी गई संवेदनात्मक कहानी है। कहानी की शुरुआत ही 'एस सी कौन होते हैं?' के मासूम प्रश्न से होती है। जो माँ द्वारा किसी न्यायप्रिय ईश्वर की अवधारणा से प्रसन्न बालमन के छत पर स्थापित छोटे से मंदिर और संध्या आरती भजन-पूजन में आकार लेती है। अँगूठियाँ और नग बेचते पिता को उसमें अपना कारोबार फलता-फूलता दिखता है। लेकिन स्कूल के भेदभाव से जैसे-जैसे अभय दो-चार होता जाता है, मन में स्थापित देवताओं की प्रतिमाएँ टूटने लगती हैं। फिर चाहे दोस्त हो, अध्यापक, मुहल्ले वाले या अन्य।

अंत में छत के मंदिर का हटाया जाना इसी शृंखला की पूर्णाहुति है। जब अभय कहता है कि, माँ की हर विपत्ति का साथी भगवान था। पिता की कमाई का ज़रिया भगवान था, मेरा ही बड़ा भाई कीर्तनों में पूरे मन से उसका जाप कर रहा था, किन्तु मैंने...। कहानी की ख़ास बात है कि अभय संगीत शिक्षक द्वारा जातिगत आधार पर ठुकराए जाने का उत्तर प्रार्थना सभा में अपनी प्रतिभा प्रदर्शन से देता है। कहानी स्थापित करती है कि प्रतिभा को कोई नहीं रोक सकता। ये तमाम भेदभावों के अँधेरों के मध्य सूर्य बन कर चमकती है। देवताओं की विदाई के बाद समानता, कर्म और प्रतिभा में ही ईश्वर की स्थापना का संदेश देती है सार्थक कहानी।

कहानी 'नेपथ्य' उन रूढ़ियों पर उँगली रखती है, जहाँ पिता की अंतिम क्रिया में बेटे का होना आवश्यक है। फिर चाहे छोटी उम्र का बेटा इस वीभत्स कर्म के बाद मानसिक अवसाद और स्वयं को दोषी मानने के अपराध बोध से जीवन भर गुज़रता रहे। ऐसा ही बच्चा है चार साल का चीनू। मृत्यु का घर और चीनू की मासूमियत पाठक को द्रवित करती है। उसके लिए मृत्यु छुपन-छुपाई का वही खेल है, जिसमें पापा यूँ ही यहाँ-वहाँ छिप जाया करते थे और ढूँढ़ने पर मिल जाते थे। घर के उदास चेहरे उसे चौंकाते तो हैं पर उसकी नन्हीं दुनिया भाई-बहनों के साथ खेल में आबाद है। हमने अपने घरों के आस-पास दादाओं और परिजनों का इस तरह का वीभत्स आग्रह देखा है, और चीनू की माँ की तरह पाठक के मन में भी उसे बचा लेने की इच्छा जागती है। कहानी बच्चों के खेल के नेपथ्य में रूढ़ियों का जो खेल चल रहा है उसकी ओर इशारा करती है। कहानी प्रेम विवाह, नौकरी की छँटनी, अवसाद और आत्महत्या जैसे गंभीर मुद्दे भी उठाती है। कहानी यह भी ईशारा करती है कि किसी भी रूढ़ि को तोड़ने के लिए विरोध को सहन करने की शक्ति अर्जित करनी ही होती है। एक बार फिर कहानी का सकारात्मक अंत पाठक मन को सुकून देता है।

अंत में मैं यही कहूँगी कि प्रज्ञा सरल सहज भाषा में कथा का एक बड़ा वितान रचती हैं। गहन निरीक्षण और सघन विवरण से युक्त उनकी कथा शैली से पाठक सहज ही जुड़ जाता है।

000

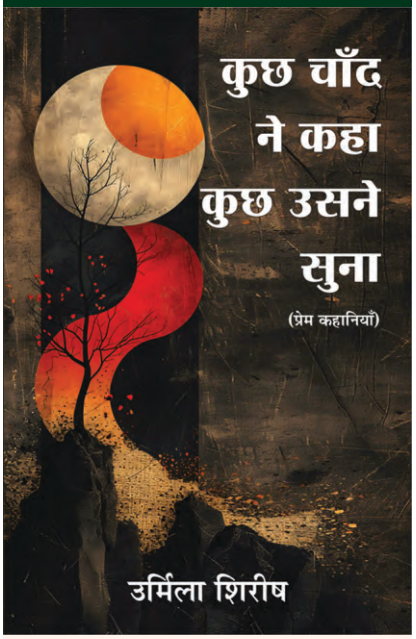

(कहानी संग्रह)

कुछ चाँद ने कहा कुछ उसने सुना

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : उर्मिला शिरीष

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

'कुछ चाँद ने कहा कुछ उसने सुना' वरिष्ठ कथाकार उर्मिला शिरीष का इक्कीसवाँ कहानी संग्रह है। 'कुछ चाँद ने कहा कुछ उसने सुना' कहानी संग्रह में 11 प्रेम कहानियाँ हैं। कहानियों के कथ्यों में विविधता हैं। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। जीवन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन कथाओं में उद्भासित हुए हैं। लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती हैं। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। उर्मिला शिरीष अपनी कहानियों के पात्रों के अंतस के तार-तार खोलकर सामने लाती हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है।

कथाकार उर्मिला शिरीष की कहानियों में समकालीन समय, समाज और मनुष्य के बहुआयामी संत्रास की गहन और संवेदनशील अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इन कहानियों का संसार हमारे वर्तमान समय की जटिलताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं से निर्मित है, जहाँ बाहरी सामाजिक दबाव और भीतर की मानवीय संवेदनाएँ एक-दूसरे से टकराती हुई दिखाई देती हैं। लेखिका ने अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से मानवीय जीवन की उन अंतर्धाराओं को पकड़ा है, जो अक्सर सतह पर दिखाई नहीं देतीं, किंतु जीवन की दिशा और अर्थ को गहराई से प्रभावित करती हैं। साथ ही, इन रचनाओं में अंतर्विरोधों का ऐसा जाल रचा गया है, जो मनुष्य की मानसिक, सामाजिक और नैतिक अवस्थाओं को व्यापक परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित करता है। उर्मिला शिरीष की कहानियाँ रिश्तों की गहराई और संवेदनशीलता को इतनी तीव्रता से व्यक्त करती हैं कि पाठक भावनात्मक रूप से प्रभावित हो जाते हैं। वे अपने आसपास के समाज, पर्यावरण और मानवीय सरोकारों का जीवंत चित्रण करती हैं। उनके पात्र अन्याय, वर्चस्व और सामंतवादी सोच के ख़िलाफ़ खड़े होते हैं और मानवीय मूल्यों- संवेदना, करुणा और मानवता को उजागर करते हैं। आज की कृत्रिम और फार्मूला आधारित कहानियों के विपरीत, उनकी रचनाएँ सहज, पठनीय और जीवन के यथार्थ से जुड़ी होती हैं।

'मन न भये दस बीस' कहानी एक जटिल भाव-भूमि पर रची गई कथा है, जिसमें प्रेम, विवाह, वैवाहिक असंतोष और जीवन के उत्तरार्ध में उपजी करुणा, इन सभी का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्तर पर गहन चित्रण मिलता है। कहानी की शुरुआत स्वप्न-प्रेरित आकर्षण से होती है, जहाँ सूत्रधार को आदित्य का एक स्वप्न में दिखना उसके जीवन की दिशा बदल देता है। यह तत्व केवल रोमांटिक आकर्षण नहीं है, बल्कि अवचेतन इच्छाओं और आकांक्षाओं का प्रतीक भी बन जाता है। आदित्य से वास्तविक भेंट के बाद दोनों के बीच आकर्षण का विकास इस बात को दर्शाता है कि प्रेम अक्सर तर्क से अधिक भावनाओं और परिस्थितियों से संचालित होता है। कथा में विवाह के बाद सूत्रधार का राजीव के साथ जीवन एक प्रकार की भावनात्मक रिक्तता को उजागर करता है। राजीव का केवल आर्थिक सफलता और बाहरी आकर्षण पर केंद्रित रहना तथा पत्नी को केवल शारीरिक संतुष्टि के साधन के रूप में देखना, आधुनिक वैवाहिक जीवन की एक गंभीर विडंबना को सामने लाता है। यह स्थिति स्त्री-मन की उपेक्षा और संबंधों में संवेदनहीनता की समस्या को रेखांकित करती है। आदित्य का अमेरिका जाना और फिर सूत्रधार का भी वहाँ जाना, जीवन की परिस्थितिजन्य मजबूरियों और प्रवासन के प्रभाव को दर्शाता है। इस हिस्से में लेखिका यह संकेत देती हैं कि आधुनिक जीवन में व्यक्ति केवल भावनाओं से नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक दबावों से भी संचालित होता है। तीस वर्षों बाद जब सूत्रधार को आदित्य के कैंसर की सूचना मिलती है, तो सूत्रधार आदित्य से मिलने भारत आती है। राजीव की मृत्यु और आदित्य की असाध्य बीमारी के बीच सूत्रधार का भारत लौटकर उसकी सेवा करना उसके भीतर के मानवीय मूल्यों, करुणा और पुराने संबंधों की गहराई को उजागर करता है। अंततः आदित्य की मृत्यु के बाद उसका पुनः अमेरिका लौटना जीवन की निरंतरता और भावनात्मक विराम की अनिवार्यता को दिखाता है। समग्र रूप से यह कहानी प्रेम, विवाह, अकेलापन, इच्छाओं और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को अत्यंत

संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है। इसमें यह भी स्पष्ट होता है कि जीवन में प्रेम केवल प्रारंभिक आकर्षण नहीं, बल्कि समय, परिस्थितियों और ज़िम्मेदारियों के बीच बदलती हुई एक गहरी मानवीय अनुभूति है। यह कहानी पाठक के मन में नैतिक संवेदना को जाग्रत करती हुई उसे मूल्य-चेतना की ओर ले जाती है।

'पत्ते झड़ रहे हैं' कहानी में प्रेम और आत्मिकता का भाव है। इस कहानी में दांपत्य जीवन के सपनों और युवाप्रेम की उलझनों का टकराव दिखाई देता है। इस तरह की कहानी में प्रेम का केवल कोमल भाव नहीं रहता, बल्कि उसमें आकांक्षाएँ, असुरक्षाएँ, स्वार्थ और कभी-कभी छल भी शामिल हो जाते हैं। युवावस्था के भावनात्मक आवेग और दांपत्य जीवन की वास्तविकताओं के बीच जो अंतर होता है, वही कथानक को जटिल बनाता है। लेखिका इसी जटिलता के मनोवैज्ञानिक पक्ष को उभारती हैं, जैसे पात्रों के भीतर चल रहा द्वंद्व, उनके निर्णयों की अनिश्चितता और रिश्तों में भरोसे व भ्रम की स्थिति। 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' कहानी में प्रेम का, आत्मिकता का भाव है। इस कहानी का शीर्षक सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के प्रसिद्ध गीत पर आधारित है। 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' कहानी पिता पुत्र के संबंध पर आधारित है। कहानी एक बुज़ुर्ग व्यक्ति की मृत्यु के दृश्य से आरम्भ होती है। स्पंदनविहीन पड़ी देह, शांत चेहरा, जैसे जीवन की सारी हलचल एक क्षण में थम गई हो। यह उसी व्यक्ति की कथा है जिसने अपना पूरा जीवन परिवार के लिए खपा दिया। अपने सपनों, इच्छाओं और सुखों का त्याग कर वह अपनों के लिए जीता रहा, लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद उसका अस्तित्व धीरे-धीरे घर में अप्रासंगिक होने लगता है। समय के साथ वह व्यक्ति शारीरिक ही नहीं, भावनात्मक रूप से भी नि:सहाय होता जाता है। पत्नी के ताने, परिवार के अन्य सदस्यों का तटस्थ और उदासीन व्यवहार उसे भीतर से तोड़ देता है। उसके जीवन में यदि कोई सहारा है, तो वह उसका बड़ा बेटा है, जो न केवल उसका पुत्र है, बल्कि उसका हमराज, उसका मित्र बन जाता है। अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर वह बुज़ुर्ग एक गहरे रहस्य का उद्घाटन अपने बड़े बेटे के सामने करता है। वह बताता है कि युवावस्था में उसने एक विधवा स्त्री रूपा की सहायता की थी और तब से उसके मन में उसके प्रति एक अनकहा, पवित्र स्नेह बना रहा। अब जीवन के अंत में उसकी एक ही इच्छा रह गई है, रूपा को एक बार देख लेने की। बड़ा बेटा अपने पिता की इस अंतिम इच्छा को पूरा करना चाहता है, लेकिन परिस्थितियाँ उसके पक्ष में नहीं होतीं और वह ऐसा नहीं कर पाता। यह अधूरी इच्छा ही उस बुज़ुर्ग के जीवन की अंतिम कसक बन जाती है। पिता की मृत्यु के बाद कहानी एक मार्मिक मोड़ लेती है। रूपा, जो अब तक उसी घर में एक किरायेदार के रूप में रह रही थी, चुपचाप घर की चाबियाँ बड़े बेटे को सौंपकर चली जाती है। संवेदनाओं की आर्द्रता में भीगी यह कहानी जीवन, मृत्यु, उपेक्षा और मौन प्रेम की गहरी पड़ताल करती है और पाठक के मन में एक स्थायी टीस छोड़ जाती है।

'अँगारों की हँसी' सांप्रदायिकता के जटिल और संवेदनशील प्रश्नों को उठाते हुए उसके बीच फँसे लोगों की गहरी पीड़ा और मानसिक यातना का मार्मिक चित्रण करती है। यह केवल सामाजिक विडंबनाओं को उजागर करने वाली कथा नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं की त्रासदी को सामने लाने वाली रचना है। कहानी का केंद्र गरिमा और ज़फ़र का प्रेम है, जो सामाजिक और सांप्रदायिक दीवारों के बीच पनपता है। उनका संबंध इस बात का प्रतीक बन जाता है कि प्रेम किसी भी प्रकार के भेदभाव से परे होता है, लेकिन समाज की संकीर्ण सोच और पूर्वाग्रह उसे सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाते। इस प्रकार, यह कहानी एक ओर सांप्रदायिकता की कठोर वास्तविकता को उजागर करती है, तो दूसरी ओर प्रेम की कोमलता और उसकी जिजीविषा को भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। 'दीवार के पीछे' कहानी युवावस्था के प्रेम और दांपत्य जीवन के सपनों के बीच चलने वाले संघर्षों को दिखाती है। यह कहानी समाज की दहकती हुई आग में दो प्रेमियों के डूबते-उभरते संघर्ष को उकेरती है। सांप्रदायिक तनाव के बीच जन्मा उनका प्रेम अनेक प्राणांतक बाधाओं और संघर्षों से जूझता हुआ आगे बढ़ता है। इसमें प्रेम की कोमलता, छल की पीड़ा और आकांक्षाओं की तीव्रता सब एक साथ मौजूद हैं। कहानी सिर्फ घटनाओं का वर्णन नहीं करती, बल्कि पात्रों के मन के भीतर चल रही उलझनों, द्वंद्व और भावनात्मक उतार-चढ़ाव को गहराई से उजागर करती है। कथाकार अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से यह दिखाने की कोशिश करती है कि प्रेम हमेशा सरल या निष्कलंक नहीं होता, उसमें इच्छाएँ, भ्रम, स्वार्थ और कभी-कभी धोखा भी शामिल हो सकता है। इन सबके बीच पात्रों का मनोविज्ञान कहानी का मुख्य केंद्र बन जाता है। यह कहानी साम्प्रदायिकता के सवालों को उठाती हुई उसमें फँसे हुए लोगों की यातना को बयान करती हैं।

'नाच गान' कहानी में लीना एक मुस्लिम युवक इमरान से प्रेम करती है और उसके साथ संबंध में रहती है। दोनों का यह संबंध सांप्रदायिक सीमाओं को पार करने वाला है, लेकिन समाज और परिवार इसे स्वीकार नहीं करते। इमरान के पिता इस रिश्ते के विरोध में लीना और उसके परिवार को धमकाते हैं, क्योंकि वे अपने बेटे का विवाह किसी गैर-मुस्लिम लड़की से नहीं करना चाहते। दूसरी ओर, हिंदू संगठन के लोग भी लीना पर दबाव और धमकी बनाते हैं। यह कहानी दो युवाओं के प्रेम के सामने खड़ी सांप्रदायिकता, सामाजिक दबाव और कट्टर मानसिकता की जटिलताओं को उजागर करती है। यह कहानी सांप्रदायिकता की जटिल और बहुआयामी प्रकृति को उभारते हुए उसके बीच फँसे आम लोगों की पीड़ा, असुरक्षा और मानसिक यातना का अत्यंत मार्मिक चित्रण करती है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि सांप्रदायिक तनाव केवल वैचारिक या राजनीतिक स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि मनुष्य के दैनिक जीवन, उसके रिश्तों और अस्तित्व तक को प्रभावित करता है। 'गुनाह-ए-इश्क़' कहानी सामाजिक दबाव, पारिवारिक विरोध

और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संघर्ष को दर्शाती है। अमीन और नंदिता का संबंध पारंपरिक मान्यताओं के विरुद्ध होने के कारण उन्हें परिवार और समाज दोनों से विरोध झेलना पड़ता है। ख़ासकर नंदिता के भाइयों और कुछ संगठनों की धमकियाँ समाज में मौजूद असहिष्णुता को उजागर करती हैं। कहानी में डर और असुरक्षा का माहौल भी दिखता है, लेकिन साथ ही साहस और आत्मनिर्णय की भावना भी उभरकर आती है। नंदिता का धीरे-धीरे मज़बूत बनना और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना इसका सकारात्मक पक्ष है। यह कथा प्रेम, संघर्ष और आत्मनिर्भरता की यात्रा को दर्शाती है, जिसमें सामाजिक बाधाओं के बावजूद अपने निर्णय पर अडिग रहने का संदेश मिलता है।

'परिंदों का लौटना' कहानी एक गहरी, संवेदनशील और मनोवैज्ञानिक स्तर पर असर छोड़ने वाली प्रेम कथा है, जिसमें अतीत और वर्तमान के बीच फँसे दो व्यक्तियों कांता और कपिल की भावनात्मक उलझनों को बारीकी से उकेरा गया है। लगभग सैंतालीस वर्षों बाद पुन: स्थापित हुआ संपर्क उनके भीतर दबे हुए प्रेम, स्मृतियों और अधूरेपन को फिर से जीवित कर देता है। कहानी का केंद्रीय द्वंद्व केवल मिलन का नहीं, बल्कि नैतिकता, सामाजिक मर्यादाओं और आत्म-संघर्ष का है। कांता का चरित्र विशेष रूप से प्रभावशाली है, जो एक ओर अपने परिवार, सामाजिक छवि और ज़िम्मेदारियों से बँधी है, वहीं दूसरी ओर अपने बीते प्रेम की सच्चाई से भी भाग नहीं पाती। कपिल अपेक्षाकृत सहज है, वह प्रेम को स्मृति और आत्मिक जुड़ाव के रूप में देखता है, जबकि कांता उसे संभावित विघटन के रूप में महसूस करती है। अतीत के प्रसंग और वर्तमान की बेचैनी का संतुलित चित्रण कहानी को जीवंत बनाता है। अंत विशेष रूप से प्रतीकात्मक है। कांता का ख़तों को जलाने के बजाय सँभाल कर रखना यह दर्शाता है कि वह अपने अतीत को नकारती नहीं, बल्कि उसे स्वीकार कर अपने भीतर स्थान देती है। यह कहानी अधूरे प्रेम, स्मृति की शक्ति और आत्मस्वीकृति की मार्मिक कथा है, जो पाठक को यह सोचने पर मजबूर करती है कि जीवन में कुछ रिश्ते समय से परे होते हैं। जिन्हें जिया नहीं, केवल महसूस किया जाता है। 'दरवाज़े' कहानी का नायक सुशांत वास्तव में परंपराओं, सामाजिक बंधनों और स्थापित रिवाजों से जूझता हुआ दिखाई देता है। वह अंतत: अपनी शर्तों पर जीवन जीने का निर्णय लेता है, जो उसे एक तरह की मानसिक और आत्मिक मुक्ति का अनुभव कराता है। यह मुक्ति बाहरी परिस्थितियों से अधिक उसके भीतर की जकड़नों से छुटकारा पाने की है।

कहानी 'देखेगा सारा गाँव बंधु!' के माध्यम से मनुष्य के भीतर चलने वाले गहरे नैतिक द्वंद्व और सामाजिक दबावों की त्रासदी को उभारा गया है। मुख्य बात यह है कि नायक का पिता दो स्तरों पर संघर्ष करता रहा - एक ओर उसका वैवाहिक जीवन और पत्नी के प्रति निष्ठा, और दूसरी ओर उसकी प्रेयसी के प्रति उसका भावनात्मक जुड़ाव। समाज के भय और अपनी इज़्ज़त बचाने की मानसिकता के कारण वह अपनी प्रेयसी के प्रति अपने दायित्व को पूरा नहीं कर पाया। यही अधूरापन और अपराधबोध उसे जीवनभर कचोटता रहता है और वह मृत्यु तक इस पछतावे से मुक्त नहीं हो पाता। पुत्र जब पिता की मृत्यु के बाद उनकी अलमारी, डायरी और लाल कपड़े में रखी स्मृतियों से रूबरू होता है, तब उसे पिता के इस छिपे हुए जीवन का पता चलता है। शुरू में वह पिता को दोषी मानता है, उसे लगता है कि पिता ने उसकी माँ के साथ विश्वासघात किया। लेकिन जैसे-जैसे वह तड़प नाम से लिखे गए पत्र पढ़ता है, उसे पिता के भीतर का दर्द, अधूरापन और विवशता समझ में आने लगती है। इन पत्रों में पिता का वह पक्ष सामने आता है, जो सामाजिक बंधनों के कारण अपना वास्तविक जीवन नहीं जी सका। यही अपनी तरह का जीवन न जी पाने का मलाल कहानी का केंद्रीय भाव बन जाता है। अंतत: पुत्र उस अधूरे दायित्व को समझकर उसे किसी हद तक पूरा करने का प्रयास करता है। इस तरह कहानी केवल एक व्यक्ति की ग़लती या अपराध की कहानी नहीं रह जाती, बल्कि यह समाज के कठोर मानदंडों, व्यक्तिगत इच्छाओं के दमन और उससे उत्पन्न आजीवन पछतावे की मार्मिक अभिव्यक्ति बन जाती है।

कथाकार उर्मिला शिरीष की कहानियाँ प्रेमचंदीय परंपरा से जुड़ी हैं, जहाँ यथार्थ के साथ-साथ जीवन में आशा और आगे बढ़ने का रास्ता भी मिलता है। वे स्त्रियों, बच्चों, युवाओं और वृद्धों, सभी के जीवन के विभिन्न आयामों को ईमानदारी और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि जीवन के जटिल भावों- प्रेम, घृणा, संघर्ष, जिजीविषा को बहुत सहज ढंग से सामने लाती है। इस प्रकार, ये कहानियाँ केवल यथार्थ का चित्रण भर नहीं करतीं, बल्कि उसे एक व्यापक मानवीय संवेदना और चिंतन के स्तर पर रूपायित करती हैं, जहाँ पाठक स्वयं को, अपने समय को और अपने आसपास के समाज को एक नए दृष्टिकोण से समझने के लिए प्रेरित होता है। उर्मिला शिरीष हिन्दी कथा-साहित्य में उन लेखिकाओं में गिनी जाती हैं जिन्होंने लंबी कहानी को प्रभावी ढंग से साधा है। उनकी कहानियों में कथानक का विस्तार, पात्रों की गहराई और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विशेष रूप से उभरकर आता है। वे अक्सर सामाजिक यथार्थ, स्त्री-अनुभव और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को विस्तार से प्रस्तुत करती हैं, जिससे उनकी लंबी कहानियाँ बोझिल नहीं बल्कि असरदार बनती हैं। अपने आसपास के परिवेश, समाज और सरोकारों की सजीव तस्वीर प्रस्तुत करती इन कहानियों में जीवन के बिंब सघनता के साथ उभरकर आते हैं। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखिका ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है। उर्मिला शिरीष की कहानियाँ बाहर से भीतर की ओर यात्रा करती हैं। उर्मिला शिरीष के लिए कहानियाँ लिखना मानवीय संवेदनाओं को बचाए रखने एक सशक्त माध्यम है। आशा है कि 'कुछ चाँद ने कहा कुछ उसने सुना' का हिन्दी साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

000

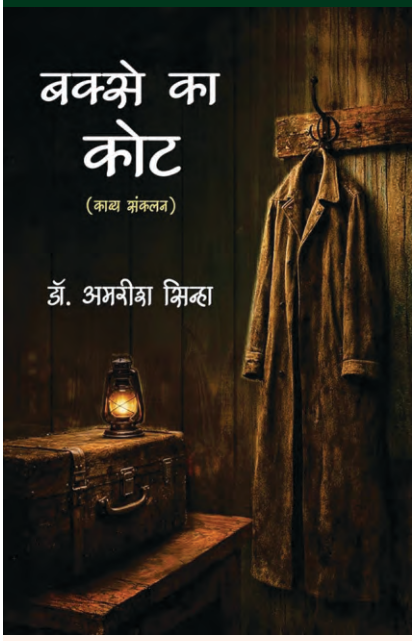

(कविता संग्रह)

बक्से का कोट

समीक्षक : राजेश कुमार सिन्हा
लेखक : डॉ. अमरीश सिन्हा
प्रकाशक : विजया बुक्स, दिल्ली

राजेश कुमार सिन्हा
फ्लैट नंबर 503, बी विंग, सरला गार्डन सी एच एस, जवाहर लाल नेहरू रोड, वाकोला, सांताक्रुज (पूर्व), मुंबई 400052
मोबाइल- 7506345031
ईमेल- sinharajeshmumbai@gmail.com

समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य में एक दिलचस्प विडंबना दिखाई देती है। कविता लगातार अधिक बौद्धिक, अधिक वैचारिक और कई बार अधिक कृत्रिम होती जा रही है। ऐसे समय में यदि कोई कृति बिना किसी शोर शराबे के, बिना किसी 'घोषणा' के, सीधे जीवन के भीतर से उठकर सामने आती है, तो उसका महत्त्व अपने आप बढ़ जाता है। डॉ. अमरीश सिन्हा के काव्य-संग्रह 'बक्से का कोट' में कविता अपने सबसे सरल, लेकिन सबसे सच्चे रूप में उपस्थित है। इस संग्रह को पढ़ते हुए सबसे पहले जो बात महसूस होती है वह है उसकी ईमानदारी। यहाँ संग्रहित कविताएँ किसी सजावटी भाषा या बौद्धिक जटिलता का सहारा नहीं लेती हैं बल्कि यहाँ जो कुछ भी है वह जीवन से सीधा उठाया गया है, बिना किसी आडंबर के। दूसरे शब्दों में कहें तो यह उन दुर्लभ कृतियों में से है जहाँ कवि अपने अनुभवों को सजाने सँवारने की कोशिश नहीं करता, बल्कि उन्हें उसी रूप में सामने रखता है जैसे वे घटित हुए।

'बक्से का कोट' शीर्षक अपने आप में एक पूरा रूपक है। 'बक्सा' जिसमें हम अपनी पुरानी चीज़ें, यादें, पत्र, रिश्तों के अवशेष और अपने अतीत के छोटे-छोटे टुकड़े सहेजकर रखते हैं। 'बक्से का कोट' उसी तरह सहेज कर रखे गए एक कोट पर केंद्रित कविता है जो इस संग्रह की शीर्षक कविता भी है। दरअसल पिता के कोट पर रचित यह एक ऐसी कविता है जिसे पढ़ कर आँखें गीली हो जाती हैं और बहुत देर तक वह 'कोट' पाठक के ज़हन में घूमता रहता है। और एक दिन घर की खूँटी पर टँगे सभी कपड़े चोरी हो जाते हैं और पिता को बक्से वाला कोट सिर्फ बनियान के ऊपर ही पहन कर ड्यूटी पर जाना पड़ता है और बाद में पूरा परिवार किताबों के बीच छिपाए गए / गुल्लक में जमा पैसों को जोड़ने की कोशिश करता है कि शायद इससे कहीं पिता के लिए नए कपड़े आ जाएँ। इसमें कोई दो राय नहीं कि शब्दों के सहारे ऐसा शब्द चित्र खींच पाना तभी संभव हो सकता है जब ज़हन में क़ैद यादों और संवेदनाएँ एक दूसरे की पूरक हों। और शायद इसीलिए यह कहना समीचीन होगा कि इस संग्रह की कविताओं का एक बड़ा हिस्सा स्मृति और समय के द्वंद्व से उपजता है जो दिल के कोमल से रेशे को बार बार स्पर्श करता है।'पहले की दुनिया' कविता इस द्वंद्व का सबसे स्पष्ट और प्रभावशाली उदाहरण और शायद इस संग्रह की वैचारिक धुरी भी है। पहली दृष्टि में यह कविता एक सामान्य सी बात कहती प्रतीत होती है 'पहले सब अच्छा था, आज सब ख़राब है।' लेकिन जैसे जैसे हम कविता के भीतर उतरते हैं, यह स्पष्ट होता है कि यह कथन जितना सरल है, उतना ही जटिल भी। यह कविता दरअसल मनुष्य की उस प्रकृति को उजागर करती है, जिसमें वह वर्तमान से असंतुष्ट हो कर अतीत को जीवन का आदर्श बना लेता है। पर कवि यहाँ केवल अतीत का महिमामंडन नहीं कर रहा, बल्कि स्मृति की प्रकृति पर एक सूक्ष्म टिप्पणी कर रहा है। 'प्राचीनतम पुस्तकों के पन्ने भी बताते हैं...' इस पंक्ति के माध्यम से वह यह संकेत देता है कि हर पीढ़ी अपने समय को गिरावट का समय मानती है और यह एक सामान्य मानवीय प्रवृत्ति है। यहाँ कविता एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाती है कि क्या वास्तव में दुनिया बदल गई है, या हम बदल गए हैं?

यह प्रश्न पूरे संग्रह में बार-बार अलग-अलग रूपों में सामने आता है और कविता को एक गहरी दार्शनिक ऊँचाई भी देता है। इसी तरह 'बाबूजी' कविता इस संग्रह के भावनात्मक केंद्र को परिभाषित करती है। यह कविता भारतीय पारिवारिक संरचना के उस पक्ष को उजागर करती है जहाँ प्रेम का प्रदर्शन कम, लेकिन उसकी गहराई अधिक होती है। कविता में पिता का जो चित्र उभरता है, वह न तो पूरी तरह कठोर है, न पूरी तरह कोमल बल्कि वह एक जटिल व्यक्तित्व है जिसमें ग़ुस्सा भी है, अनुशासन भी, और एक गहरा, लेकिन अनकहा स्नेह भी। 'हज़ार बार कहा है, मत करो ऐसा' यह पंक्ति एक साधारण डाँट नहीं, बल्कि उस प्रेम का संकेत है जो अपने आप को व्यक्त करने में संकोच करता है। कविता का सबसे प्रभावी पक्ष यह है कि वह पिता को किसी आदर्श प्रतिमा में नहीं बदलती। वह उन्हें उनकी सीमाओं और संवेदनाओं के साथ उनके पूरे मानवीय स्वरूप में प्रस्तुत करती है। यह कविता पढ़ते हुए पाठक अपने ही जीवन के उन पलों की ओर लौटता है जब उसने अपने पिता को समझा नहीं या समझते हुए भी अनदेखा कर दिया।

'बूढ़े पिता' कविता इस भावभूमि को और अधिक गहरा और मार्मिक बना देती है। यहाँ पिता समय के साथ बदलते नहीं, बल्कि पीछे छूटते जाते हैं। गाँव में अकेले रह गए पिता, उनका इंतज़ार, उनका यह कहना कि 'तुम आते हो तो लगता है मैं हूँ' यह केवल एक भावुक पंक्ति नहीं, बल्कि अस्तित्व का एक गहरा प्रश्न है। यह कविता आधुनिक जीवन की उस त्रासदी को उजागर करती है, जहाँ सफलता और व्यस्तता के बीच सबसे पहले टूटते हैं संबंध। यहाँ कवि किसी आरोप या शिकायत की भाषा नहीं अपनाता बल्कि वह केवल स्थिति को दर्ज करता है और यही दर्ज करना पाठक के भीतर एक गहरी बेचैनी पैदा करता है।

इस संग्रह की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल व्यक्तिगत अनुभवों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक संरचनाओं पर भी तीखी टिप्पणी करता है। 'घेरा' और 'स्त्री' जैसी कविताएँ इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। 'घेरा' में कवि जिस तरह स्त्री की आवाज़ को नियंत्रित करने वाली सामाजिक व्यवस्था को उजागर करता है, वह अत्यंत प्रभावी है। 'बोलना है... बोलना ही क्यों है...' ये पंक्तियाँ उस मानसिकता को सामने लाती हैं, जहाँ स्त्री की अभिव्यक्ति पर अदृश्य नियंत्रण है। 'पुरुष ही समाज है' यह पंक्ति केवल एक कथन नहीं, बल्कि एक कठोर यथार्थ है, जिसे हम अक्सर सामान्य मानकर स्वीकार कर लेते हैं। 'स्त्री' कविता इस विमर्श को और अधिक तीखा बनाती है। 'रोती स्त्री भी सोती नहीं... मुस्कुराती स्त्री भी सोती नहीं'...ये पंक्तियाँ स्त्री के जीवन की उस निरंतर थकान को व्यक्त करती हैं, जो केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी है। 'बात-बात पर पिटने वाली स्त्री कैसे सोए' यह प्रश्न केवल कविता का नहीं, पूरे समाज का प्रश्न बन जाता है। यहाँ कवि समाधान नहीं देता, बल्कि समस्या को पूरी तीव्रता के साथ सामने रखता है और यही उसे प्रभावी बनाता है।

डॉ. अमरीश की कविताओं में संवेदनाओं और ज़िंदगी की तल्ख़ अनुभूतियों के अलावा कुछ ऐसे बिंब भी हैं जो समसामयिक होने के साथ साथ सटीक और सार्थक भी हैं। उदाहरण के तौर पर इन कविताओं को देखा जा सकता है। 'क्यों पढ़ें' कविता में हिन्दी पुस्तकों की स्थिति पर एक तीखी, किंतु संयत टिप्पणी है। यहाँ कोई आक्रोशपूर्ण उद्घोष नहीं, बल्कि एक शांत विडम्बना है कि पुस्तकें बिकती नहीं, पुस्तकालयों में वे केवल 'ख़रीदी' जाती हैं, और वह भी किसी वास्तविक पाठकीय ज़रूरत से नहीं, बल्कि बजट, बंदिशों और सिलेबस की औपचारिकताओं के कारण। कविता यह संकेत देती है कि साहित्य का जीवंत संबंध पाठक से टूट रहा है और उसकी जगह एक कृत्रिम व्यवस्था ने ले ली है। 'कुछ तो लिखी भी उसी हवाले से जाती हैं' यह पंक्ति पूरे साहित्यिक परिदृश्य पर एक प्रश्नचिह्न की तरह खड़ी हो जाती है। यहाँ भाषा सहज है, लेकिन व्यंजना गहरी है। 'साइकिल' कविता स्मृति और आत्मस्वीकृति का सुंदर उदाहरण है। बचपन, मित्रता और छोटे छोटे संघर्षों की यह कथा केवल एक साइकिल चलाने की कठिनाई नहीं, बल्कि उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश की झलक भी है। रेल फाटक पार करना, दोस्तों का इंतज़ार करना, अपनी 'कमज़ोरी' का आत्मबोध ये सब मिलकर एक मानवीय चित्र बनाते हैं। 'मेरी साइकिल शायद भारी थी / या मैं कमज़ोर रहा होऊँगा' यह स्वीकार करना ही कहीं न कहीं जीवन के व्यापक संदर्भों तक फैल जाता है, दूसरे शब्दों में कविता की सादगी ही इसकी ताक़त है।

'तंगी' कविता आर्थिक दबावों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को रूपक के माध्यम से व्यक्त करती है। ब्याज और चक्रवृद्धि का ज़िक्र केवल आर्थिक शब्दावली नहीं रह जाता, बल्कि वह जीवन की उलझनों का प्रतीक बन जाता है। बचपन की उस कहानी का स्मरण जिसमें एक वरदान अभिशाप बन जाता है,बहुत प्रभावशाली ढंग से वर्तमान स्थिति को रेखांकित करता है। यहाँ कविता यह कहती प्रतीत होती है कि सुविधाएँ भी कभी-कभी ऐसी जकड़न बन जाती हैं, जिससे निकलना कठिन हो जाता है। यहाँ प्रयोग की गई भाषा में एक प्रकार की सहज कथा धर्मिता है, जो विचार को और अधिक प्रभावी बना देती है।

एक अन्य कविता 'नल की टोंटी' (जो इस संग्रह की सबसे लंबी कविता है) में भी इसी तरह जीवन के छोटे अनुभवों को पकड़ने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इनकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि कविता शुरू तो नल के टोंटी में पानी नहीं आने से होती है पर धीरे-धीरे यह आर्थिक तंगी से जूझते हुए परिवार का तब्सिरा पेशा कर देती है। कविता के भाव से यह भी स्पष्ट होता है कि कवि बाहरी घटनाओं से अधिक उनके भीतर छिपे अर्थों को पकड़ना चाहता है। यह शैली इन कविताओं को एकसूत्र में बाँधती है जहाँ दृश्य छोटे हैं, लेकिन संकेत बड़े।

'स्कूल का बस्ता' कविता घरेलू जीवन की एक मार्मिक तस्वीर प्रस्तुत करती है। रात का सन्नाटा, बच्चे के रोने की आवाज़, स्त्री का करुण स्वर और घर में उपस्थित एक निष्क्रिय पुरुष ये सब मिलकर एक ऐसा दृश्य बनाते हैं, जो समाज की कई परतों को एक साथ उजागर करता है। 'इस क्रंदन में रुदन कम / कलप ज़्यादा थी' यह पंक्ति भावनात्मक गहराई को बहुत प्रभावी ढंग से सामने लाती है। पुरुष का दिनभर घर में रहना और फिर शाम को 'अड्डे' पर जाना उसकी ज़िम्मेदारियों से पलायन का संकेत देता है। कविता बिना किसी प्रत्यक्ष आरोप के एक गहरी सामाजिक आलोचना प्रस्तुत करती है।

डॉ. अमरीश सिन्हा की कविताएँ अपने भीतर उस शांत, गहरे और अनकहे जीवन सत्य को संजोए हुए हैं, जिसे अक्सर साहित्य की चकाचौंध में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। आइए 'सड़क', 'न्योता', 'चुप्पी', 'स्मृति' और 'अम्मा' जैसी कुछ कविताओं पर नज़र डालते हैं जो एक ऐसी संवेदनात्मक दुनिया रचती हैं, जहाँ शब्द कम हैं, लेकिन अर्थों का विस्तार अत्यंत व्यापक है। इन कविताओं को एक साथ पढ़ना मानों जीवन के उन सूक्ष्म क्षणों में उतरना है, जो देखने में सामान्य प्रतीत होते हैं, पर भीतर से गहरे सामाजिक और

मानवीय यथार्थ को उजागर करते हैं। इन कविताओं का संसार किसी बड़े घटनाक्रम या नाटकीयता से नहीं बनता, बल्कि रोज़मर्रा की छोटी-छोटी स्थितियों से निर्मित होता है। 'सड़क' में एक बच्ची की फटी फ्रॉक का प्रसंग है, जो सतही तौर पर बहुत मामूली लगता है, लेकिन कवि उसे जिस तरह प्रस्तुत करते हैं, वह अभाव की एक मार्मिक कथा बन जाती है। बच्ची की आँखों का सजल होना, उसका रोने की इच्छा को दबा लेना, और यह सोचकर चुप रह जाना कि उसके रोने से माँ भी रो पड़ेगी, यह सब उस संवेदनशीलता का परिचायक है, जहाँ बचपन अपनी सहजता खोकर समय से पहले ही परिपक्व हो जाता है। फ्रॉक का कपड़ा केवल एक वस्त्र नहीं रह जाता, वह उस आर्थिक तंगी और असहायता का प्रतीक बन जाता है, जिसे शब्दों में कहना आसान नहीं होता। यह कविता हमें यह भी बताती है कि अभाव केवल बाहरी नहीं होता, वह भीतर की भावनाओं को भी कस देता है, उन्हें व्यक्त होने से रोकता है। इसी तरह 'न्योता' कविता में रोटी, तवा और अँगीठी जैसे साधारण घरेलू उपकरणों के माध्यम से एक बड़े यथार्थ को व्यक्त किया गया है। यहाँ रोटी का कच्चा रह जाना केवल एक रसोई की समस्या नहीं, बल्कि उस जीवन की विफलता का संकेत है जहाँ संसाधनों की कमी हर प्रयास को अधूरा छोड़ देती है। अँगीठी का निराश हो जाना, लकड़ी का सीला होना और उसका ठीक से न जल पाना आदि बिंब मिलकर उस संघर्षपूर्ण जीवन का रूपक बनाते हैं जिसमें इच्छा और साधन के बीच का अंतर लगातार बना रहता है। 'सुगन की माँ' का यह सोचना कि आज वह क्या खिलाएगी, मातृत्व की उस चिंता को सामने लाता है जो हर परिस्थिति में अपने बच्चों के लिए बेहतर चाहती है, लेकिन परिस्थितियों के आगे असहाय हो जाती है। यहाँ कवि ने वस्तुओं को मानवीय संवेदना से जोड़कर एक ऐसी दुनिया रची है जहाँ निर्जीव भी जीवित प्रतीत होते हैं और जीवन की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। 'चुप्पी' कविता इन सबके बीच एक अलग ही भावभूमि लेकर आती है, जहाँ अभाव का शोर नहीं, बल्कि संबंधों का मौन प्रमुख है। यह कविता उस संवाद को पकड़ती है जो शब्दों से परे होता है। यहाँ एक ऐसी स्थिति है जहाँ बोलने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि भाव स्वयं ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। 'वह बोलती कुछ नहीं, पूरा चेहरा बोलता है' यह पंक्ति इस बात को रेखांकित करती है कि संप्रेषण केवल भाषा का विषय नहीं, बल्कि अनुभूति का भी है। शरीर, हाव-भाव और आँखें मिलकर एक ऐसा संवाद रचते हैं जो शब्दों से अधिक सशक्त होता है। कविता के अंत में 'नि:शब्द हो जाते शब्द, शब्दातीत हो जाते भाव' जैसी पंक्तियाँ इसे एक दार्शनिक ऊँचाई प्रदान करती हैं, जहाँ भाषा की सीमाएँ स्पष्ट हो जाती हैं और मौन ही सबसे सशक्त अभिव्यक्ति बन जाता है। यह कविता आधुनिक जीवन की उस विडंबना को भी उजागर करती है जहाँ शब्दों की अधिकता के बावजूद वास्तविक संवाद कम होता जा रहा है।

'स्मृति' कविता में कवि हमें एक ऐसे जीवन की झलक दिखाते हैं, जहाँ श्रम, थकान और अभाव एक साथ चलते हैं। यह कविता किसी एक घटना का वर्णन नहीं करती, बल्कि जीवन की निरंतरता में व्याप्त संघर्ष को सामने लाती है। सुबह सुबह रोटियाँ सेंकना, रात को कुछ भी न पक पाना, थककर निढाल हो जाना ये सब मिलकर उस श्रमिक जीवन की कहानी कहते हैं, जिसमें विश्राम के लिए भी समय नहीं होता। स्मृति यहाँ केवल अतीत का बोध नहीं है, बल्कि वह वर्तमान की पीड़ा को और गहरा करती है। यह कविता एक तरह से उन अनगिनत जीवनों का प्रतिनिधित्व करती है जो लगातार श्रम करते हैं, लेकिन उनके हिस्से में संतोष या स्थायित्व नहीं आता। इसमें किसी प्रकार की करुणा का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि एक सधा हुआ, संयमित वर्णन है, जो पाठक को भीतर तक प्रभावित करता है। इन सबके बीच 'अम्मा' कविता एक भावनात्मक संतुलन प्रदान करती है। यह कविता मातृत्व की उस छवि को सामने लाती है, जो भारतीय जीवन में अत्यंत सामान्य होते हुए भी असाधारण है। माँ का निरंतर सक्रिय रहना, कभी आराम करते हुए न दिखना, हल्की सी आहट पर जाग जाना और बच्चे की ज़रूरतों के लिए तत्पर रहना आदि बिंब उस त्याग और समर्पण को व्यक्त करते हैं, जो अक्सर अनकहा रह जाता है। 'गोभी की खीर बनाना' जैसी छोटी सी बात भी स्मृति में एक बड़े भावनात्मक अर्थ के साथ उपस्थित होती है। यह कविता केवल एक व्यक्ति विशेष की माँ की कहानी नहीं है, बल्कि उस समूचे स्त्री जीवन का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने परिवार के लिए स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर देता है। इसमें कहीं भी अतिनाटकीयता नहीं है, बल्कि एक सहज प्रवाह है, जो इसे और अधिक प्रभावी बनाता है। डॉ. अमरीश सिन्हा की भाषा इस संग्रह की सबसे बड़ी ताक़त है,उनकी भाषा सरल है, लेकिन उसमें गहराई है। वे कठिन शब्दों या जटिल संरचनाओं का सहारा नहीं लेते बल्कि वे सीधे-सीधे बात करते हैं। यहाँ कविता कोई बौद्धिक पहेली नहीं, बल्कि एक संवाद है। हालाँकि, आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो कुछ सीमाएँ भी दिखाई देती हैं। कुछ कविताओं में भावों की पुनरावृत्ति है विशेषकर अतीत और वर्तमान के द्वंद्व में। लेकिन यह पुनरावृत्ति भी एक सीमा तक स्वाभाविक है, क्योंकि स्मृतियाँ स्वयं भी बार-बार लौटती हैं।

समकालीन हिन्दी कविता के संदर्भ में 'बक्से का कोट' का महत्त्व इस बात में है कि यह संग्रह जीवन से जुड़ा हुआ है। यह किसी कृत्रिम विमर्श का हिस्सा नहीं, बल्कि वास्तविक जब अनुभवों का दस्तावेज़ है। यह कविता हमें हमारे अपने जीवन से जोड़ती है उन संबंधों से, उन स्मृतियों से, उन सवालों से जिन्हें हम अक्सर टाल देते हैं। अंतत: यह कहा जा सकता है कि 'बक्से का कोट' केवल एक काव्य-संग्रह नहीं, बल्कि एक अनुभव है एक ऐसी यात्रा, जिसमें पाठक अपने ही जीवन की परतों से गुज़रता है। यह संग्रह हमें यह याद दिलाता है कि कविता केवल शब्दों का खेल नहीं, बल्कि जीवन का साक्षात्कार है,और शायद यही इस संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि यह हमें हमारे ही भीतर लौटने के लिए मजबूर करता है।

000

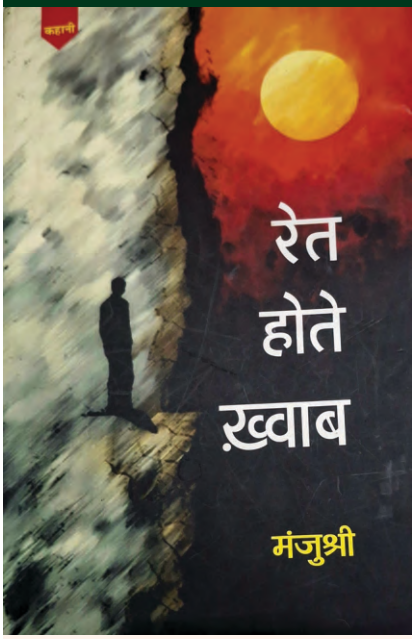

(कहानी संग्रह)

रेत होते ख़्वाब

समीक्षक : डॉ. अशोक वशिष्ठ

लेखक : मंजुश्री

प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर, दिल्ली

डॉ. अशोक वशिष्ठ
401, भगवती एमिनेंस, आर.आर.पाटिल गार्डन के निकट, सेक्टर- 13, नेरूल (पूर्व), नई मुंबई- 400706
मोबाइल- 9869337618
ईमेल- akvashu@gmail.com

कहानी ऐसा जुगनू है, जिसमें रोशनी कम, परंतु अँधेरा चीर देने की कूबत हो। वह पढ़ी तो एक साँस में जाए, किंतु सालों तक मन में अटकी रहे। नायक-नायिका नहीं, एक क्षण होता है उसका असली पात्र, वही क्षण जिसमें पूरा जीवन सिमट आता है। कहानी घटनाओं का हिसाब नहीं, अनुभूतियों का लेखा-जोखा है। इसमें आरंभ-मध्य-अंत का व्याकरण होता है, परंतु सबसे ज़रूरी होती है वह चुप्पी, जो आख़री पंक्ति के बाद पाठक के मन पर छा जाती है।

मंजुश्री आधुनिक हिन्दी कहानी जगत् में एक जाना-पहचाना नाम है। नीरज बुक सेंटर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित मंजुश्री का कहानी-संग्रह 'रेत होते ख़्वाब' में संकलित कुल तेरह कहानियाँ इस बात की साक्षी बनती हैं कि मंजुश्री वह लिखती हैं, जो वह स्वयं देखती और महसूस करती हैं। उनकी कहानीयाँ जीवन के विभिन्न आयामों से रू-ब-रू करवाती हैं। कहानियों में गाँव है, तबाह होते शहर है, महानगर है, नुक्कड़ पर बनी चाय की दुकान है, जंगल है, आदिवासियों के जीवन की त्रासदी है, विकास के नाम पर हो रहा जंगलों का विनाश है, युद्ध भूमि के दुष्परिणाम हैं और है कोमल अनुभूति लिए प्रेम।

मंजुश्री का कहानी-संग्रह 'रेत होते ख़्वाब' समय की उस परत को छूता है, जहाँ यादें धूल नहीं बनतीं, धड़कन बन जाती हैं। कहानियों के इस कोलाज में गाँव की गलियाँ हैं, जो शहर के शोर में भी पीछा नहीं छोड़तीं, स्त्री के वे मौन हैं, जो चीत्कार से ज़्यादा गूँजते हैं, और ऐसे ख़्वाब हैं, जो मुट्ठी में रेत-से फिसलते तो हैं, पर हथेली की लकीरों में अपना नक़्श छोड़ जाते हैं। मंजुश्री कहानियों में व्यक्ति को उसके अकेलेपन में नहीं, उसके होने के अहसास में तलाशती हैं। यह संग्रह घटनाओं का पुलिंदा नहीं, अनुभूतियों का रेगिस्तान है, जहाँ हर कण तपता है, और हर तपिश एक कहानी बन जाती है। मंजुश्री की कहानियाँ सीधे-सीधे जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं। कहानियों मे कहीं भी कृत्रिमता नज़र नहीं आती। लेखिका के अपने अनुभव हैं, जो यथार्थ के धरातल पर कहानी बनकर उभरते हैं। यह कहानी-संग्रह उन पाठकों के लिए है, जो रिश्तों की किरचें समेटने का हुनर जानते हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'रेत होते ख़्वाब' में ख़्वाबों का रेत हो जाने की निजी दास्तान नहीं, बल्कि यह कहानी बड़ी त्रासदी का दस्तावेज़ है। यह कहानी यमन के सना शहर की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। रेत होते ख़्वाब यहाँ सिर्फ़ रूपक नहीं, हक़ीक़त हैं। सना के आसमान से गिरते बम जीवन को जैसे रेत में तब्दील कर देते हैं। यह कहानी आँसू नहीं माँगती, यह जवाब माँगती है कि युद्ध आख़िर क्यों? यह कहानी सिर्फ़ सना शहर की कहानी नहीं है। यह हर उस जगह की कहानी है, जहाँ जवान लड़के युद्ध में झोंक दिए जाते हैं। कहानी में गिब्रान, नबील और अन्य

घायल सैनिक इलाज के लिए भारत आते हैं। यमन और भारत तक के बीच लेखिका कहानी के माध्यम से शांति का एक भूगोल रचती है। भारत से वापसी पर गिब्रान जब ज़ेहरा को बाहों में भरता है, तो जैसे सारे कायनात की ख़ुशी और सुकून गिब्रान के ज़हन में समा गया हो। रेत होते ख़्वाब पलकों से बाहर आने के लिए बेताब होने लगे।

कहानी 'उत्सव मृत्यु का' संग्रह की दूसरी कड़ी है। पहली कहानी जहाँ युद्ध की क्रूर, असमय मौत का खेमा है, तो दूसरी कहानी जीवन-चक्र की स्वीकृति का खेमा है। कहानी में काशी का मणिकर्णिका घाट जैसे समूचा ब्रह्मांड बन गया है। एक ओर मृत्यु की कतार है, निरंतरता है, वहीं दूसरी ओर बच्चे और युवा लड़के छलनियों में मुर्दा जलने के बाद की राख छान रहे हैं मुर्दे के मुँह में रखे गए सोने की तलाश में। कुछ बच्चे गंगा में डुबकियाँ लगाकर फेंके गए सिक्के तलाश रहे हैं। अघोरी बाबा के अनुसार यह मृत्यु के बीच ज़िंदगी जीने की ज़द्दोज़हद है। अघोरी कहता है 'मृत्यु जीवन का अंत नहीं बल्कि सुंदरतम शिखर है।' लेखिका ने पहली दोनों कहानियों में मौत के दोनों छोरों को पकड़ लिया है। अघोरी के कंधे पर रखकर सवाल भी पूछ लिया है जिसे हम सब टालते हैं कि मौत उत्सव कब बनती है। मणिकर्णिका घाट के इर्द-गिर्द बुनी गई इस कहानी में घाट पर एक ही फ्रेम में जीवन का अंत है और आरंभ भी। यही काशी का सच है। कहानी मृत्यु के भय को जलाती है।

कहानी 'मुक्ति' में प्रमिला (पम्मी) और हीरो जैसे लगने वाले विकास का प्रेम और फिर शादी से जन्मी बेटी सुवर्णा है, जो हॉस्टल में रहकर पढ़ाई कर रही है। विकास पम्मी के साथ दुर्व्यवहार करने लगता है। वह शराब पीने लगता है। घर में कलह शुरू हो जाती है। विकास मारपीट भी करने लगा है। विकास का शरीर खोखला हो जाता है। पम्मी अपनी मुक्ति की कामना करती हुई विकास की सेवा करती रहती है। विकास की मृत्यु के पश्चात अपनी सहेली से बात करते हुए पम्मी कहती है, 'तुम बताओ मन्नू, मन को छुये बगैर शरीर का कोई मतलब क्या? शादी क्या तन और मन को ज़बरन रौंदे जाने का स्वीकृति प्राप्त अधिकार है?' विधवा होकर पम्मी ख़ुश है। मनचाही उड़ान भरने के लिए आज़ाद है। कहानी में विकास की मुक्ति उसके शरीर से होती है, तो पम्मी की विकास से मुक्ति होती है। पम्मी का अहम प्रश्न- 'मन को छुये बगैर शरीर का कोई मतलब क्या?' यह सवाल सिर्फ़ पम्मी का नहीं है। यह प्रश्न पूर्व की कहानी 'उत्सव मृत्यु का' अघोरी के दर्शन को भी चुनौती दे रहा है। आत्मा का अगला पड़ाव तभी उत्सव है, जब इस पड़ाव में तन और मन दोनों की इज़्ज़त हो।

कहानी 'तुम्हारे बिना' कहानी 'मुक्ति' का जैसे दूसरा वर्जन है। विदेश में बसी आशा साहिल से प्यार कर बैठी और विवाह के लिए अपना धर्म परिवर्तन कर बन गई आएशा। आएशा बनी आशा का जीवन नर्क बन गया। साहिल ने आएशा के दोनों बच्चों को भारत में अपने घर भेज दिया। साहिल को भयंकर रोग लग गया। अपनी ज़िंदगी को बचाने के लिए आएशा तलाक़ के फ़ैसले तक जा पहुँची। बेहतर ज़िंदगी जीने का हक़ तो आएशा को भी है। यह कहानी सिर्फ़ घरेलू हिंसा की कहानी नहीं है। यह व्यक्ति की पहचान के खोने की कहानी है। लेखिका ने 21वीं सदी की औरत को कहानी 'मुक्ति' की पम्मी से भी एक क़दम आगे बढ़ा दिया है, जहाँ इंतज़ार नहीं, सीधा फ़ैसला है। कहानी 'तुम्हारे बिना' कहानी-संग्रह को ग्लोबल बना देती है, बताती है कि औरत का दुख सरहद नहीं देखता। पीड़ा की भाषा एक है, बस भूगोल बदल जाता है। कहानी का शीर्षक 'तुम्हारे बिना' ताना है उस मर्द पर, जो सोचता है कि औरत उसके बिना कुछ नहीं।

कहानी 'कोलाज' संग्रह की ऐसी कहानी है, जो पीछे मुड़कर देखती है। स्कूल, कॉलेज, मुंबई। यह फ्लैशबैक सिर्फ़ नॉस्टैल्जिया नहीं है। यह लेखिका का तरीक़ा है यह बताने का कि ख़्वाब कहाँ बनते हैं और ज़िंदगी कैसे उन ख़्वाबों को रेत न बनने देकर, उम्मीदों का गुलदस्ता बना देती है। 'कोलाज' इसी सवाल का जवाब है। कहानी में निखिल और पुनीता की दोस्ती है। दोनों टॉपर हैं, लेकिन दोनों के बीच टॉपर वाला कंपटीशन नहीं, दोस्त वाला सम्मान है। दोनों के बीच प्रेम इतना गहरा है कि निखिल एक दुर्घटना में गंभीर चोट लगने के कारण अपाहिज हो जाता है, फिर भी निखिल और पुनीता विवाह कर एक हो जाते हैं। लेखिका कहती हैं 'जहाँ मन छुआ हो, वहाँ टूटा तन भी रिश्ता नहीं तोड़ता।'

युद्ध सिर्फ़ सीमाओं पर नहीं लड़े जाते। मन के भीतर लड़ा जाने वाला युद्ध इंसान को तिल-तिल मारता है। कहानी 'फासले' की शिप्रा ऐसे ही युद्ध की शिकार है। नौ साल तक शिप्रा और रमन के बीच प्रेम था, शादी थी। फिर एक बच्ची आई कटे होंठ और कटा तालू लेकर और रमन के एक वाक्य ने जैसे सब कुछ ख़त्म कर दिया। अस्पताल में ही रमन ने कहा 'भगवान् ने टुकड़ों में बँटी ज़िंदगी की सज़ा दी है तुम्हें।' रमन यहीं नहीं रुकता, कहता है 'माँ का सोच ही ख़राब हो, तो बच्चे पर तो असर होगा ही।' कहानी 'फ़ासले' का रमन पढ़ा-लिखा महानगरीय मर्द है, किंतु उसकी नज़र में बच्ची की अपंगता शिप्रा की सज़ा है। यहाँ मन का जुड़ाव नहीं है। कहानी का शीर्षक 'फासले' व्यंग्य जैसा लगता है। फासला किसके बीच? रमन और शिप्रा के बीच या रमन और उसकी बच्ची के बीच या फिर समाज और अलग दिखने वाली बच्ची के बीच? कटे होंठ वाली बच्ची पिता को स्वीकार न होना समाज के चेहरे पर कटा हुआ निशान है।

कहानी 'महकते हरसिंगार' संग्रह की सबसे अनोखी कहानी है, जहाँ प्रत्यक्ष कोई कहानी ही नहीं है। यहाँ सिर्फ़ दो अजनबी युवा हैं, जिन्हें एक-दूसरे का नाम भी नहीं पता। केवल एक दिन युवक ने युवती को एक बगीचे में हरसिंगार के फूलों को अपने ही ऊपर उलीचते हुए देखा है। दोनों अजनबी एक-दूसरे को प्यार करने लगते हैं। दोनों ने एक-दूसरे के काल्पनिक नाम भी रख लिए हैं- प्रिया और अबीर। दोनों एक-दूसरे के नाम कविताएँ लिखकर काल्पनिक संवाद करते हैं। कहानी 'फ़ासले' में रमन ने नाम लेकर ताना मारा था 'भगवान् ने सज़ा दी है तुम्हें।'

वहाँ नाम था, किंतु प्रेम कब का मर गया था। 'महकते हरसिंगार' में पहचान ही नहीं है। नाम भी है, तो कल्पना में, फिर भी प्रेम है, वह भी अकूत प्रेम। हरसिंगार का फूल रात को चुपचाप गिर जाता है और सुबह उसकी ख़ुशबू पूरे बगीचे में बिखर जाती है। यह फूल मौन नहीं है। यह फूल गुनगुनाता है और महकता भी है। अंत में दोनों अजनबियों की कविता एक हो जाती है, जब वे एक-दूसरे को लिखते हैं- जैसे तैसे/ बीत गए दिन/ अब तक प्रिय/ आओ / हाथ पकड़ कर/ मुस्कानों की सड़क पर/ हँस कर कुछ क़दम/ तो साथ हो लें, फूलों की बोली बोलें, जीवन में रस घोलें- तुम्हारा अबीर / तुम्हारी प्रिया।

'महकते हरसिंगार' कहानी इस संग्रह की सबसे नाज़ुक पंखुड़ी है। प्रेम इतना संज़ीदगी से हुआ है दोनों के बीच कि दोनों के भाव ही नहीं, शब्द भी एक जाते हैं। लेखिका मंजुश्री ने भावों को ऊँचाई देते हुए यह भी सिद्ध कर दिया है कि सच्चा प्रेम देह का नहीं भाव का भूखा है।

कहानी 'मौन पलाश' में चार लड़कियाँ, छह लड़के वॉलिंटियर्स के रूप में राष्ट्रीय सेवा योजना के सरकारी प्रोजेक्ट के तहत सतपुड़ा के घने जंगलों में बाँधवगढ़ के निकट के गाँव में आदिवासियों के बीच कुछ दिन रहकर काम करने गए। वहाँ जाकर उन्होंने आदिवासियों की समस्याएँ ग़रीबी, बेरोज़गारी, अंधविश्वास कुपोषण, मलेरिया, टी.बी., निजी साफ-सफाई, पेयजल, इलाज की सुविधाओं की कमी और घटते जंगल आदि को समझा। आदिवासियों की संस्कृति और विशिष्ट पहचान को बचाए रखते हुए उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने के सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं, जिसके लिए आशा कर्मचारी और स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा सरकारी योजनाओं की जानकारी उन तक पहुँचाने के प्रयास किए जाते हैं। वहाँ की आदिवासी स्त्रियों में से सोनभद्रा और गौरा आशा वर्कर बन जाती हैं। यह कहानी यात्रा वृतांत के बहुत क़रीब एक शोधपरक कहानी है। कहानी में जंगल के बारे में लेखिका की जानकारी चमत्कृत करती है।

एक अन्य कहानी 'गुनगुनाते जंगल' में जंगल जैसे बोल रहा है। जंगल बोल रहा है बाला के ज़रिए, जो स्वयं एक आदिवासी है और शहर से पढ़कर लौटी है। यह कहानी 'मौन पलाश' का अगला चैप्टर है। लेखिका ने 'मौन पलाश' में समस्या दिखाई थी, यहाँ प्रतिरोध दिखाया है। बाला कहती है- जंगल हमारा पेट भरते हैं। जंगल और पहाड़ों को काटे जाने का नतीज़ा है इलाके में भयंकर बाढ़ का आना। यह कहानी कहती है कि जंगल काटोगे तो सिर्फ़ पेड़ नहीं कटेगा, बाला जैसे आदिवासियों का पेट भी कटेगा। बाँध बनाओगे तो सिर्फ़ पानी ही नहीं रुकेगा, भविष्य भी रुक जाएगा।

कहानी 'ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दे' बहुत अहम प्रश्न उठाती है कि शहरों और महानगरों में अकेली कामकाजी स्त्री के जीवन पर विशेषकर मर्द प्रश्न क्यों उठाते हैं? क्यों उनके जीवन में दख़लअंदाज़ी करते हैं? कहानी में मनीषा सहस्त्रबुद्धे, डॉली जोसेफ, कनकलता विश्वास और आनंदी पटनायक ऐसी ही चार स्त्रियाँ हैं, जो अकेले अपनी-अपनी ज़िंदगी जी रही हैं अपनी तरह से। इनमें कोई स्कूल टीचर है, कोई फैक्ट्री में काम करती है, कोई फ़िल्म और फ़ैशन इंडस्ट्री से जुड़ी हुई मॉडल है और कोई डॉक्टर है। ये चारों एक-दूसरे को नहीं जानतीं, मगर दुनिया भर के मर्द उन चारों और उनके जैसी अकेली रहने वाली औरतों के बारे में ऊलजलूल धारणाएँ बनाते हैं। लेखिका ईश्वर से ऐसे मर्दों को सद्बुद्धि दिए जाने की प्रार्थना करती हैं।

'रेत होते ख़्वाब' कहानी-संग्रह पढ़कर लगता है जैसे हम किसी रेगिस्तान में खड़े हों। हर कहानी मुट्ठी में भरी रेत है, जितना कसकर पकड़ो, उतनी ही उँगलियों से फिसलती जाती है। यह संग्रह दरअसल 'होने' और 'न-होने' के बीच का कोलाज है। 'उत्सव मृत्यु का' में जीवन का उत्सव मर जाता है, तो 'मुक्ति' में मृत्यु ही उत्सव बन जाती है। 'गुनगुनाते जंगल' में सन्नाटा बोलता है, और 'मौन पलाश' में चीखें रंग बनकर खिलती हैं। 'फासले' तय करते-करते 'होने का एहसास' खो जाता है, और 'कृष्ण कली' के बाद 'महकते हरसिंगार' प्रेम का कोमल एहसास बनकर महकते हैं।

कहानियों को पढ़कर लगता है कि लेखिका ने लिखने से पहले समग्र रूप से गहन शोध किया है। ये कहानियाँ पाठक को कोई अंत नहीं देतीं। ये अनंत देती हैं। अंततः यह संग्रह एक रेत-घड़ी है। ऊपर से ख़्वाब गिरते हैं, नीचे हक़ीक़त जमा होती है। और बीच की पतली गर्दन से रिसता है- समय। लेखिका ने रेत को मुट्ठी में नहीं, कागज़ पर पकड़ा है। इसीलिए ये ख़्वाब होते हैं, बनते हैं, बिगड़ते हैं, पर रहते हैं। जो ख़्वाब रेत हो जाएँ, वही सबसे ज़्यादा जिए जाते हैं।

मंजुश्री का कहानी-संग्रह 'रेत होते ख़्वाब' समय की उस परत को छूता है, जहाँ यादें धूल नहीं बनतीं, धड़कन बन जाती हैं। तेरह कहानियों के इस कोलाज में गाँव की गलियाँ हैं, जो शहर के शोर में भी पीछा नहीं छोड़तीं, स्त्री के वे मौन हैं, जो चीत्कार से ज़्यादा गूँजते हैं, और ऐसे ख़्वाब हैं, जो मुट्ठी में रेत-से फिसलते तो हैं, पर हथेली की लकीरों में अपना नक़्श छोड़ जाते हैं। मंजुश्री कहानियों में व्यक्ति को उसके अकेलेपन में नहीं, उसके होने के अहसास में तलाशती हैं। यह संग्रह घटनाओं का पुलिंदा नहीं, अनुभूतियों का रेगिस्तान है, जहाँ हर कण तपता है, और हर तपिश एक कहानी बन जाती है।

भाषा और शिल्प की बात करें, तो मंजुश्री की सबसे बड़ी ताक़त उनका शब्द-संयम है। शब्दों की फिज़ूलख़र्ची नहीं, एक-एक वाक्य तराशा हुआ। 'रेत होते ख़्वाब' में युद्ध का बिंब है, तो 'महकते हरसिंगार' में फूल की ख़ामोशी बोलती है। लेखिका बिंबों से कहानी सजातीं नहीं, बिंबों से कहानी कहती हैं। नुक्कड़ की चाय की दुकान हो या सना का आसमान हर जगह का वातावरण, गंध और धड़कन पाठक के जेहन में उतर आती है। यह कहानी-संग्रह भाषा का रेगिस्तान नहीं, मरुद्यान है जहाँ हर शब्द पानी की तरह ज़रूरी है, एक भी बूँद व्यर्थ नहीं। उम्मीद है कि भविष्य में भी लेखिका की ऐसी ही स्तरीय कहानियाँ पाठकों तक पहुँचेंगी।

000

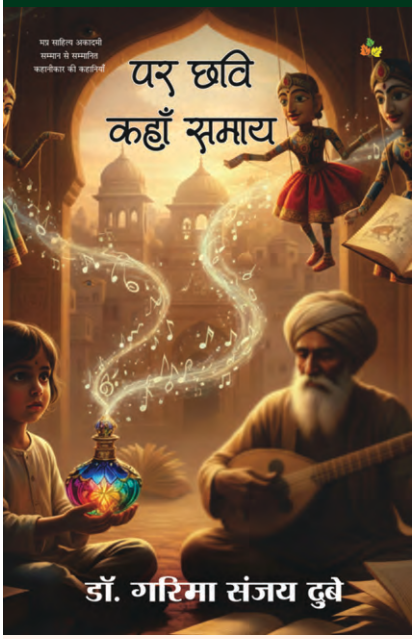

(कहानी संग्रह)

पर छवि कहाँ समाय

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल- +91-9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

'पर छवि कहाँ समाय' सुपरिचित साहित्यकार डॉ. गरिमा संजय दुबे का दूसरा कहानी संग्रह है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इनकी कहानियों में आधुनिकता का बोध है। कहानियों के कथ्यों में विविधता हैं। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है।

लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती हैं। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी 15 कहानियाँ हैं। डॉ. गरिमा संजय दुबे अपनी कहानियों के पात्रों के अंतस के तार-तार खोलकर सामने लाती हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'पर छवि कहाँ समाय' कला, संवेदना और सामाजिक यथार्थ के गहरे संगम को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी का मूल भाव यह है कि जीवन का वास्तविक दर्द किसी भी कला से बड़ा और जटिल होता है, जिसे पूरी तरह अभिव्यक्त करना आसान नहीं। कहानी की सबसे बड़ी शक्ति इसकी भावनात्मक तीव्रता और यथार्थवाद है। डेरे वाली स्त्री का संवाद समाज के उस कड़वे सच को उजागर करता है, जहाँ औरतें शोषण, पीड़ा और बेबसी के चक्र में फँसी होती हैं। कलाकार का चरित्र बेहद प्रभावशाली है। वह सिर्फ चित्रकार नहीं, बल्कि समाज की पीड़ा को समझने और कम करने का प्रयास करने वाला संवेदनशील इंसान है। उसकी हजारों आँखों वाली पेंटिंग्स मानव भावनाओं के अनगिनत रूपों का प्रतीक बन जाती हैं। फिर भी उसका यह स्वीकार करना कि वह असली पीड़ा को पूरी तरह चित्रित नहीं कर पाया, कहानी को एक गहरा दार्शनिक आयाम देता है। परा का परिवर्तन, एक आत्मकेंद्रित कलाकार से संवेदनशील समाजसेवक बनने तक, कहानी का महत्त्वपूर्ण मोड़ है। 'आर्ट शुड नॉट बी फॉर आर्ट्स सेक...' वाला विचार पूरी कथा का केंद्रीय संदेश बनकर उभरता है। अंत अत्यंत प्रभावशाली और भावुक है। कलाकार की मृत्यु, उसकी कला की पहचान, और परा का जीवन बदलने का निर्णय, ये सब मिलकर कहानी को पूर्णता और गहराई प्रदान करते हैं। यह कहानी कला के उद्देश्य, मानवीय पीड़ा और सामाजिक ज़िम्मेदारी पर गहन चिंतन प्रस्तुत करती है। यह पाठक को सिर्फ भावुक ही नहीं करती, बल्कि सोचने पर मजबूर भी करती है कि असली कला वही है, जो इंसानियत से जुड़ी हो।

इस कहानी का शीर्षक 'पर छवि कहाँ समाय' रहीम के दोहे से लिया गया है। यह प्रतीत होता है कि उक्त कहानी का शीर्षक उसके कथ्य और भाव-संरचना के साथ अपेक्षित सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया है। शीर्षक, जो किसी भी रचना का प्रथम संकेतक और पाठकीय जिज्ञासा का आरंभ-बिंदु होता है, यहाँ कथाकार डॉ. गरिमा संजय दुबे अपनी भूमिका को पूर्णत: निर्वाह नहीं कर सकी हैं। परिणामत: कथा और शीर्षक के मध्य एक प्रकार का विसंगति-बोध उभरता है, जो पाठकीय अनुभव को कुछ हद तक विच्छिन्न करता है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि लेखिका यदि शीर्षकों के चयन में और अधिक सूक्ष्मता, संवेदनशीलता तथा सर्जनात्मक परिश्रम का परिचय देतीं, तो रचना की प्रभावशीलता और भी अधिक सघन एवं संगत हो सकती थी।

'मलंग' एक संवेदनशील और विचारोत्तेजक कहानी है, जो मनुष्य की आंतरिक स्वतंत्रता, सामाजिक बंधनों से मुक्ति और आत्मिक खोज को केंद्र में रखती है। शीर्षक 'मलंग' ही उस

व्यक्तित्व का प्रतीक बन जाता है, जो दुनिया की परंपरागत सीमाओं से परे जाकर अपने अलग रास्ते पर चलता है। 'इत्रफ़रोश' एक संवेदनशील और प्रतीकात्मक कहानी है, जो मानवीय भावनाओं, स्मृतियों और रिश्तों की बारीकियों को ख़ुशबू के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। कहानी में इत्र सिर्फ एक वस्तु नहीं, बल्कि यादों, प्रेम और पहचान का प्रतीक बनकर उभरता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रतीकात्मकता है। इत्र की महक के जरिए पात्रों के भीतर छिपी भावनाएँ, उनके रिश्तों की गहराई और बीते समय की छाप को बहुत कोमलता से प्रस्तुत किया गया है। भाषा शैली सरल, सरस और भावपूर्ण है, जो पाठक को कहानी से जोड़े रखती है। लेखिका ने छोटे-छोटे विवरणों के माध्यम से संवेदनात्मक वातावरण रचा है, जहाँ पाठक मानो ख़ुशबू को महसूस कर सकता है। 'इत्रफ़रोश' एक सौम्य, भावनात्मक और प्रतीकात्मक कहानी है, जो यह बताती है कि ख़ुशबू की तरह ही सच्ची भावनाएँ भी समय और दूरी से परे जीवित रहती हैं।

'मुझे वापस लौटना है' कहानी त्याग, पितृत्व और परिस्थितियों की मजबूरी को बेहद मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। एक पिता का अपने बेटे को बचाने के लिए ख़ुद पर अपराध लेना, कहानी का सबसे गहरा और प्रभावशाली पक्ष है। कहानी में भावनात्मक स्तर बहुत मज़बूत है। ख़ासकर वह क्षण जब बेटी अपने पिता को पहले अपनाने में झिझकती है, लेकिन सच्चाई जानने के बाद उसके मन में प्रेम उमड़ पड़ता है। यह परिवर्तन रिश्तों की सच्चाई और बलिदान की शक्ति को उजागर करता है। रामलीला का प्रसंग और हनुमान-बंदर का प्रतीकात्मक रूप भी कहानी को एक नैतिक और सांस्कृतिक गहराई देता है, जहाँ एक पिता अपने परिवार की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। यह एक संवेदनशील और दिल को छू लेने वाली कहानी है, जो यह दिखाती है कि एक पिता का प्रेम किसी भी सज़ा या दर्द से बड़ा होता है। 'प्रेम पर चढ़त न दूजो रंग' कहानी प्रेम, समर्पण और जीवन की कठिन परिस्थितियों के बावजूद ख़ुशियाँ ढूँढ़ लेने की गहरी भावना को व्यक्त करती है। दादा-दादी का अंधे हो जाना एक दर्दनाक मोड़ है, जो होली जैसे रंगों के त्योहार से उनके दूर होने का कारण बनता है। कहानी की सबसे बड़ी ताक़त इसका भावनात्मक पुनर्जागरण है, जहाँ वर्षों बाद दादी का वही चुनरी निकालना, जो शादी के समय मिली थी, प्रेम की स्थायित्व और यादों की शक्ति का सुंदर प्रतीक बनता है। यह चुनरी यहाँ अटूट रिश्ते और बीते सुखद पलों का संकेत देती है। अंत में दादा का ढोल बजाना और दोनों का फिर से होली खेलना, यह दर्शाता है कि सच्चा प्रेम बाहरी परिस्थितियों का मोहताज नहीं होता। यह संदेश देता है कि प्रेम का रंग सबसे गहरा और स्थायी होता है, जिस पर किसी और रंग की चढ़त नहीं हो सकती।

'टेबल नं.12' कहानी अकेलेपन, दोस्ती और जीवन के दूसरे पड़ाव में अपने मित्र की ख़ूबसूरत ज़रूरत को बहुत सहजता से प्रस्तुत करती है। विनोद जी और तनुजा जी का रोज़ कैफे में टेबल नं. 12 पर मिलना, उनके रिश्ते की गरमाहट और स्थिरता को दर्शाता है। कहानी की सबसे बड़ी ख़ूबी इसका सकारात्मक दृष्टिकोण है, जहाँ बुढ़ापे को अकेलेपन से नहीं, बल्कि दोस्ती और नए रिश्तों की संभावना से जोड़ा गया है। बच्चों का आधुनिक और खुला सोच रखना, और अपने माता-पिता के लिए नए जीवन की शुरुआत के बारे में सोचना, कहानी को एक प्रगतिशील स्पर्श देता है। 'जा सिमरन जी ले अपनी ज़िंदगी' वाला संवाद कहानी में हल्का हास्य और भावनात्मक जुड़ाव दोनों पैदा करता है, जिससे अंत बेहद प्यारा और यादगार बन जाता है। यह एक संवेदनशील, प्रेरणादायक और सुकून देने वाली कहानी है, जो यह संदेश देती है कि जीवन के किसी भी पड़ाव पर खुशियों को अपनाने में देर नहीं होती। 'महकती मुहब्बतों के मौसम' कहानी पुरानी यादों, मासूम प्रेम और बीते समय की सादगी को ख़ूबसूरती से उकेरती है। अबीर का अपने पुराने घर में लौटना और एक डायरी के जरिए अतीत में खो जाना, कहानी को स्मृतियों की भावनात्मक यात्रा से भर देता है। कहानी की सबसे ख़ास बात इसका माहौल और समय-चित्रण है। जब मोबाइल फ़ोन नहीं थे, एसटीडी बूथ हुआ करते थे और प्रेम का इज़हार सीधे नहीं बल्कि छुपे हुए एहसासों और छोटी-छोटी हरकतों से होता था। सुगंधा के प्रति अबीर का आकर्षण और उसका ब्लैंक कॉल करना, उस दौर के मासूम लेकिन अधूरे प्रेम को दर्शाता है। सुगंधा का किरदार सरल और सहज है, जबकि अबीर का प्रेम एकतरफा और थोड़ा संकोची दिखाई देता है। यह एक संवेदनशील, सादगीपूर्ण और पुरानी यादों से भरी प्रेम कथा है, जो कम शब्दों में भी दिल को छूने की क्षमता रखती है।

कहानी 'लकी चार्म बारिश' एक सरल, मधुर और भावनात्मक प्रेम कथा है, जो छोटे-छोटे पलों के माध्यम से रिश्तों की गहराई को दर्शाती है। कहानी की सबसे बड़ी ख़ूबी इसकी सादगी और प्राकृतिक प्रवाह है। अनन्या का बारिश के प्रति प्रेम और अमोल का धीरे-धीरे उसी भावना से जुड़ना, दोनों पात्रों के बीच बढ़ते संबंध को बहुत सहज तरीक़े से प्रस्तुत करता है। विंडचीटर यहाँ एक प्रतीक बन जाता है- देखभाल, अपनापन और अनकहे प्रेम का। बारिश को 'लकी चार्म' के रूप में दिखाना कहानी को एक सकारात्मक और भावनात्मक मोड़ देता है। यह दर्शाता है कि कैसे परिस्थितियाँ और छोटे संयोग जीवन में ख़ास अर्थ ले लेते हैं। इसकी कोमलता, रोमांटिक अहसास और हल्की-फुल्की भावनात्मक छुअन इसे आकर्षक बनाती है। यह एक प्यारी, सकारात्मक और दिल को छूने वाली कहानी है, जो प्रेम की शुरुआत को बहुत ख़ूबसूरती से प्रस्तुत करती है। 'रेशमी बही खाते' कहानी जीवन के सालाना हिसाब-किताब को एक ख़ूबसूरत रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करती है, जहाँ दिसंबर एक मुनीम बनकर 'क्या खोया, क्या पाया' का लेखा-जोखा करता है। व्योम और धरा के विपरीत स्वभाव- एक ओर भावनात्मक और रचनात्मक दृष्टि, दूसरी ओर व्यावहारिक और गणितीय सोच, कहानी को संतुलन और

गहराई देते हैं। कहानी की सबसे बड़ी ताक़त इसकी संवेदनशीलता और प्रतीकात्मकता है। छोटे-छोटे यादगार पलों के ज़रिये यह संदेश प्रभावी ढंग से उभरता है कि जीवन केवल उपलब्धियों और आँकड़ों से नहीं, बल्कि लम्हों, एहसासों और रिश्तों की गर्माहट से पूर्ण होता है।

'इत्ती छी हँछी' एक बेहद सरल, सरस और हृदयस्पर्शी कहानी है, जो एक नन्हें बच्चे की मासूमियत के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं, पारिवारिक ज़िम्मेदारियों और कार्यस्थल के माहौल में बदलाव को ख़ूबसूरती से प्रस्तुत करती है। कहानी की सबसे बड़ी ताक़त उस बच्चे की निर्मल उपस्थिति है, जो पूरे ऑफ़िस के वातावरण को हल्का, ख़ुशहाल और मानवीय बना देती है। उसकी तोतली भाषा, निश्छल व्यवहार और सहज अपनापन न केवल लोगों के चेहरे पर मुस्कान लाता है, बल्कि उनके सोचने के तरीक़े में भी बदलाव लाता है। ख़ासकर उस पुरुष पात्र में, जो घर-परिवार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को नए नज़रिए से समझने लगता है। मिस शर्मा का चरित्र भी प्रभावी है, जो शुरुआत में अनुशासनप्रिय और थोड़ी कठोर दिखाई देती हैं, लेकिन अंतत: बच्चे की मासूमियत से प्रभावित होकर एक सकारात्मक निर्णय लेती हैं। यह परिवर्तन कहानी को एक संतोषजनक और प्रेरणादायक अंत देता है। भाषा सहज, जीवंत और संवाद प्रधान है, जिसमें बच्चे की बोली कहानी को और अधिक आकर्षक बनाती है। 'अदृश्य डोरियाँ' कहानी गहन विचारोत्तेजक है, जो मानव जीवन की उन सूक्ष्म बंधनों को उजागर करती है जिनके अधीन होकर व्यक्ति अनजाने में अपनी स्वतंत्रता खो देता है। कठपुतली के रूपक के माध्यम से यह प्रभावी ढंग से दिखाया गया है कि इंसान भी कई अदृश्य शक्तियों- जैसे अहंकार, ईर्ष्या, दिखावा और सामाजिक दबाव के नियंत्रण में जीता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सरलता में छिपी गहराई है। कम शब्दों में कथाकार ने मानव स्वभाव की जटिलताओं को सटीकता से पकड़ लिया है। यह केवल बाहरी नियंत्रण की बात नहीं करती, बल्कि यह भी दर्शाती है कि कई बार व्यक्ति स्वयं ही अपनी 'डोरियाँ' दूसरों के हाथ में सौंप देता है। 'अदृश्य डोरियाँ' एक ऐसी कहानी है जो पाठक को यह सोचने पर मजबूर करती है कि वह वास्तव में कितना स्वतंत्र है और किन-किन डोरियों से बँधा हुआ है।

'चार डिग्री सेल्सियस वाला रिश्ता' कहानी रिश्तों की जटिलता, अपराधबोध और अंतत: प्रेम की ऊष्मा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। कथानक एक दुर्घटना से शुरू होकर भावनात्मक द्वंद्व के माध्यम से आगे बढ़ता है, जहाँ सौम्य का त्याग और उसकी ज़िम्मेदारी कहानी का केंद्र बन जाते हैं। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता इसका प्रतीकात्मक शीर्षक है- 'चार डिग्री सेल्सियस' उस अवस्था को दर्शाता है जहाँ रिश्ते ऊपर से ठंडे और जमे हुए प्रतीत होते हैं, लेकिन भीतर कहीं जीवन और ऊष्मा शेष रहती है। यही भाव शोभित की माँ के व्यवहार में दिखता है, जो बाहर से कठोर है पर भीतर से स्नेह से भरी हुई है। सौम्य का चरित्र कर्त्तव्य, त्याग और सहनशीलता का प्रतीक है, जबकि माँ का आंतरिक संघर्ष कहानी को गहराई देता है। अंत में क्षमा और अपनत्व का दृश्य अत्यंत भावुक और संतोषजनक है, जो यह संदेश देता है कि सच्चे रिश्ते समय के साथ अपनी गर्माहट वापस पा लेते हैं।

उपरोक्त सभी कहानियाँ मुख्यत: भावनात्मक, सामाजिक और मानवीय संवेदनाओं पर आधारित हैं। इनमें प्रेम, त्याग, स्मृतियाँ, रिश्तों की गरमाहट, सामाजिक यथार्थ और जीवन के छोटे-छोटे लेकिन गहरे अनुभवों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। कहानियों में सामाजिक सरोकार और यथार्थ का चित्रण हुआ है। कहानियों में मानवीय संबंधों की कोमलता और गहराई है। कहानियों में प्रतीकात्मकता है। कथाकार डॉ. गरिमा संजय दुबे एक संवेदनशील और भावुक रचनाकार हैं, जो मानवीय रिश्तों और समाज की बारीकियों को गहराई से समझती हैं। उनकी लेखनी में सरलता के साथ भावनात्मक गहराई दिखाई देती है। वे छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से बड़े जीवन-संदेश देने में सक्षम हैं।

इस संग्रह की कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है। कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। कहानियों के चरित्र वास्तविक चरित्र लगते हैं, कृत्रिम या थोपे हुए नहीं।

इन कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। इस संग्रह की कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखिका ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है। इन कहानियों के पात्र अपने दैनंदिन कार्यों से अपने चरित्र का उद्घाटन करते हैं और जीवन से सबक लेते हुए दिखते हैं।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

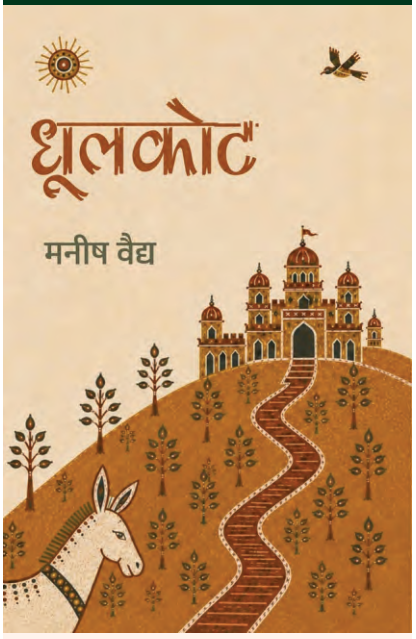

(उपन्यास)

धूलकोट

समीक्षक : वंदना वाजपेयी

लेखक : मनीष वैद्य

प्रकाशक : संवेदना प्रकाशन, हापुड़

वंदना बाजपेयी
बी-125, प्रथम तल, निर्माण विहार,
नई दिल्ली 110092
मोबाइल- 9818350904
ईमेल- vandanabajpai5@gmail.com

कथाकार मनीष वैद्य ऐसे कथाकारों में गिने जाते हैं, जिनकी पुस्तकों का पाठकों को बेसब्री से इंतज़ार रहता है। अपने कथा संग्रहों 'फ़ुगाटी का जूता', 'वांग छी' और 'गुलाबी इच्छाएँ' से उन्होंने कथा जगत् में अपनी विशेष पहचान बनाई है। आम तौर पर मनीष वैद्य की कहानियाँ पाठक को किसी कल्पना लोक के दिवा स्वप्न में डुबोने की जगह यथार्थ की ज़मीन पर खड़ी होती हैं। हमारे ग्रामीण, क़स्बाई इलाक़ों के सर्वहारा वर्ग के सपनों, पीड़ा, निराशा, और संघर्षों की बानगी प्रस्तुत करती हैं, जिनके विरोध में ताक़तवर बाज़ार खड़ा है। जिसका पेट कभी भरता ही नहीं। उनकी कहानियों में बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से जटिल से जटिल बात बहुत नरमाई से कह दी जाती है। इस क्रम में उनकी कहानी 'रक्त बीज' को कौन भूल सकता है, जो बकासुर के पौराणिक आख्यान को इतिहास और समकाल से जोड़ती हुई व्यक्ति नहीं प्रवृत्ति पर बात करती है। प्रवृत्ति जो 'रक्त बीज' है, जिसका विनाश नहीं होता। जहाँ रक्त बीज की एक बूँद गिरती है, वहाँ उस जैसे हज़ारों खड़े हो जाते हैं। लोककथा के सुवास में ढली 'भूली भटियारिन का कुआँ' का नाम भी लिया जा सकता है। उनकी कहानियों में स्त्रियों के प्रति एक संवेदनशील दृष्टिकोण सदैव उपस्थित रहा है।

कथा जगत में अपनी पुख़्ता पहचान बनाने के बाद जब उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'धूलकोट' पाठकों को सौंपा तो पाठकों में एक सहज जिज्ञासा का होना स्वाभाविक था। उपन्यास ने हाथ में आते ही चौंकाया, यहाँ लेखक का एक अलहदा रूप नजर आया। यथार्थ की खुरदुरी ज़मीन से उतरकर उन्होंने कल्पना के ताने में यथार्थ के बाने जोड़कर एक ऐसा वितान रचा, जिसमें एक सोने के पत्तर से मढ़ा पुराना नगर है, राजा है, रानी है, राजकुमारी है, कुम्हार, कुम्हारिन हैं, बोलने वाला पशु है, और चमत्कार भी हैं। कुल मिलाकर कल्पना की एक ऐसी नगरी है, जिससे हमारा आज का यथार्थ टकरा रहा है। बात अतीत के किसी धुँधलके से आ रही है और वर्तमान रचता-बसता जा रहा है। हमारी बहुरंगी संस्कृति की झलक है। जिसमें जीवन धड़कता है। यहाँ विनोद कुमार शुक्ल की 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' की जादुई भाषा नहीं है अपितु हमारे लोक में रचे-बसे कथारस का जादू है। जो पंचतंत्र जैसी कथाओं को आज भी प्रासंगिक बनाए रखता है।

लोक कथाएँ किसी भी संस्कृति का प्राण होती हैं। क़िस्सागोई में डूबा कोई संदेश जो सहज सुग्राह्य होता है। यह हमारी परंपरा को आगे बढ़ाने के साथ-साथ मन की गठरी में बहुत कुछ बाँध देता है। हालाँकि इंटरनेट संस्कृति आने के बाद से समाज इनसे कट गया है। उसकी स्थिति जड़ों से उखड़े उस वृक्ष की तरह हो गई है, जो ज़रा-सी मिट्टी के दम पर ऊपर तो बढ़ता जा रहा है पर हवा के एक तेज झोंके से कब भरभरा कर गिर जाएगा, कहा नहीं जा सकता। संतोष है कि साहित्य की एक परंपरा रही है जहाँ लोककथा के साथ-साथ समकाल की कथा भी चलती जाती है। पंकज सुबीर इसमें सिद्धहस्त हैं। उसके बरक्स मनीष वैद्य के उपन्यास में लोककथा अपनी पूरी आन-बान शान के साथ उपस्थित है। कहीं से उसे समकाल से जोड़ने का सचेतन प्रयास नहीं किया गया है। फिर भी बार-बार लगता है- यह तो आज भी हो रहा है। यह प्रासंगिकता चाहें स्त्री जीवन की हो, आम जन जीवन की हो, मिट्टी से मानव के रिश्ते की हो, राजसत्ता की हो या संवेदनाओं के क्षीण होते जाने की। कहीं ये प्रासंगिकता भली भी लगती है। कहीं लगता है यह तो बदल जाना चाहिए था और कहीं कि आज जो अप्रासंगिक हो चला है उसको सहेजना कितना ज़रूरी था। क़िस्सागोई के अनूठे अंदाज़ में डूबी यह कथा पहले पन्ने से ही पाठक को बाँध लेती है और पूरा पढ़ने तक थामे रखती है। किताब पढ़ने के बाद 2000 साल से अब तक हुए परिवर्तनों पर चिंतन करने के अनेक बिन्दु क्रमवार खुलते चले जाते हैं।

मुख्य कथा एक कुम्हार-कुम्हारिन और उनके प्रिय गधे भूरिया की है। परंतु आगे बढ़ती कहानी मनुष्य और पशु के प्रेम, प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा, राजा के कर्त्तव्य, आम आदमी में उसका भय, पड़ोसी राज्य से संघर्ष, अमीर-ग़रीब का भेद ही नहीं, आसमानी सत्ता के संचालक इन्द्र और उसके द्वारा शोषित अप्सराओं तक जाती है। सजग पाठक के तौर पर जब बिम्ब खुलते हैं तो जैसे चमत्कार हो जाता है। चमत्कारी भूरिया गधा, एक सीधा-सच्चा व्यक्ति नज़र आने लगता है। प्रकृति द्वारा सौंपे कामों को पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ करते हुए। बिल्कुल अपनी सीधी-सच्ची माँ की तरह। आसमानी शासक द्वारा प्रेम में छली गई स्त्री। जो धर्मसत्ता की दीवारों को तोड़ नहीं पाती। अंतत: उसके हाथ में अपने श्रापित पुत्र की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता है। विडंबना है कि सच्चे-सीधे लोगों के विरोध में आम आदमी से लेकर सत्ताएँ तक हैं। उनकी अच्छाई का दोहन हो रहा है। उनके ख़िलाफ़ उनके अपनों द्वारा जाल बिछाया जा रहा है। षड्यन्त्र हो रहे हैं। वे हारते हैं। बार-बार हारते हैं। फिर भी बचा लेना चाहते हैं मिट्टी को, प्रकृति को और भविष्य की संभावनाओं को। वस्तुत: यह दुनिया किसी सत्ता से नहीं, इन्हीं अच्छे लोगों के दम पर टिकी है। जिनकी योग्यताओं और क्षमताओं को जानने समझने के बाद भी उन्हें वह मान-सम्मान नहीं मिल पाता, जिसके वे हक़दार है। बार-बार अपमानित होते सत्य के ये सारथी गधे ही समझे जाते हैं। मनुष्य से तुलना करते हुए एक स्थान पर भूरिया सोचता है- 'गधे ने अपने पुरखों के काम और बात दोनों का मान रखा। मनुष्य ने तो दोनों ही छोड़ दिए।'

कहानी पर्यावरण संरक्षण के कई सूत्र देती है। यथा एक स्थान पर भूरिया को अपनी माँ की याद आती है कि वे कहा करती थीं कि दुनिया का सबसे बड़ा अजूबा आदमी ही है। ऊपर वाले से ज़्यादा दिमाग़ पाया यह आदमी स्वयं को राजा समझ बैठा। प्रकृति के बनाए नियमों को ही भूल गया। जिसका पालन सभी जीव-जन्तु करते हैं। कभी पहाड़ खोद देगा कभी नदियों को सुखा देगा। पेड़ काटना और जानवरों का शिकार करना तो उसके लिए आम बात है- 'इस दुनिया में पेट तो सब प्राणियों को मिला है पर सबसे बड़ा पेट आदमी का ही है, जिसमें वह दिन रात भकोसता ही रहता है। फिर भी उसकी भूख बनी रहती है।'

मिट्टी और कुम्हार की तुलना अक्सर साहित्य में प्रकृति और पुरुष से की जाती है। अपनी चाक पर आकार देता सृष्टि का रचनाकार। कथा में एक स्थान पर कुम्हार के काम को राजकुमारी सीखने का प्रयास कर रही है। उसकी नज़र से देखते हुए कथाकार ने कुम्हार के काम का बारीकी से वर्णन किया है। एक दार्शनिक चेतना सा खुलता यह संबंध प्रिय कवि हरिवंश राय बच्चन की पंक्तियाँ याद दिला देता है- 'मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन, मेरा परिचय'

कामता कुम्हार और कुम्हारिन का मिट्टी में रचा बसा जीवन श्रमिक वर्ग की बानगी है। शरीर को मिट्टी का कहा गया है। कुम्हार तो माटी से इतना जुड़ा है कि उसके हाथों में हमेशा मिट्टी का अंश रहता है। उसकी बनाई रोटी से भी मिट्टी उसके बच्चों के पेट में जाती रहती है। विडंबना है कि जिसके हाथों ढले बर्तन आम घरों से लेकर राजमहल की शोभा बढ़ाते हैं, वह स्वीकार्य नहीं है। उसे प्रेम के दो बोल भी नसीब नहीं हैं। अमीर-ग़रीब का भेद दिखाते हुए यहाँ लेखक पूँजीवादी व्यवस्था पर तंज़ कसते हैं, जो उस सर्वहारा के विरुद्ध खड़ी है जिन्होंने विकास के महल रचे हैं। राजकुमारी की अपने घर में अगवानी करती कुम्हारिन चिंतित है- 'मिट्टी-गारे के बिना कुम्हार कैसा? वह मिट्टी को अपने पसीने से गूँथकर ही कुछ सुंदर गढ़ पाता है। दुनिया की सुंदरता ऐसे ही असुंदर लोगों के कारण है। इन असुंदर कुम्हारों के ताप से ही संसार के सारे कलश मटके ठंडे रहते हैं।'

स्त्री जीवन की विडंबनाओं को कथा में इतनी मार्मिकता के साथ पिरोया गया है कि कथा कई स्थानों पर विचलित कर देती है। कुम्हारन स्त्री की तुलना मिट्टी से करती है- 'मिट्टी और औरत की तासीर एक सार। किस धरती से उठती है और किस कुम्हार के घर पककर न जाने किस घर चले जाना है। किस धरती से उठकर किस धरती में राख हो जाना है। कौन जानता है। जानने से भी तो क्या बदल जाना है।'

भूरिया की माँ चंपावती प्रेम के नाम पर छली गई स्त्री की बानगी है। उसका शोषण देवराज इन्द्र के द्वारा हो रहा है जिनके ऊपर न्याय कि ज़िम्मेदारी है। पत्नी के होते हुए भी (यहाँ पर बहु पत्नियाँ/अप्सराएँ) किसी स्त्री के प्रति आकृष्ट हो उसे हासिल करने के इमोशनल मेनुपुलेशन को कथा बख़ूबी दर्शाती है। सत्ता के मद में नैतिकता का ह्रास इतना है कि माँ और बच्चे के संबंध के बीच में आकर खड़ा हो जाता है। माँ के सानिंध्य को तड़पते बच्चे को श्रापित करने में भी संकोच नहीं है। श्राप का काट भी ऐसा, जो आसानी से संभव होता भी न बने। प्रेम के नाम पर छली गई स्त्री के हाथ कुछ नहीं आता, न पति न पुत्र। वापस लौटने के सारे मार्ग बंद हो जाते हैं। नारकीय जीवन काटना ही उसकी नियति है। क्या यह कथा बदलनी नहीं चाहिए।

राजकुमारी का बेमेल विवाह स्त्री की चिंताओं को दर्शाता है। मनुष्य और पशु का यह विवाह मन में बसी पशुता की ओर संकेत करता है, जो अपने चमत्कारिक व्यक्तित्व से किसी पिता को अपनी बेटी का हाथ सौंपने पर बाध्य कर देती है। परंतु बेटी के सपनों का क्या? उसकी शिक्षा-दीक्षा का क्या? उसकी सहमति-असहमति का पितृसत्ता की नाक को बचाए रखने से अधिक मूल्य क्या है?

'बेटियाँ तो दान के लिए बनी हैं। क्या फ़र्क़ पड़ता है सुपात्र को दी जाएँ या कुपात्र को।'

'जब उन्हें ऐसे ही किसी के भी गले बाँध दिया जाना है तो उनमें और मवेशियों में क्या अंतर।'

लेखक ने इन प्रसंगों को इतनी मार्मिकता के साथ लिखा है कि मन में ऊभ-चूभ होने लगती है। ख़ासतौर से आज जब सिया, सोनम रघुवंशी और मुस्कान जैसे मामले सामने आ रहे हैं, तो एक कारण सामान्य तौर पर दृष्टिगोचर हो रहा है, बेटी के प्रेम को माता-पिता द्वारा अस्वीकार करना। ऐसे हर अपराधी

को दंड मिलना चाहिए फिर चाहे स्त्री हो या पुरुष। फिर भी एक सचेतन मस्तिष्क को अपराध की जड़ें तो खोजनी होंगी। ताकि हज़ारों वर्षों से चलती आ रही इन दारुण कथाओं की परणिती यूँ वीभत्व तरीक़े से न हो।

यह कथा स्त्री के दुखों की ही नहीं, उसके रचे षड्यंत्रों की भी बात करती है। बेटी को ख़ुश देखकर पिता संतुष्ट है पर माँ के मन में दुख और अपमान का दंश है। कालांतर में यह दंश सत्ता के लोभ के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है। बरसों-बरस बीत जाने के बाद भी बेटी के सुख से अधिक रानी माँ को अपने सुख-सत्ता में कमी का भय है, जो उसे बेटी की जासूसी करने और भेद को जान लेने के बाद संतोष के स्थान पर भस्म करने को प्रेरित करता है। सत्ता सुख ने माँ के हृदय को पाषाण कर दिया है। बरबस कैकेयी याद आती है। मंथरा के डाले गए बीजों की उपजाऊ मिट्टी उसके हृदय में थी। जो राजवंश और अपनी ही संतान भरत के दुखों का कारण बनी। मैथलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में क्या ख़ूब लिखा है- 'उसके आशय की थाह मिलेगी किसको, जन कर जननी ही जान न पाई जिसको?'

आम परंपरा में माँ को विशेष छूट है। उस पर उँगुली नहीं उठाई जाती परंतु लोककथाओं और साहित्य ने ये दुस्साहस बख़ूबी किया है। ख़ूबी ये भी है कि सास-बहू का मीठा रिश्ता भी दर्शाया है। जिसे आज कुटिल और जटिल बनाया जा रहा है। जिन्होंने ऐसे अच्छे मधुर संबंधों का सुख भोग है वे आसानी से रिलेट कर पाएँगे ।

कुम्हार-कुम्हारिन के रिश्ते को स्त्री की दृष्टि संग समाज को समझने से कुछ अलग ही पन्ने खुलते हैं। फिल्म 'अभिमान' में अमिताभ व जया के रिश्ते में, जहाँ पुरुष के पत्नी की योग्यता के प्रति ईर्ष्या भाव से इतर प्रेम में पगे ऐसे पति-पत्नी जिनका प्रोफ़ेशन एक है। कोई गधे चराने जा रहा है, कोई मिट्टी लेने जा रहा है, कोई चाक पर बर्तन बना रहा है तो कोई उन्हें रंग रहा है। आजीविका का एक स्रोत और दोनों उसमें रचे-बसे। एक-दूसरे के काम का सम्मान करते हुए। सहयोग देते हुए। एक सरगम है इस रिश्ते में। फिर चाहे रिश्ता लुहार और लुहारिन का हो, धोबी और धोबिन का हो या कृषक दम्पत्ति का। मुझे आशा पाण्डेय का उपन्यास 'खरगाँव का चौक' भी याद आया जहाँ ऐसा ही रिश्ता था लुहार मानमोड़े और उनकी पत्नी में। कथा नायक संतोष के कृषक परिवार में भी ऐसा ही रिश्ता रहता है। इसी सहकारिता को वह अपने उपन्यास में हल के रूप में लाई है। घर में ही नहीं समाज में भी। अगर पुरानी गुरुकुल व्यवस्था को भी देखें गुरु शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, तो गुरुमाता बच्चों को घरेलू ज़िम्मेदारियों, नैतिक शिक्षा, करुणा, दया, ममता से सींच रहीं होती हैं।

हमारे कृषि प्रधान देश में संयुक्त परिवार भी आय के एक ही स्रोत होने के कारण बने-ठने रहे। परंतु नगद पूँजी के वर्चस्व के कारण पुरुष का कार्य श्रेष्ठ और रसोई में सिमटी स्त्री का कमतर होता चला गया। मिट्टी से रचे-बसे रिश्ते में जब दाम्पत्य के एक पहिये को हाई प्रोफ़ाइल में शामिल कर लिया गया तो दूसरा गौण होता गया। सारी निराशा, सारी कुंठा सारा खेल इस नगद रोकड़े का ही तो रहा। संयुक्त परिवार टूटे। सहकारिता भंग हुई। न जाने कब अभिमान के अमिताभ और जया पति-पत्नी के बीच अपने पूरे वजूद से उपस्थित हो गए।

स्त्रियों के काम को कहीं न कहीं कमतर आँकते-आँकते आज संवेदनाएँ सूख रहीं हैं। बच्चे अकेले हो रहे हैं। कई बार लोग साथ खड़े होने के स्थान पर दो मोर्चों पर संघर्ष करती स्त्री से सवाल कर रहे हैं। पूँजी ने एक खाई बनाई है। हम सब उसमें गिर रहे हैं। गिरने को विवश हैं। संभवत: गिरने से ही निकलने के रास्ते बनेंगे। नई राह पर चलने के लिए पीछे पलट कर देखने और कुछ बचाने की जरूरत महसूस होगी।

कहानी में राज धर्म पर बहुत बात आती है। कहीं राज धर्म आम नागरिक के धर्म से टकराता है। उसकी राह में रोड़ा बनता है तो कहीं राज धर्म स्वयं विवश है। जैसे बेटी के ब्याह में राजा विवश है। कई स्थानों पर राम और दशरथ का उदाहरण है। राज धर्म और मर्यादा के मानक राम हमारे लोक में रचे बसे हैं। बेटी के बेमेल विवाह से चिंतातुर राजा सोचते हैं- 'राजा के लिए सबसे पहले उसका राजधर्म होता है। वह अपनों के मोह में उससे विरत नहीं हो सकता। दशरथ को भी अपने प्रिय राम के वनवास का कठोर निर्णय लेना पड़ा था।'

उपन्यास हमारी लोक संस्कृति और परंपराओं को सहेजने का प्रयास करता है। लोक जो मानुष और पशु-पक्षियों, जंगल पहाड़ झरने के सामंजस्य से रचा बसा है। घर छोड़ती कुम्हारिन की चिंताओं में मकान और घर का सामान नहीं है वरन्ा तुलसी का चौरा है, शाक-भाजी की बगिया है। बगिया के फलों को खाने आने वाले तोतों, हरियल और चिड़ियों के गीत हैं। कच्ची कतरन पर कूदने वाली भूरी बिल्ली है। शाम को रोटी की आस में आई धौली कुतिया है। कहीं वर्णन है कि वह पाँच दीपक जलाती है। एक तुलसी के चौरे पर, एक आँगन में एक...। यह सद्भावना ही संसार में उजीता कर रही है।

भाषा की बात करूँ तो इसमें लोक जीवंत हो उठा है। बोली-बानी लोकगीत, मुहावरे का सुंदर प्रयोग कथा को विशेषता प्रदान करता है। भाषा में जल सा प्रवाह है जो कथा को बहाए लिए जाती है। विषय के अनुरूप कवर पेज, त्रुटिहीन प्रूफ और सुंदर छपाई प्रकाशक का सराहनीय प्रयास है।

अंतत: मैं यही कहूँगी कि इस उपन्यास से गुज़रना एक सुखद अनुभव है, जो चिंतन के कई बिन्दु प्रस्तुत करता है तो विचलित भी करता है। मार्मिक अंत विवश करता है कि क्षीण होती सम्वेदनाओं को खोजने के लिए हमें समय की रेखा से हटानी होगी कुछ धूल। ढूँढ़ना होगा धूल से सना कोई क़िला कोई 'धूलकोट'। पत्थर बनते लोगों के उजाड़ नगर को हमने धूल के गुबार में कहीं खो दिया है। लोककथाएँ यही तो सिखाती हैं।

एक बहुपर्तीय, सार्थक उपन्यास के लिए मनीष वैद्य जी को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ।

000

केंद्र में पुस्तक

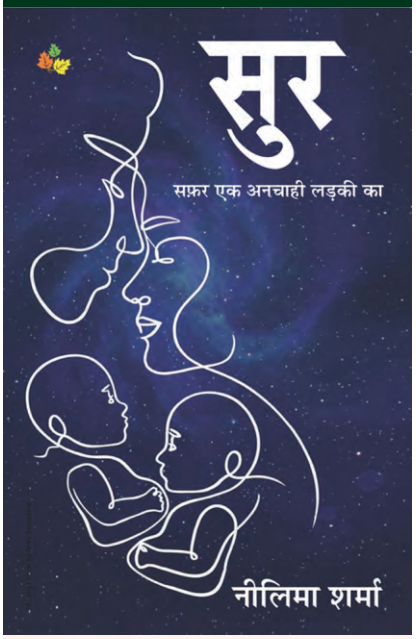

(उपन्यास)

सुर

समीक्षक : डॉ. मधु संधु, अतुल्य खरे, डॉ. सत्यनारायण

लेखक : नीलिमा शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु
13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल, जी. टी. रोड, अमृतसर, 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610
ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

अतुल्य खरे
104-105, महेश विहार, महामृत्युंजय द्वार के पास, इन्दौर रोड, उज्जैन, मप्र 456010
मोबाइल- 9131948450

डॉ. सत्यनारायण
13, नेहरू नगर विस्तार
कमला नेहरू नगर के पास
अजमेर रोड, जयपुर 302021
मोबाइल- 9414132301

फ्लैश बैक के तारों से अनुस्यूत उपन्यास

डॉ. मधु संधु

'सुर' कवयित्री, कथाकार, संपादक नीलिमा शर्मा का सद्य: प्रकाशित उपन्यास है। 'सुर' 19 परिच्छेदों में विभाजित सवा दो सौ पृष्ठों का उपन्यास है। समर्पण अपनी तीन बेटियों को शिक्षा, आत्म विश्वास, स्वाभिमान और दृढ़ता देने वाली सासु माँ, अपनी चारों बेटियों को बेटों के समकक्ष मान उन्हें सम्मान और सशक्ति देने वाली माँ और स्त्री अस्मिता, आत्मबल की निर्विकल्प गवाही बनकर खड़ी युवा पीढ़ी की पोतियों को किया गया है। कहती हैं- 'बेटियों को 'प्रश्न' नहीं 'उत्तर' और 'विकल्प' नहीं 'अस्तित्व' मानने वाली उन दोनों पुण्य- आत्माओं को मेरा सादर नमन।'

उपन्यास का आरंभ प्रसव वेदना से तंद्रा में, नींद और जागृति की अर्ध-चेतन धुँधली सरहद पर खड़ी नायिका सुर से होता है। उसका अचेतन मानों सर्जिकल चादर से ढकी निढाल देह को छोड़कर मायके और ननिहाल के उस लोक में विचरण के लिए चल पड़ता है, जहाँ स्त्री-दमन का, अवांछित अस्तित्व का, नंबर दो की हैसियत का बेतरतीब सिलसिला अबाध गति से चलचित्र की तरह चल पड़ता है। वर्तमान से छिटक कर अतीत के बंद दरवाज़े के खुलने की इस स्थिति को हम परामनोविज्ञान कह सकते हैं।

कहानी उत्तर भारत के उस पंजाबी परिवार की है, जो मेरठ, अंबाला और विदेश की धरती तक फैला है। हमारा समाज आज भी बेटियों के जन्म को स्वीकार करने लिए तैयार नहीं है, अनचाही बेटियाँ अपने ही घर में अपनी ही पहचान के लिए संघर्ष कर रही हैं। कहानी तीन पीढ़ियों की संघर्ष गाथा लिये है। प्रसव टेबल पर पड़ी सुर को एनेस्थीसिया का प्रभाव 2025 से 1998 यानी अपने माता पिता के परिणय काल में ले जाता है। नाना गजेन्द्र राणा और नानी परमेश्वरी की तीन बेटियाँ थी- पिंकी, रिंकी और नीता- सब अनचाही सन्तानें। अंबाला में लोग उनके तीन गलियों वाले घर को तीन लड़कियों वाला घर कहा करते थे। सोच है कि बेटा वंश है, मान है, सहारा है और बेटी व्यय/ समस्या/ पराया धन। तीसरी बेटी नीता यानी सुर की माँ के जन्म पर पिता ने उसका गला घोंटना भी चाहा था। क्योंकि बेटियाँ यानी पढ़ाई, दहेज, तीज त्योहार का बोझ। बेटियाँ यानी माँ बाप के अंदर भविष्य का भय, असहायता और भीतरी अकेलापन। बेटियाँ यानी जननी को पल-पल मिलने वाले तंज़। बेटियाँ यानी कुंठित पति द्वारा रोज़-रोज़ मार-पीट, अपमान। बेटियाँ यानी पति की आग्नेय दृष्टि, बेटियाँ यानी निपूती होने का ताना। इसीलिए पिता वारिस बनाने हेतु छोटे भाई के बेटे राजविन्दर राणा को गोद लेते हैं, जबकि जानते हैं कि वह बहनों के लिए नहीं, सिर्फ उनके बुढ़ापे की लाठी बन कर अर्थी उठाने के लिए है।

समय के साथ अगली पीढ़ी में यह अनचाहापन कुछ कम तो हुआ, पर कामना कम नहीं हुई। मनिका की दो बेटियाँ हैं। उनसे अपने सारे स्नेह के बावजूद वह बेटे की चाह में दो बार अबॉर्शन करवाती है। गर्भवती नीता को पुत्र प्राप्ति हेतु अनेक टोटके बताए जाते हैं- नारियल के बीज, बिना नमक का खाना, दरगाह के तावीज़, दम किया पानी, मोरपंखी वाली देसी दवाई, बछड़े वाली गाय का दूध। क्योंकि- 'बेटी होना एक संभावना नहीं, बल्कि अभिशाप था। एक ऐसा डर जो शब्दों में नहीं बोला जाता था, बस स्त्रियों के मन में चुपचाप पलता रहता था। वहाँ

गर्भ किसी उत्सव की शुरुआत नहीं, एक परीक्षा की तरह लिया जाता था। कुछ डर बोले नहीं जाते, उन्हें जी लिया जाता है।'

सुर के ससुर ओमप्रकाश चौधरी और सास कुसुम की भी तीन बेटियाँ हैं- गरिमा, महिमा और आशिमा। आशिमा निसन्तान होने के कारण मायके में परित्यक्ता का जीवन ढो रही है। कभी वह परिवार की धुरी थी, चहकती गौरैया थी, कालांतर में उपेक्षिता और काम करने वाली मशीन बनकर रह जाती है और मंदिर के एकांत कोनों में ध्यान-मनन में समय बिताने लगती है। विदेश में बसी गरिमा के भारी गहनों और विदेशी इतर की ख़ुशबू के पीछे एक असुरक्षित पत्नी का डर भी दुबका दिखाई देता है।

बेटे का जन्म ऐसे है, मानो एक जंग जीत ली जाए। बेटे अक्षयवीर की माँ बनते ही नीता की रगों में एक नशीला आत्म विश्वास दौड़ने लगता है कि उसने परिवार को वारिस दे दिया है। बेटे और बेटी के लिए दोहरे मापदंड रहते हैं। उसके जन्म के साथ ही बहन का घर में दर्जा शून्य होने लगता है। जीवन काँटों भरी पगडंडी बन जाता है। हर नई चीज़ पर भाई का अधिकार है और पुरानी को स्वीकारना बहन का कर्त्तव्य / नसीब है। भाई के लिए फ़ोन सुरक्षा का साधन है, बहन के लिए बिगड़ने का। पढ़ाई में भाई के 35 प्रतिशत बहन के 75 प्रतिशत से अधिक महत्त्व रखते हैं। भाई के पास खुला आकाश है, बहन का जीवन बोनसाई के पौधे सी काँट-छाँट लिए है। भाई के लिए पूरा घर है और बहन को स्टोर रूम की साफ़- सफाई करके उसे 'मी कॉर्नर' बनाना पड़ता है। छोटा भाई अपने को उससे बुद्धिमान और उसका संरक्षक समझता है। सुर के पास मूक शिकायतों और आँसुओं से भीगे डायरी के पन्ने हैं। रिक्त स्थानों को भरने वाली कल्पनाएँ हैं। त्रिशंकु सा जीवन है- 'वह एक ऐसे मुसाफिर की तरह है, जो स्टेशन पर बैठा है, लेकिन नहीं जानता कि उसकी ट्रेन कभी आएगी भी या नहीं।'

राखी वाले ममेरे भाई यूवी जैसे लड़के बहनों के लिए भी आँखों में जानवरों सी एक लिसलिसी भूख लिये रहते हैं। नैतिकता, रिश्ते, मर्यादा उनके पास भी नहीं फटकती। लड़कियाँ तो बस लहूलुहान करने वाली बाहरी बुराइयों से बचने के लिए अपनी आत्मा की चिटकनी चढ़ाये रखती हैं या फिर कठोरता का कवच पहन लेती हैं। परिवार का कुल दीपक सगा भाई वीर सिगरेट, शराब, पुड़िया और गोलियों की लत लिये है। उसके पास ऐपल का मोबाइल है, ऑल्टो गाड़ी है, शोहदों की संगति है। वह कुलदीपक है, घर की इज़्ज़त का तमगा है। नशा, रफ्तार, संगीत, रसियापन और अहंकार उसके पैशन हैं। पंकज सुबीर के शब्दों में- 'यह कहानी सुर की ही नहीं है, बल्कि यह कहानी हर उस लड़की की है, जिसके जन्म लेते ही उसके परिजनों के चेहरे पर उदासी नज़र आती है। बेटियों ने अपने अस्तित्व का एक लंबा संघर्ष किया है और वह संघर्ष अभी भी चल रहा है।'

लेखिका बदल रहे समाज / देश / अवधारणाओं / नवचेतना की बात भी कर रही है। अमेरिका से लौटे चौधरी दंपत्ति बताते हैं कि उनकी बेटी की बेटियों ने अमेरिकन और मैक्सिकन से शादी की है। जाति- देश- धर्म नहीं, मन मिलना चाहिए। करम और मनिका की दोनों बेटियाँ मुंबई कान्वेंट में पढ़ती हैं, अत्याधुनिक जीवन जी रही हैं। सुर भी कार-स्कूटर चलाना जानती है। पी. एचडी. कर रही है, पेंटिंग के रंगों में मन का बोझ उँडेलना जानती है, दूसरे धर्म में प्रेम विवाह करती है। परिवार में अपनी कमतर स्थिति की क्षतिपूर्ति वह उच्चतम शिक्षा लेकर, रंगों की दुनिया की विद्रोही और सशक्त चित्रकार बनकर कर रही है- 'मेरे पास चीखने की जगह नहीं है। मेरे घर में मैं फालतू हूँ, पर मैं नहीं हूँ। पेंटिंग में मैं जो चाहे कर सकती हूँ। वहाँ कोई मुझे टोकता नहीं।'130

ख़ास बात यह है कि पिता का आशीर्वाद, यशोदा मैया सी बुआ का संरक्षण और दादा दादी का स्नेह सदा उसके हिस्से में आए। कालांतर में माँ भी तर्क देती हुई कहती है, 'लड़कियाँ सँभालना बहुत मुश्किल होता है। वे काँच की तरह होती हैं। टूटने का डर हमेशा रहता है।'

उपन्यास पंजाबी रीति रिवाजों का सूक्ष्म चित्रण लिए है। जैसे नव-विवाहित जोड़े का स्वागत घर की नौकरानी उन्हें बुरी नज़र से बचाने हेतु दहलीज़ पर सरसों का तेल डाल शगुन लेते हुए करती है। घर का मुखिया शगुन के तौर पर सिक्कों से भरी मुट्ठी बेटे-बहू के सिर से सात बार वार कर बाहर फेंक देता है। ताकि सारी अलाएँ-बलाएँ घर से बाहर रहें। मिट्टी के सकोरों पर पाँव रख उन्हें एक ही झटके में तोड़ते हुये वधू का गृह प्रवेश पुराने बंधन तोड़ने और नई गृहस्थी में प्रवेश का प्रतीक लिए हैं। ननदें आरती उतारती हैं। नववधू पुरखों और कुलदेवी को माथा टेकने के बाद बुज़ुर्गों के पाँव छूती है। सात सुहागिनें माखन-रोटी खिलाने की रस्म पूरी करती हैं। दूध और पानी की परात से अँगूठी ढूँढ़ने का खेल खेला जाता है। विश्वास है कि जितनी गहरी वधू के हाथ की मेहँदी होगी, उतना ही गहरा सास का प्यार मिलेगा। गोद भराई की रस्म में स्त्रियाँ आने वाले शिशु के लिए गीत गाती हैं। इक्कीस दिन नवजात को पुराने कपड़े पहनाए जाते हैं। पुत्र जन्म पर ननिहाल से छक आती है।

सूत्रात्मकता भाषा के बौद्धिक सौंदर्य को शतगुणा कर रही है-

1. दर्द तो उस बिन बुलाये, ढीठ मेहमान की तरह होता है, जो न दरवाज़ा खटखटाता है, न समय की नज़ाकत देखता है। वह बस चला आता है, ठीक उस पल जब आप सबसे ज़्यादा निहत्थे होते हैं, जब आपकी सुरक्षा की दीवारें सबसे ज़्यादा कमज़ोर होती हैं।

2. गर्भ को केवल देह ही धारण नहीं करती, मन भी गर्भवती हो जाता है। जितने हारमोन शरीर में बदलते हैं, उतने ही रसायन मस्तिष्क में भी उलट- फेर मचाते हैं।

3. कुछ डर बोले नहीं जाते, उन्हें जी लिया जाता है।

4. कुछ सच्चाइयाँ बोलने से ज़्यादा चुप्पी में सुरक्षित रहती हैं।

5. जो बच्चा प्यार को अलग-अलग चेहरों में ढूँढ़ना सीख लेता है, वह बड़ा होकर भी एक चेहरे में संतोष नहीं ढूँढ़ पाता।

6. जो क़िस्मत में नहीं होता वह मिलकर भी छूट जाता है और जो क़िस्मत में होता है,

वह अपना रास्ता बदलकर भी लौट आता है।

7. कभी-कभी निजता और निर्जनता के बीच की रेखा बहुत धुँधली हो जाती है।

8. सुर साधने हैं तो दिल में दर्द होना ज़रूरी है।

9. कभी-कभी मौन रहना भी हिंसा का सबसे बड़ा समर्थन होता है।

शैल्पिक दृष्टि से उपन्यास फ्लैश बैक के तारों से अनुस्यूत है। पंजाबी शब्द, वाक्य तो मिल ही जाते हैं पंजाबी गीत पठनीयता का क़द ऊँचा कर देते हैं- 'काला शाह काला, मेरा काला नी सरदार, गोरेयाँ नू दफा करो।' व्यंग्य भाषा को समृद्ध करते हैं- 'शादी में हर चेहरा मुस्करा रहा था, लेकिन हर मुस्कान का अपना एक गणित था।'

उपन्यास का अंत अनेक प्रश्न लिए है- थर्ड जेंडर (इंटर सेक्स) का जन्म- यानी और भी ग़म हैं ज़माने में पुत्राकांक्षाओं के सिवाय। संदेश कि 'औलाद सिर्फ औलाद होती है। न वो बेटा होती है, न बेटी, वो बस आपका हिस्सा होती है।' गर्भवती स्त्री को हर तरह के तनाव और चिंताओं से मुक्त रहना चाहिए। अशांत मन: स्थितियाँ गर्भस्थ शिशु में विकार भी ला सकती हैं। नवजात का जन्मोत्सव जेंडर की अवधारणा से इतर सरगम की सुरीली ध्वनि सा ही होना चाहिए।

संदर्भ: नीलिमा शर्मा, सुर, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2025, समर्पण। वही, पृष्ठ 68- 70, वही, पृष्ठ 135, वही, पिछला रैपर, वही पृष्ठ 208, वही, पृष्ठ 7, वही, पृष्ठ 39, वही, पृष्ठ 70, वही, पृष्ठ 71, वही, पृष्ठ 85, वही, पृष्ठ 144, वही, पृष्ठ 201, वही, पृष्ठ 210, वही, पृष्ठ 222, वही, पृष्ठ 27, वही, पृष्ठ 25, वही, पृष्ठ 223

000

सामाजिक जागृति हेतु प्रयास

अतुल्य खरे

भावनात्मक एवं गंभीर विषय पर केंद्रित एक अत्यंत सशक्त संवेदनशील कथानक, जहाँ दास्ताँ या कहें जीवन गाथा है एक ऐसी बेटी की जिसे उसकी माँ ने सारा जीवन तिरस्कृत ही रखा एवं मात्र इसी लिए ठुकराया क्योंकि वह एक लड़की थी, साथ ही कहानी उस माँ की भी है कि उसकी क्या मज़बूरियाँ थीं, क्यों कर वह अपनी ही बेटी के प्रति ऐसी निष्ठुर बन गई। अत्यंत रोचक एवं वास्तविकता के बेहद क़रीब सृजित घटनाक्रम है, जिसे लेखिका ने बहुत ही रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, एवं उनके लेखन की यह विशिष्टता पुस्तक में अंत तक रोचकता बनाए रखती है, वहीं पुस्तक का अंत भी अप्रत्याशित होते हुए अनुकरणीय, प्रगतिशील तथा विचारोत्तेजक है।

घर-घर से जुड़े या फिर समग्रता में कहें तो जाति-उपजाति के भेद से परे सम्पूर्ण समाज के इस ज्वलंत विषय पर संकीर्ण विचार, यूँ तो ज़र्रे ज़र्रे में व्याप्त हैं, जो की आए दिन किन्हीं न किन्हीं घटनाओं के रूप में सामने आते हैं, किन्तु विषय पर स्वतंत्र विमर्श अमूमन कम ही दृष्टिगत हुआ है। नीलिमा शर्मा ने अपने प्रस्तुत उपन्यास 'सुर' में सम्पूर्ण समस्या को रोचकता के संग कथानक में ढाल कर बेहद विस्तृत एवं समस्त संबंधित विषयों को भी समाविष्ट किया है, जो सहज ही प्रभावी एवं गर्भित संदेश को बख़ूबी समाज तक पहुँचाता है वहीं एक गंभीर विमर्श का प्रारंभ भी करता है।

पूर्व में बात कन्या भ्रूण हत्या की थी जिस पर बहुत हद तक शासकीय प्रयासों द्वारा नियंत्रण पा लिया गया, किन्तु यह उसके बाद की स्थिति है जिस पर या तो कभी विचार ही नहीं होता, या फिर वैसा ध्यान नहीं दिया जाता जितना अपेक्षित है। वह कन्या, जो भ्रूण हत्या से तो बच जाती है, किन्तु वह मासूम बेटी ज़िंदगी भर कितने उलाहने, बंदिशें व दर्द सहती हुई बड़ी होती है और पुन: उन्हीं स्थितियों में माँ बनती है, जिनमें उसकी माँ ने उसे जन्म दिया था, उसकी उस पीड़ा को कभी सुना और समझा ही नहीं जाता। अंतत: वह भी अपनी बेटी को वही सब दर्द, उपेक्षा, ताने और लानत विरासत में सौंप देती है जो उसे मिले थे, किन्तु पुन: कहना होगा कि नीलिमा शर्मा ने अद्भुत कथानक बुना है।

स्त्री जब स्वयं माँ बनने वाली होती है, तो उसका मन, उमंग, चिंता और भविष्य की कल्पनाओं से भरा होता है। लेकिन जब उसके अतीत में बेटियों के प्रति तिरस्कार के गहरे ज़ख़्म और कड़वे अनुभव हों, तो यह अनुभव एक गहरे मनोवैज्ञानिक तनाव और भय में बदल जाता है। नीलिमा शर्मा के इस उपन्यास सुर का कथानक कुछ ऐसे ही घटनाक्रम को लेकर आगे बढ़ता है, जहाँ गर्भवती कथानायिका जो इस वक्त बच्चे को जन्म देने की प्रक्रिया से गुज़र रही है एवं उस अवचेतन अवस्था में अपनी माँ की व स्वयं अपने जीवन की कहानी एक फ्लैश्बैक जैसी अवस्था में प्रस्तुत करती है।

समाज में जब कहीं लोग बेटी के जन्म पर मातम मनाते हैं, वे उस बच्ची और उसकी माँ के आत्मविश्वास को धीरे-धीरे ख़त्म कर देते है। इस संकीर्ण विचारधारा से ग्रसित व्यक्ति कभी यह नहीं समझ पाते कि इस तरह से उन्होंने अपने परिवार की नींव को ही खोखला कर लिया है। नीलिमा शर्मा के इस उपन्यास 'सुर' का कथानक निश्चय ही समाज के उस काले सच को उजागर कर रहा है, जिसे हम वर्तमान तथाकथित आधुनिक, प्रगतिशील, विकसित दौर में ढो रहे हैं।

पुस्तक की नायिका-युवती एक ऐसी मानसिक अवस्था में है जहाँ वह चाह कर भी अपने बचपन की कड़वी यादों को भुला नहीं पाती। उसकी माँ, जो समाज एवं परिवार की लड़का जनने की चाहत को देखते हुए एवं बेटे को जन्म न दे पाने के कारण, स्वयं एक अपराध बोध से ग्रसित रही, जिसका परिणाम उस नवजात ने झेला जो आज लेबर रूम में एक नई काया को जन्म देने की प्रक्रिया से गुज़र रही है। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जहाँ जब बचपन की बातें एवं व्यवहार अवचेतन मन में अपना स्थान बना लेते हैं एवं भविष्य में वह व्यक्ति उस तरह की घटनाओं पर वैसे ही प्रतिक्रिया देता है जैसा उसके संग हुआ था, जो उसके अवचेतन मन द्वारा सुझाया जा रहा है। वहीं गर्भावस्था में इस युवती का डर एवं तनाव उसके पुराने घावों का फिर से हरा हो जाना है। गर्भावस्था में बच्चे के जन्म से ठीक पूर्व की अवस्था किसी भी महिला के लिए यूँ भी शारीरिक एवं मानसिक रूप से कठिन होती है। वहीं यदि उस पर यह

अतिरिक्त भार हो कि मेरे बच्चे के लिंग के आधार पर मेरा भविष्य, परिवार में मेरा स्तर तय होगा तथा जब पिता का प्यार शर्तों (लड़के की चाहत) पर आधारित हो, तो वह प्यार है ही नहीं। वह केवल एक सौदा है एवं स्वाभाविक ही है कि महिला तनाव के हालत में ही रहेगी। यदि एक गर्भवती महिला की माँ बनने की ख़ुशी इस बात पर निर्धारित हो कि उसके द्वारा जन्म दिए गए बच्चे का लिंग क्या है तो बहुत स्वाभाविक है कि वह अपनी ख़ुशी को पूरी तरह से अपने अंदर ही जज़्ब कर लेगी क्योंकि उसे ज्ञात है कि उसकी ख़ुशी का निर्णय या तो समाज या उसके पिता या फिर भाइयों द्वारा किया जाएगा।

प्रस्तुत कथानक में कथानायिका के साथ जो व्यवहार उसकी माँ ने किया, वह उसकी माँ तथा उसकी नानी एवं मौसी आदि के संग उसके मायके में होने वाले व्यवहार की स्पष्ट अनुकृति है। क्योंकि उसकी माँ अपने पिता के व्यवहार से दुखी थी, अत: अपने ससुराल में बेटी होने को लेकर भी सभी का सहज व्यवहार भी उसे सकरात्मकता पर नहीं ला सका, वह अपनी ही बेटी अर्थात कथानायिका उस से दूर होती गई। ससुराल का सकारात्मक रुख़ इस बात का प्रमाण है कि सभी लोगों की सोच अब वैसी नहीं रही तथा समाज में परिवर्तन तो हो रहा है और सोच बदल रही है। ससुराल का ख़ुश होना यह भी दर्शाता है कि एक बिल्कुल नया परिवेश कथानायिका को उस पुराने दकियानूसी डर से मुक्त कर सकता था, यदि वह पुरानी यादों से अपने अवचेतन मन के तूफ़ान से मुक्ति पा लेती।

कथानक में उसके पिता अर्थात कथा नायिका के नाना की संकीर्ण मानसिकता युक्त सोच एवं तदनुसार उनका व्यवहार पिता की असुरक्षा और पितृसत्तात्मक सोच का प्रदर्शन है जहाँ वे इस दौर में भी वारिस वाली मानसिकता में क़ैद हैं। उनका प्यार शर्तों पर आधारित प्रतीत होता है जिसे प्यार कम और समाज में दिखावे तथा मान सम्मान की वस्तु अधिक समझा जाना चाहिए। वहीं हमारी कथानायिका की माँ की मानसिकता का विश्लेषण करें तो सहज ही यह बात उभर कर सामने आती है कि वह स्वयं कभी भी अपने पिता द्वारा स्वीकार नहीं की गई, इसलिए उसके अवचेतन मन में यह बात गहराई तक बैठ गई कि लड़की होना समाज एवं परिवार में अस्वीकार्यता का बड़ा कारण है। फिर जब वह स्वयं माँ बनी, उसके ख़ुद के घर में बेटी हुई, तो उसे अपनी वही पुरानी अस्वीकृत पहचान याद आ गई। उसने अपनी बेटी में स्वयं को देखा, उसे उसके लिए भी वही दुख, वही तिरस्कार सबकी नज़रों में दिखा और वह निष्ठुर बन गई तथा यह निष्ठुरता शनै: शनै: बढ़ती ही गई। उसने वही सब तिरस्कार, नफ़रत और बंदिशें अपनी बेटी पर लगा दीं, जो कभी उस पर थीं। उसका अपनी बेटी को दिल से न अपनाने का निर्णय कहीं न कहीं ऐसा ही प्रतीत होता है, मानों वह अपने अतीत से नज़रें चुरा रही हो या संभवत: वह अव्यक्त भय उसे आगे बढ़ कर बेटी को स्वीकार नहीं करने देता। मानों वह बेटी को जन्म देकर किये गए गुनाह का दंड सारे जीवन भुगतने हेतु अभिशप्त है। किन्तु यदि इस स्थिति को खुले दिमाग से विश्लेषित करें तो सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपनी बेटी के रूप में उस लड़की को देखती है, जिसे उसके पिता ने कभी नहीं चाहा और जिसे आगे समाज की तमाम विपरीत परिस्थितियों से दो चार होना है। वह अपनी बेटी से नहीं बल्कि उसके लड़की होने के अहसास से नफरत कर रही है जो उसे अनचाहे ही विरासत में मिला है। वह स्वयं एक ऐसी महिला है जो अपने पिता के बनाए हुए 'पिंजरे' से कभी बाहर निकल ही नहीं पाई। वह इतनी टूट चुकी है कि उसके भीतर अब प्यार देने की कोई क्षमता शेष नहीं बची। वह अपनी बेटी को अपना कर शायद यह याद नहीं करना चाहती थी कि उसे ख़ुद को कभी किसी ने नहीं अपनाया। प्रतीत होता है मानों वह एक गंभीर उदासी या फिर डिप्रेशन की स्थिति में है।

पुस्तक में एक अन्य अत्यंत प्रभावी किरदार कथानायिका युवती की बुआ का है, जिसे उसके पति ने छोड़ कर दूसरी शादी कर ली क्योंकि वह माँ नहीं बन सकती थी। बुआ जो स्वयं माँ नहीं बन पाई, उसके लिए उस बच्ची को अपनाना एक बेहद स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। बुआ ने बच्ची को वह प्रेम दिया जो उस बच्ची की माँ ने नहीं दिया, वह प्रेम और सुरक्षा जो उस नौनिहाल की प्रथम आवश्यकता व अनिवार्यता थी उसे बुआ से मिले। बुआ का उस बच्ची को अपनाना दिखाता है कि निस्वार्थ प्रेम, जैविक माँ के अभाव को भर सकता है। वहीं माँ का बच्ची से न जुड़ पाना स्पष्टत: यह दर्शाता है कि वह मानसिक रूप से सदा अपने अतीत में ही जीती रही, कभी भी उस घर में मौजूद ही नहीं थी। वह सदा ही अपने पिता के उत्पीड़न, डाँट और तिरस्कार को जीती रही। कथानक में एक निर्दयी माँ समान प्रतीत होती यह नारी तो स्वयं ही पीड़ित है।

इसी संदर्भ में युवती एवं उसकी माँ के बीच के नाम के इस रिश्ते के पीछे कारण मनोवैज्ञानिक अधिक प्रतीत होता है न की सामाजिक यथा एक नवजात का अपनी माँ से न जुड़ पाना दर्शाई गई स्थितियों तथा माँ के व्यवहार के परिणामस्वरूप स्वाभाविक ही है, माँ ने उसे कभी वह सुरक्षा वह अपनापन दिया ही नहीं, जिसकी वह हक़दार थी उसके लिए माँ केवल एक नाम एक शारीरिक उपस्थिति है, जबकि दादी और बुआ ने जिस प्रकार उसे बचपन से सँभाला, वह ही जीवन हेतु उसके भावनात्मक आधार बने। वहीं कथानायिक के नाना का व्यक्तित्व कहें, अथवा उनकी मानसिकता या फिर उस दौर में उनको मिले हुए संस्कारों का प्रभाव की वे अपनी बेटियों द्वारा लड़की को जन्म देने हेतु भी अपनी पत्नी को ही ज़िम्मेवार मानते हैं जो विज्ञान की दृष्टि से निहायत ही हास्यास्पद है। यह अवश्य ही उस व्यक्ति की मानसिक दरिद्रता अथवा कहें दिवालियापन है जो यह भी नहीं समझ पा रहा कि संतान के लिंग निर्धारण में विज्ञान के अनुसार पिता की भूमिका होती है, न कि माँ की। ऐसे लोग तर्क नहीं अपितु अपने अहंकार को महत्त्व देते हैं, वे अपने अहम तथा समाज में अपने नाम के लिए ही जीते हैं। जब उसकी बेटियाँ भी लड़कियाँ ही पैदा कर रही हैं, तो वह पिता कहीं न कहीं इसे अपनी व्यक्तिगत पराजय के रूप में देख रहा है। वह अपनी

बेटियों को भी उसी दृष्टि से देखता है जिससे पूर्व में उसने अपनी पत्नी को भी देखा था। हालाँकि इस पुरुषवादी मानसिकता को दो अन्य अवसरों पर भी लेखिका ने रेखांकित किया है, पहली बार तब जब घर में कथानायिका की माँ एक बेटे को जन्म देती तब उसके पिता की प्रतिक्रिया और वहीं अंत में कथानायिका के तथाकथित उच्च सोच व हर सुख दुख में साथी, जिसे बहुत सोच समझ कर कथानायिका ने तमाम मुश्किलों के बाद अपना सर्वस्व समर्पित किया था, उसका पति, उसकी प्रतिक्रिया भी उसके नाना की प्रतिक्रिया से बहुत भिन्न तो नहीं कही जा सकती।

कथानक में विभिन्न रोचक मोड़ हैं यथा कथानायिका का प्रेम में अपने जीवन के कुछ ख़ुशनुमा पल पाना, परिवार के अंदर ही मामा के लड़के द्वारा छेड़ना एवं प्रताड़ित किया जाना, माँ का सदा ही भाई को उसकी ग़लत एवं अनुचित आदतों हेतु सहयोग, समर्थन एवं अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन दिया जाना तथा नायिका के प्रेम प्रसंग। बुआ जी एवं बहुत हद तक निष्प्रभावी से हो चुके अपने पिता के सहयोग से अंततः अपने मन की कर गुज़रना कथानायिका की सुदृढ़ मानसिकता एवं स्पष्ट उन्मुक्त सोच को दर्शाता है। निश्चय ही पुस्तक का अंत जहाँ अप्रत्याशित है एवं अचानक सामने आते ही पाठक को अचंभित करता है पर कथानक के अंतिम बिन्दु पर यह मोड़ निश्चय ही लेखिका की लेखन शैली एवं स्पष्ट तथा प्रगतिशील सोच को समर्थित करता है। यह नीलिमा शर्मा का पहला उपन्यास है किन्तु निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि अपने लेखन कौशल, विचारों को बख़ूबी कलात्मकता के संग सम्प्रेषित करने की कला एवं अभिव्यक्त के हुनर के चलते उन्होंने पाठक वर्ग के दिलों में अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया है। एक गंभीर विषय को समाज के सामने इतनी स्पष्टता एवं रोचकता से प्रस्तुत करन एवं सामाजिक जागृति हेतु उनका यह प्रयास निश्चित ही सराहनीय है।

000

बेसुरे समय में सुरीली कहानी

डॉ. सत्यनारायण

"सुर... सफ़र एक अनचाही लड़की का" बेसुरे समय में एक ऐसी लड़की की कहानी जो अपने दृढ़ संकल्प से जीवन को सुरीला बनाने की कोशिश करती है, लेकिन इस सफ़र में कितनी बाधाएँ, कितना संघर्ष, कितनी टूट-फूट सभी के बाहर भीतर होती है। स्त्री के साथ यह सदियों से होता आया है, विकास के तमाम दावों, आधुनिकताओं एवं शिक्षा बावजूद आगे भी कहीं कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। वह इसलिए कि परिवार और समाज की सोच आज भी यही है कि लड़कियाँ घर पर बोझ हैं और लड़के भी इसी कारण बचपन से ही ख़ुद को घर का मुख़्त्यार समझने लगते हैं।

सहज सरल भाषा में एक कविता की तरह यह उपन्यास "सुर...सफ़र एक अनचाही लड़की का" एक लय में सुधी पाठक पढ़ता चला जाता है। एक उत्सुकता को जगाता कि आगे क्या हुआ, उपन्यास रखने का मन नहीं होता। लेकिन हर जगह पीड़ा की एक लकीर भी, चाहे वह जन्मदात्री माँ हो, पिता हो, भाई हो, दादा-दादी या बुआ हो... इस लकीर में सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से साझीदार हैं।

आशिमा बुआ, दादा-दादी और पिता के मन में स्नेह के कुछ अंकुरण हैं पर वे मुखर नहीं हो पाते है। नीता का कठोर स्वभाव, कुछ विवशता, कुछ प्रतिरोध न कर पाने की साहस, सुर रोज़ाना टूटती है बिखरती है फिर रोज़ जुड़ती है पर हार नहीं मानती हैं।

सुर का यह संघर्ष घर बाहर हर जगह पर है। इसी के बीच जीवन की बनती-बिगड़ती लय भी है। सुर बार-बार जीवन को सही लय में लाने का प्रयास करती है, ख़ास बात यह है कि समाज में सिर्फ पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी बेटी संतान के ख़िलाफ़ हैं साथ ही बहुत कठोर भी। देखा गया है कि माँ भी बेटी के प्रति यही नकारात्मक भाव रखती है। लेखिका इस बात संकेत भी देती है कि इसके पीछे सदियों पुरानी रूढ़ियों की इतनी जकड़न हैं कि लड़की के जन्म के साथ ही माँ यह स्वीकारती है कि यही उसकी नियति है। ऐसी ही चरित्र नीता भी है उसके मन में भी यह तथ्य था भावना नहीं थी। समय के साथ साथ नीता का व्यवहार सुर के प्रति यांत्रिक सा होता गया। वीर छोटे भाई के जन्म के बाद तो सुर की नन्हीं-सी दुनिया वीरान, अकेली हो चुकी थी। भीड़ में एकदम अकेली थी सुर, किसी भी अपने के पास उसके लिए थोड़ा सा भी समय ही नहीं था, स्नेह नहीं था।

पहले मृणाल जिससे मिलने पर सुर के हृदय में प्रेम की कोंपले अंकुरित होने लगी थीं, वह अंकुरण से पहले ही परिदृश्य से परिस्थितिवश लोप हो गया। फिर बलजीत जीवन में संगीत की लय बनकर आता है और जीवनसाथी बन जाता है। सुर के घर में जुड़वाँ बच्चों का जन्म होने वाला है, सब ख़ुश हैं। जन्म के उपरांत जुड़वाँ बच्चों में लड़की का जन्म तो सबको स्वीकार्य होता है लेकिन दूसरा बच्चा जो न बेटा है न बेटी... उसके जन्म की ख़बर से समाज का, परिवार का एक नया रूप सामने आता है। बलजीत जैसा प्रेमी पति भी अब समाज में अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए उस बच्चे से छुटकारा पाना चाहता हैं। लेकिन सुर...? उसकी सोच अब गहन होती है।

उपन्यास पढ़ते हुए पाठक बराबर एक बेचैनी से घिरा रहता है कि इस स्त्री का संघर्ष आख़िर कहाँ जाकर समाप्त होगा ? सदियों से चली आ रही इस पीड़ा से मुक्ति की छटपटाहट आख़िर कब ख़त्म होगी ? उपन्यास की सबसे ख़ास बात इसका अप्रत्याशित अंत है जो सिर्फ़ स्त्री मात्र नहीं बल्कि एक माँ की कोख़ से पैदा हुए हर उस जीव के लिए भी उतना ही दुखद है जो न नर है न मादा। इनको स्वीकारना तो दूर, इनको समाज से परे दुत्कार कर फेंक दिया जाता है जबकि उनके जन्म से ऐसा होने में उनका अपना कोई कसूर भी नहीं होता है।

कई ऐसे सवाल जो आज भी अनुत्तरित हैं से जूझता यह उपन्यास प्रासंगिक है। सहज सरल भाषा शैली में यह उपन्यास बहुत पठनीय है।

000

केंद्र में पुस्तक

(कविता संग्रह)

एक पुराना मौसम लौटा

समीक्षक : यतीन्द्र मिश्र, शैलेन्द्र शरण, दीपक गिरकर

लेखक : शहरयार

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

यतीन्द्र मिश्र
राज सदन, अयोध्या, 224123
फ़ैज़ाबाद, उप्र
मोबाइल- 9935191485
9415047710

शैलेन्द्र शरण
79 रेलवे कॉलोनी, आनंद नगर, खंडवा 450001, मप्र
मोबाइल- 8989423676
ईमेल- ss180258@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

प्रेम और रूमान की तहें

यतीन्द्र मिश्र

शहरयार का कविता संग्रह 'एक पुराना मौसम लौटा' कविता परिदृश्य में एक नए कवि की आमद है। पहले ही संग्रह में शहरयार उस गंभीर आहट का संकेत देते हैं, जो भविष्य में उनसे परिपक्व कविताओं का सृजन कराएगी। कथाकार पंकज सुबीर इन कविताओं में प्रेम के कारण कहीं-कहीं कच्चेपन और कुछ अनगढ़ ढंग से उस रूमान की ओर इशारा करते हैं, जो चुभता नहीं। दरअसल, प्रेम जैसे विषय को कविताओं का आँगन बनाने वाले इस कवि ने ऐसे समय में कामना, विश्वास, बिछोह और प्रतीक्षा को अपने लिए स्वायत्त किया है, जब सारी दुनिया नृशंस ढंग से युद्धोन्माद की छाया के तहत जीने को विवश है। 'एक पुराना मौसम लौटा' में यह विचार जैसे प्रेम से अलग भी जीवन को दूसरे अर्थों में मानी देता है- 'शायद ख़्वाब इसलिए आते हैं। ताकि कुछ अनकहे रिश्ते हक़ीक़त में अपनी जगह बना सकें...' कई कविताएँ अपने उदास अधूरेपन में उस सच्चाई को पकड़ने की कोशिश में मुब्तिला हैं, जहाँ पूर्णता एक आकांक्षा नहीं, बल्कि स्वप्न बनकर जीवन में आती हैं। 'रस भरी मदिर गठान' में प्रेम की उदात्तता उस लोकवृत्त में अपनी जड़ें जमाती है, जहाँ नज़र लगने पर लोबान जलाने या दुआएँ पढ़ने की कैफ़ियत मौजूद है। 'शरारे का घेरा और चूड़ियों का शोर एक साथ मिल कर एक धुन बनाते हैं' 'जहाँ से फूटता है झरना कल कल उसकी धुन में सुनता हूँ तेरी पायल...', 'तुम्हारे कानों में वह जब झूलता तो लगता था जैसे सूरज और चांद मिले हों...'

शहरयार की कविता अपने पहले संग्रह में प्रेम का सगुन मना रही, हर जगह केवल उदात्तता और प्रेम के गोशे में फैला आत्मीयता का सतरंगी वितान पसरा है। काश कवि जीवन ऐसा ही बना रहे। मुझे लगता है, जैसे समय बीतेगा और जीवन के अपने खुरदुरे यथार्थ को वह समझते हुए बाहर लाएँगे, प्रेम का सरोकार थोड़ा गहरा, थोड़ा और सुर्ख़ होता जाएगा। 'इत्र या तुम्हारी महक' में उतरी प्रेम की ख़ुशबू दुनिया के सारे फ्रांसीसी इत्रों से ज्यादा क़ीमती थी- यह बात सच्चाई से सामने आती है। प्रेम के ढेरों रूपक परोसता संग्रह, अलग से पठनीय बन जाता है। यह संग्रह, कवि की निश्छल भाषा शैली, नए अनूठे बिंबों, तरल होती भावनाओं के इंद्रजाल, सम्मोहन का मायालोक गढ़ने और प्रेम व अनुराग के गहरे सरोकार साधे ताजगी भरा अनुभव लेकर सामने है। इन कविताओं से गुज़रना, पाठक को उन मासूम पलों में लौटा ले जाने सरीखा है, जहाँ प्रेम एक विश्वास, एक उम्मीद से भरी हुई लौ की तरह दिपदिपाता है।

000

नई संवेदनाओं का काव्य-प्रवेश

शैलेन्द्र शरण

कविता में जब भी कोई कवि अपनी पहली पुस्तक के साथ आता है, तो उसके सामने दोहरी चुनौती होती है, एक ओर उसे अपनी मौलिक पहचान स्थापित करनी होती है, और दूसरी ओर पाठक के भीतर जगह भी बनानी होती है। 'एक पुराना मौसम लौटा' इसी अर्थ में एक महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह है, जो अपने शीर्षक, संवेदना और बिंब-विधान के माध्यम से पाठक का ध्यान खींचता है।

'एक पुराना मौसम लौटा' अपने भीतर स्मृति, पुनरावृत्ति और भावनात्मक पुनर्संवाद का संकेत समेटे हुए है। चूँकि यह कवि का पहला संग्रह है, इसलिए इसमें एक प्रकार की कच्ची ईमानदारी दिखाई देती है, जो इसे विशिष्ट बनाती है। यहाँ कृत्रिमता या बनावट का आग्रह नहीं है, बल्कि अनुभवों की सादगी और भावों की सच्चाई है। यह सच्चाई ही पाठक को बाँधती है। कवि अपने आसपास की दुनिया को किसी बड़े दार्शनिक ढाँचे में बाँधने की कोशिश नहीं करता, बल्कि छोटे-छोटे अनुभवों, क्षणों और स्मृतियों के माध्यम से अपनी बात कहता है।

इस संग्रह की प्रमुख विशेषता इसकी स्मृतिधर्मी संवेदना है। कविताएँ कई बार अतीत की ओर लौटती हैं, लेकिन यह लौटना केवल स्मरण नहीं, बल्कि पुन: अनुभव करने की प्रक्रिया है। जैसे कोई पुरानी गंध, कोई पुराना गीत या कोई परिचित रास्ता अचानक हमें उन दिनों में ले जाता है, जो पीछे छूट चुके हैं। कवि इन्हीं क्षणों को पकड़ने की कोशिश करता है।

प्रेम इस संग्रह का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, लेकिन यह प्रेम पारंपरिक अर्थों में रूमानी नहीं है। यहाँ प्रेम में दूरी है, एक हल्की-सी उदासी है, और एक ऐसा मौन है, जो शब्दों से अधिक कहता है। कवि प्रेम को किसी उपलब्धि की तरह नहीं, बल्कि एक अनुभव की तरह देखता है, जो कभी पूर्ण नहीं होता, लेकिन अपनी अधूरी अवस्था में ही अधिक सच्चा और गहरा होता है।

भाषा की दृष्टि से यह संग्रह अत्यंत सरल, सहज और आत्मीय है। कवि कठिन शब्दों या जटिल संरचनाओं का सहारा नहीं लेता, बल्कि आम बोलचाल की भाषा में ही गहरी बात कहने का प्रयास करता है। यही कारण है कि पाठक को कविता से जुड़ने में कठिनाई नहीं होती। हालाँकि, इस सरलता के भीतर एक गहरी अर्थवत्ता छिपी होती है, जिसे समझने के लिए सहज संवेदनशीलता काफी है।

बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग भी इस संग्रह में उल्लेखनीय है। शहरयार की कविताओं में स्वाभाविकता से आए अनेक बिम्ब केवल दृश्य नहीं रचते, बल्कि भावों की एक परत भी निर्मित करते हैं। कवि इन बिंबों के माध्यम से अपने भीतर की स्थितियों को व्यक्त करता है। विशेष बात यह है कि ये प्रतीक जटिल नहीं हैं, बल्कि सहज हैं, इसलिए पाठक उन्हें आसानी से आत्मसात कर लेता है।

इस संग्रह की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका भाव-प्रवाह मंद है। यहाँ कोई जल्दबाज़ी नहीं है, न ही चौंकाने की कोशिश। कविताएँ धीरे-धीरे खुलती हैं और पाठक के भीतर उतरती जाती हैं। यह एक ऐसा काव्य-संसार है, जो पाठक से धैर्य की अपेक्षा करता है। ठहरकर पढ़ा जाए, तो हर कविता में एक नया अर्थ, एक नई अनुभूति मिलती है।

पहली कृति की कुछ सीमाएँ होती हैं, जो स्वाभाविक हैं, अत: इस संग्रह में भी हैं। लेकिन ये सीमाएँ इस संग्रह की ईमानदारी को कम नहीं करतीं, बल्कि यह संकेत देती हैं कि कवि के भीतर आगे और बेहतर रचनाएँ करने की संभावनाएँ प्रबल हैं।

समकालीन समय में, जहाँ कविता अक्सर या तो अत्यधिक बौद्धिक हो जाती है या फिर अत्यधिक सपाट। ऐसे में 'एक पुराना मौसम लौटा' संग्रह में संतुलन बनाता हुआ दिखाई देता है। यह न तो अत्यधिक जटिल है, न ही सतही। यह पाठक को अपने भीतर झाँकने के लिए प्रेरित करता है और उसे उसके अपने अनुभवों से जोड़ता है।

अंतत:, यह कहा जा सकता है कि 'एक पुराना मौसम लौटा' एक आशाजनक शुरुआत है। यह संग्रह किसी बड़े दावे के साथ नहीं आता, लेकिन अपनी सादगी, संवेदनशीलता और ईमानदारी के कारण पाठक के मन में जगह बना लेता है। यह एक ऐसी काव्य-यात्रा की शुरुआत है, जो आगे चलकर और अधिक गहराई और विस्तार प्राप्त कर सकती है।

यह पुस्तक हमें यह महसूस कराती है कि हमारे भीतर भी कई 'पुराने मौसम' छिपे होते हैं जो लौटते हैं तो हमें छूते हैं, और फिर चुपचाप कहीं खो जाते हैं। कविता का काम शायद इन्हीं क्षणों को पकड़ लेना है और इस संग्रह में कवि ने यह काम सच्चाई और संवेदना के साथ करने का प्रयास किया है।

000

कोमल और दृश्यात्मक

दीपक गिरकर

'एक पुराना मौसम लौटा' क़ानूनज्ञ, विश्लेषक, समीक्षक, संपादक और कवि शहरयार का प्रथम कविता संग्रह है। यह संग्रह उनकी रचनात्मक चेतना और अनुभूति-समृद्ध दृष्टि का परिचायक है। साहित्य और विधि, दोनों क्षेत्रों में समान अधिकार रखने वाले शहरयार ने 'कार्यस्थल पर यौन शोषण: कारण और निवारण' जैसी महत्त्वपूर्ण शोध-पुस्तक की रचना की है। इसके अतिरिक्त उनके अनेक शोधपरक एवं समीक्षात्मक आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर विचार-जगत् को समृद्ध कर चुके हैं। व्यावसायिक रूप से भी वे साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय हैं। वे शिवना प्रकाशन के मुख्य प्रबंधक, शिवना साहित्यिकी के कार्यकारी संपादक तथा विभोम स्वर के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्यरत हैं। संपादन-कला में उनकी दक्षता का परिचय इस तथ्य से मिलता है कि उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का संपादन भी किया है। उन्होंने तीन लघु फ़िल्मों में अभिनय भी किया हैं।

'अनजाने जंगल की ख़ुशबू' कविता कोमल, दृश्यात्मक और अंतरंग प्रेमभाव को प्रभावशाली बिंबों के माध्यम से व्यक्त करती है, ख़ासकर नथ और जुल्फ़ों का चित्रण बेहद आकर्षक है। यह कविता संवेदनशीलता और

कल्पना का सुंदर मेल है। कविता मुक्त छंद में है, जो भावों के लिए उपयुक्त है। कविता का मूल भाव मोह, आकर्षण और ठहराव है। 'तुम्हारे स्पर्श की भाषा' कविता - रोज़, बिना किसी आहट के, / मेरे ख़्वाबों के पर्दे पर, / तुम्हारी परछाई उतरती है। / चेहरा स्पष्ट नहीं होता, / पर तुम्हारी हँसी की धुन, / मेरे दिल के अँधेरे कोनों में गूँजती है। / तुम्हारे नैन बोलते हैं - / हाँ, वो बोलते हैं, / वो सारी बातें, / जो जागते हुए कभी नहीं कही गई। / उनमें एक प्रश्न होता है, / और एक स्वीकृति भी। / तुम्हारे होंठ हिलते नहीं, / पर तुम्हारे स्पर्श की भाषा, / मुझे कंठस्थ है। यह कविता स्वप्न और प्रेम के बीच की सूक्ष्म, रहस्यमयी दुनिया को सुंदर ढंग से पकड़ती है। नज़रों में छिपी बातें और स्पर्श की भाषा जैसे बिंब बहुत प्रभावशाली हैं, जो अनकहे संवाद को गहराई देते हैं। भाषा सरल और भावपूर्ण है तथा परछाई, हँसी की धुन जैसे चित्र कविता को जीवंत बनाते हैं। यह एक कोमल, आत्मीय और स्वप्निल प्रेम-कविता है, जो अनकहे एहसासों को ख़ूबसूरती से व्यक्त करती है। 'पहला इश्क़िया संवाद' कविता पहले प्रेम-स्पर्श के अनुभव को अत्यंत जीवंत और भावनात्मक तीव्रता के साथ प्रस्तुत करती है। उँगलियाँ मिलीं से शुरू होकर आत्मा का संवाद तक का सफ़र बहुत स्वाभाविक और प्रभावशाली है। एक सदी की हलचल, ओस की बूँद और ताले की चाबी जैसे बिंब बेहद सुंदर और यादगार हैं। शारीरिक स्पर्श को आत्मिक स्तर तक ले जाना कविता की गहराई बढ़ाता है। भावनाओं की क्रमिक वृद्धि बहुत सहज लगती है। यह एक संवेदनशील, गहराई से महसूस की गई प्रेम-कविता है, जो पहले स्पर्श की मासूमियत और तीव्रता दोनों को ख़ूबसूरती से पकड़ती है। 'वह एक मिनट' कविता भाव, लय और सादगी के कारण प्रभावशाली है। 'वह आधा घंटा जो थमा नहीं' कविता का असर सीधा दिल पर पड़ता है। यह उसकी सबसे बड़ी ताक़त है। इसमें भावनाएँ बनावटी नहीं लगतीं, बल्कि बहुत निजी और सच्ची महसूस होती हैं। कविता का केंद्र समय को थाम लेने की इच्छा और प्रेम के अंतरंग क्षण है। कवि ने उस आधे घंटे को जिस तरह लगभग अनंत बना दिया है, वह बहुत प्रभावी है। 'हर साँस प्रार्थना कर रही थी' जैसी पंक्तियाँ इस भाव को गहराई देती हैं।

'वह आसमानी नूर' कविता की अंतिम पंक्तियाँ - वह जब चलती है, / तो शरारे का घेरा और चूड़ियों का शोर / एक साथ मिलकर एक धुन बुनते हैं। / एक ऐसी धुन ... / जिसे सुनने के बाद दुनिया का हर संगीत / बेअसर लगने लगता है। नारी-सौंदर्य के एक अत्यंत कोमल और संवेदी क्षण को सजीव रूप में प्रस्तुत करती है। कवि ने शरारे के लहराते घेरे और चूड़ियों की खनक जैसे साधारण प्रतीकों के माध्यम से एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभव रचा है। दृश्य और श्रव्य बिंबों का सुंदर संयोजन कविता को प्रभावशाली बनाता है।

'शरीफ़ सा दिखने वाला वह सरदार', 'अंताक्षरी का वह बेईमान सुल्तान', 'हम पाँच और हमारी उलझी दोस्ती' जैसी कविताएँ मित्रता को समर्पित रचनाएँ हैं, जिनमें युवावस्था की अल्हड़ता, सहजता और निश्छल अपनापन सजीव हो उठता है। इन कविताओं में लड़कों की बेफ़िक्र दोस्ती के वे रंग उभरते हैं, जो कभी शरारत में ढलते हैं, तो कभी गहरी आत्मीयता में। 'एक हाथ, जिसने मेरा भविष्य गढ़ा', 'तीन पीढ़ियों का विश्वास अनकहा रिश्ता', 'शिवना- आपकी मेहनत, मेरी पहचान', 'अभावों से आसमान तक' कविताओं में कवि ने अपने जीवन-संघर्षों की दीर्घ यात्रा को स्मरण करते हुए वर्तमान उपलब्धियों के प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त की है। इस रचना में वे अपने उस मुक़ाम तक पहुँचने की प्रक्रिया को केवल व्यक्तिगत प्रयास का परिणाम नहीं मानते, बल्कि उसके मूल में अपने गुरु के मार्गदर्शन, प्रेरणा और आशीर्वाद को स्वीकार करते हैं।

'वह एक तार और नूरानी चेहरा', 'काजल और ..., 'साँवला नूर और वह तिल', 'उसकी हँसी और वे मोती, 'रस भरी मदिर गठान', 'वह आसमानी नूर', 'साड़ी और कमरबंद', 'बंजारे पैरों की ख़ुशबू', इत्यादि कविताएँ मोहक सौंदर्य के ऐसे अप्रतिम चित्र प्रस्तुत करती हैं, जिनमें रूप, भाव और अनुभूति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। इन रचनाओं में नारी-सौंदर्य केवल बाह्य आभा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह एक सूक्ष्म, संवेदनशील और भावमय अनुभव के रूप में उभरता है। प्रत्येक कविता अपने आप में एक सजीव बिंब है, जो पाठक के मन में आकर्षण, कोमलता और रसात्मकता की गहरी छाप छोड़ती है।

पुस्तक का शीर्षक गुलज़ार की एक ग़ज़ल का हिस्सा है। इन कविताओं में धवलता की निष्कलुष आभा ऐसे झिलमिलाती है मानो हिम-शिखरों पर बिखरी चाँदनी स्वयं शब्दों का रूप धरकर उतर आई हो। इनमें एक कच्ची, नवांकुर-सी कोमलता है, जो हृदय की गहराइयों में सहज ही स्पंदन उत्पन्न करती है। साथ ही, पवित्र प्रेम की जो प्रगाढ़ता इन रचनाओं में व्यक्त हुई है, वह पाठक को आत्मीय अनुभूति के एक अलौकिक संसार में ले जाती है, जहाँ भावनाएँ अपने सबसे सच्चे और निर्मल रूप में प्रकट होती हैं। इन कविताओं की एक विशेषता यह भी है कि इनमें प्रेम के विविध आयामों के साथ-साथ मित्रता का मधुर, स्नेहमय रंग भी घुला-मिला है। यह मित्रता प्रेम को और अधिक मानवीय, सहज और जीवंत बनाती है, जिससे भावनाओं का प्रवाह और भी सरस एवं आत्मीय हो उठता है। शृंगार के मनोहर चित्रों से लेकर विरह की मर्मांतक वेदना तक, इन कविताओं में भावनाओं का एक व्यापक संसार साकार हुआ है। कहीं मिलन की मधुर मुस्कान है, तो कहीं बिछोह की नि:शब्द पीड़ा; कहीं रूप-सौंदर्य की मोहक छटा है, तो कहीं अंतर्मन की सूक्ष्म संवेदनाओं की अनुगूँज। इस प्रकार, ये कविताएँ केवल शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि मानवीय भावनाओं की एक सजीव, सशक्त और अनुपम अभिव्यक्ति हैं, जो पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ती हैं। कवि शहरयार ने कविताएँ दिल से लिखी है। उम्मीद की जानी चाहिए कि शहरयार अपना काव्य सृजन जारी रखेंगे और आगामी वर्षों में उनके और भी कई संग्रह पढ़ने को मिलेंगे।

000

केंद्र में पुस्तक

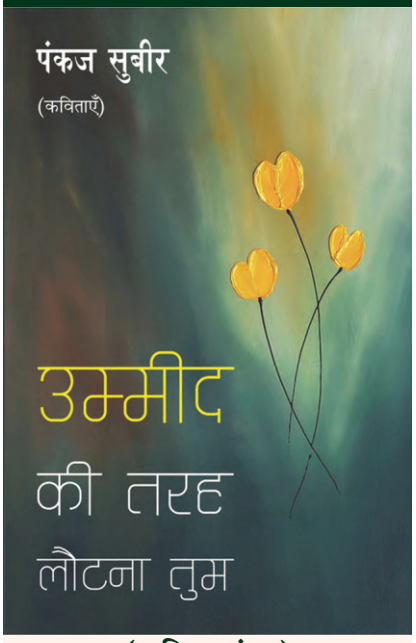

(कविता संग्रह)

उम्मीद की तरह लौटना तुम

समीक्षक : राजेश सक्सेना, कुंकुम गुप्ता, चारुमित्रा, अशोक अंजुम

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

राजेश सक्सेना
48- हरिओम विहार, उज्जैन, मप्र 456010
मोबाइल- 7869408734

डॉ. कुंकुम गुप्ता
2/9 रंथम्भोर, काम्प्लेक्स जोन-2, एम. पी. नगर, भोपाल 462011, मप्र
मोबाइल- 9425606033

चारुमित्रा
सहजानंद चौक के समीप, हरमू हाउसिंग कॉलोनी, एम.आई.जी.-82 (एम/एफ), रांची- 834002 (झारखंड)
मोबाइल- 9471243970

अशोक 'अंजुम', स्ट्रीट-2, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद) क्वारसी बायपास, अलीगढ़ 202002 (उ.प्र.)
मोबाइल- 9258779744

संवेदनाओं की नदी में रिश्तों को बचाती कविताएँ

राजेश सक्सेना

उम्मीद मानव समाज का सबसे सुखद, सुन्दर और संबल भरा शुक्ल पक्ष है, जिसके कारण सृजन, निर्माण और सभ्यता के विकास की यात्रा मनुष्य को निरंतर गतिमान रखती है, यह साहित्य में भी तमाम निराशाओं, हताशाओं, विषमताओं में भी उम्मीद का एक दीप जलाए रहती है !

'उम्मीद की तरह लौटना तुम' सजग और समर्थ कथाकार पंकज सुबीर की ऐसी ही कविताओं का संग्रह है ! वैसे पंकज मूलत: कथाकार हैं उनकी पहचान हिन्दी समाज में श्रेष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में स्थापित है, लेकिन जैसा पंकज ने अपने आत्मकथ्य में लिखा है कि अपने पिता के निधन ने उनके भीतर से कुछ काट दिया, इस अनुभव ने उनके भीतर संवेदना की नदी का एक जल स्रोत प्रकट कर दिया, वहीं से कुछ पंक्तियाँ निकल पड़ीं, जो काव्यात्मक हैं और उन्हें अपनी भावनाओं में सँजो कर पंकज सुबीर ने कविता में ढाल दिया। कवि के कथन में यह ईमानदार स्वीकारोक्ति है कि वह आश्वस्त नहीं है कि वह कह सके कि ये कविताएँ हैं भी या नहीं ? यह ईमानदारी ही कवि की दृष्टि, समझ और सोच के दायरे को बड़ी करती है !

इस संग्रह को कवि ने पाँच अलग उपशीर्षकों में विभक्त किया है जिन्हें 'प्रवेश', 'प्रकृति', 'प्रेम', 'प्रारूप' और 'प्रतिरोध' से अंकित किया गया है और कविता बनने के जैसे पंचतत्त्वों की ही तलाश कवि ने की है, जिनमें जीवन की दार्शनिकता के द्वार खटखटाने की कोशिश हैं, प्रेम, रिश्ते और उनकी उदार संवेदनशील स्पन्दनों को छूने का उपक्रम है, प्रकृति प्रदत्त सौंदर्य और जीवन का संयोजन भी है !

संग्रह के 'प्रवेश' अंक में- 'यूँ ही नहीं चला जाता कोई / जैसे हम कह देते हैं /वह तो अचानक ही चला गया /अचानक कुछ नहीं होता /थोड़ा-थोड़ा होता है कुछ कई दिनों से /अचानक नहीं जाता कोई' कविता है, यह कविता घटना की दार्शनिकता के उस स्रोत की ओर परिलक्षित की गई है जिसमें काल की क्रियात्मक गतिशीलता है, कर्ता का कार्य है। इससे यह अंदाज़ लगता है कि कवि जीवन की घटनाओं के होने न होने के कारणों या अकारणों के बीच डूबकर देखता है और इसलिए वह एक अन्य कविता 'अघटित' लिखते हुए उसमें अघटित के संशय में जीने को भी कवि उद्घाटित करता है- 'अंतिम सिरे पर पहुँचकर / हमें ज्ञात होता है कि / बहुत सारे / अघटितों को / साँस की तरह लेते रहे हम जीवन भर..'।

'पचास पार की उम्र' कविता में कवि उम्र की मध्य अवस्था में खड़े होकर युवा पीढ़ी और दूसरी तरफ बुज़ुर्ग पीढ़ी को देखते हुए स्वयं के भीतर एक बेचैनी अनुभव करता है, जिसमें समय के दो छोर हैं एक छोर तेज़ी से बढ़ रहा है और दूसरा धीमे-धीमे अंत की ओर जा रहा है, इस के मध्य कवि की आशंका, भय और स्मृतियों के बीच झूलता है !

'घर', 'रात स्वप्न और मैं', 'जीने की उम्र', इन कविताओं में समय और रिश्तों की मानवीय संवेदना का स्वर दिखता है!

'कैसे कर लेती हो' संग्रह की यह कविता एक प्रकार से स्त्रियों के प्रति उदारता, उनके महत्त्व और कृतज्ञता को रेखांकित करती है !

'प्रकृति' अंक में एक कविता है जिसका शीर्षक है 'विदा फ़रवरी', इसमें फ़रवरी की लघुता को चिह्नित कर कवि ने फ़रवरी के मौसम की कभी गरम कभी ठंड की विशेषता और 'विदा होती यह फ़रवरी उदास भी करती है' जैसी पंक्ति लिखी है, किन्तु यहाँ एक विरोधाभास भी होता है कि फ़रवरी में अक्सर वसंत ऋतु भी आती है, जो प्यार के सबसे सुन्दर मौसम की परिचायक है जिसे मधुमास कहा गया है, इस तरह यहाँ कवि के द्वारा जो स्थापना की गई है वह तर्क संगत नहीं लगती है !

'सुनो कालिदास' एक ऐसी कविता है जिसमें कवि ने पूरी कविता में विकास की नई

अवधारणा के विरुद्ध जिन परिणामों को इंगित किया, वे वस्तुत: विनाश के लक्षण हैं, इससे चिंतित कवि ने प्रतिरोध में यह कविता रची है और अभिधा के कलात्मक प्रयोग और व्यंजना के सुन्दर निष्पादन के साथ कालिदास को इसका आलम्बन दिया गया है- 'सुनो कालिदास / तुम अकेले नहीं जो काट रहे थे / उस शाख़ को जिस पर / तुम बैठे थे / हम भी वही कर रहे हैं !'

इस कविता में कवि ने पेड़ काटने, नदियों के बहाव, सीमेंटकृत विकास, जलवायु, पर्यावरण, जंगल के लिये चिंता व्यक्त की है, यह कविता व्यंजक ध्वनि के साथ विकास के मानकों को आईना दिखाती है!

'प्रेम' खंड की कविताओं में कवि ने अपने निजी अनुभव और कोमल मनोभावों को सँजोकर प्रेमिल शब्दों, रूपकों, और बिम्बों के माध्यम से कविताओं में ढाला है, जिसमें 'तुम्हारा नाख़ून, 'तुम एक संभावना', 'तुम', 'मंगल गृह पर' जैसी कविताओं में कवि प्रेम की अनंत ऊँचाइयों को भी छूता है और साथ ही हृदय की गहराइयों की भी थाह लेता है !

'उम्मीद की तरह लौटना तुम' लोक मंगल की अनेक कामनाओं की एक ऐसी कविता है, जो संग्रह के शीर्षक को सार्थक करती है। कवि ने अपने पिता के न रहने के दु:ख और अवसाद को जिस आकार में काव्य रूप में रचा है वह वस्तुत: समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी और पिता के प्रति प्रेम और आदर्शों से कवि के अंदर उपजती है, इसलिए कवि कहता है- 'इस बार लौटो तो / उम्मीद की तरह लौटना तुम /पृथ्वी पर अंतिम शेष / हरीतिमा को जिस प्रकार / उम्मीद होती है / हर एक बादल से!'

इसमें कवि ने अपनी आत्मीय गहराइयों से लौटने की उम्मीद के द्वारा वो सब चाहा है जो दुनिया को ख़ूबसूरत बना सकता है जिसमें प्रेम, प्रार्थना, युद्ध विराम, दवाई, दुआएँ, प्रतीक्षा और मनुष्यता की सम्भवनाएँ जीवित रहें !

'प्रारूप' खंड में कुछ आत्मीय रिश्तों के नामों पर कविताएँ हैं जिनमें 'माँ' पर कविता में रिश्तों को जोड़ने की अद्‌भुत बिम्ब और शैली के साथ यह कविता आती है, जिसमें माँ विवाह में निमंत्रण भेजने के लिये नामों को काटने के विरुद्ध अपनी प्रभावी दलील रखती है और उन्हें निमंत्रण भेजने के लिये कहती है ताकि दूर के रिश्तों को भी बचा सके- 'अरे इनका नाम मत काटो / बहुत क़रीब के रिश्तेदार हैं / हर सुख दु:ख में आते हैं / निमंत्रण की सूची बनाते समय / हर नाम नहीं काटने देने पर / जिरह करती है माँ !'

इस तरह माँ रिश्तों की कुंजी भी है जो उन्हें बचाती है! इसी तरह पिता पर क़रीब बारह कविताएँ हैं। हर कविता में, कवि के पिता के लिये अनेक कोण से अनुराग और प्रेम ज़ाहिर होता है। नानी पर कविता है, कुछ घनिष्ठ मित्र सुधा ढींगरा, ओम ढींगरा, अशोक कुमार पाण्डेय, शहरयार, फातिमा, यतीन्द्र मिश्र, गौतम राजऋषि के लिये भी अपने अनुराग और उदार भाव को पंकज सुबीर अपनी कविता के विषय बनाते हैं !

'प्रतिरोध' अंक की कविताओं में धर्मसत्ता, राजसत्ता, पर कवि तीखे सवालों को उठाते हैं, 'तानाशाह की असत्य हँसी', 'कवि के घर तानाशाह' जैसी कविताओं में भी कवि अपने समय को चिह्नित करते हैं!

'समाप्त असहमतियाँ' में कवि ने बहुत गंभीरता के साथ समर्थन, और सहमति के विरूपण से उत्पन्न स्थितियों को रेखांकित किया है!

'तुम्हारी चुप' कविता में कवि ने इस समय की चुप्पियों के बीच कवियों, लेखकों, और जन समुदाय को भी व्यापक दायरे में खड़ा करते हुए आगाह किया है !

कुल मिलाकर यह संग्रह पंकज के मन में रिश्तों के प्रति संवेदनाओं और करुणा की एक नदी के साथ वर्तमान विषमताओं को भी पाठक के सामने लाता है, पंकज सुबीर के पिता अत्यंत भावुक और संवेदनशील चिकित्सक थे, मेरा पंकज के परिजनों व उनके पिता के साथ बहुत आत्मीय और भावप्रवण रिश्ता रहा है, मुझे लगता है यह संग्रह पंकज के पिता के प्रति एक भावांजलि भी है !

000

अभिव्यक्ति के स्तर पर समृद्ध

डॉ. कुंकुम गुप्ता

इस संग्रह का शीर्षक सकारात्मक है जो लौट कर आने के प्रति आशान्वित हैं। पहली कविता 'अचानक' से स्पष्ट है, यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता है लेकिन हमें उसका आभास तब होता है जब बदलाव दिखने लगता है। जैसे उम्र हर दिन बढ़ती है लेकिन उसका हमें चार-पाँच वर्ष बाद आभास होता है कि परिवर्तन हुआ है। अचानक कोई दुनिया से विदा नहीं होता। वास्तव में हर दिन थोड़ा-थोड़ा पग रखता है मृत्यु के मार्ग पर, जिसे हम महसूस नहीं कर पाते हैं और लगता है कि व्यक्ति अचानक दुनिया से विदा हो गया। सच तो यह है कि उसके नेपथ्य में या पूर्वपीठिका में हम झाँकें तो सच से साक्षात्कार हो सकता है लेकिन भागमभाग की दुनिया में हममें से किसी को पिछला पृष्ठ / या घटनाएँ खोलने का समय ही नहीं रहता है।

पुरानी और नई पीढ़ी की गति में भी अंतर होता है जैसे-जैसे हम उम्र के दशक पार करते जाते हैं वैसे ही एक अनाम डर व्यक्ति को घेर लेता है कि पता नहीं कल क्या होगा, हम रहेंगे या अचानक बीत जाएँगे। पुरानी और नई पीढ़ी की गति में भी अंतर होता है। पुरानी पीढ़ी की गति का धीमा होना स्वाभाविक है और नई पीढ़ी की गति का तेज़ होना भी वास्तविकता है। धीमी और तेज़ गति का समीकरण वास्तव में पीढ़ियों का संक्रांति काल ही है।

जीवन का शुरुआती दौर जिस घर से प्रारंभ होता है वास्तव में वह कभी विस्मृत नहीं होता। घर की बेज़ुबान चीज़ों से भी लगाव हो जाता है। दूर रहने पर वह चीज़ें मन मस्तिष्क में दस्तक देती रहती हैं घटित और अघटित बातें भी अंतस में शोर मचाती रहती हैं। रात्रि के एकांत में जाने कितनी निस्तब्धता समाई रहती है। सपने में भी जाने क्या-क्या दिखाई देता है तो मन सुबह की प्रतीक्षा करता है ताकि यह सन्नाटा ज़्यादा देर तक ना रहे। 'रात सपने और मैं' कविता में यही भाव समाहित है। कवि कविता को जीवन की गति का पर्याय मानता है बिना कविता के या बिना गति के जीवन ठहर जाएगा, जो अच्छा संकेत नहीं है। अनुप्रास का

प्रयोग करते हुए 'एक दिन' कविता में बहुत सुंदर पंक्तियाँ हैं देखिए - बिना कविताओं के / प्रेम, प्रतिरोध, प्रगति, प्रस्थान, प्रचार, प्रयोग, प्रार्थना, प्रयास, प्रकृति और प्रभु भी, / कहीं भी..... किसी में भी शामिल नहीं होगी कविता... / कविता जीवन की गति है.....

बचपन जहाँ बीतता है वहाँ की हर घटना चलचित्र की तरह स्मृति पटल पर दस्तक देती रहती हैं। जब हम यह सोचते हैं कि इस घर, मोहल्ला, परिवेश के बिना जीवन जिया नहीं जा सकता तब आकलन करते हैं और आश्चर्य होता है कि इन चीज़ों के बिना कितने वर्ष कैसे जी लिए। कहते हैं 'धीरे-धीरे ख़यालात बदल जाते हैं' जाने की उम्र में यह बात बहुत ही सुंदर तरीक़े से कही गई है कि जाने की उम्र तय नहीं है कई बार छोटे पहले विदा ले लेते हैं और बड़ी उम्र के लोग दुख के सागर में डूबते उतराते रहते हैं।

'वस्तुएँ' मार्मिक कविता है जीते जी व्यक्ति को जिन चीज़ों से मोह रहता है, उसके जाने के बाद वे चीज़ें अर्थहीन हो जाती हैं जैसे- काग़ज़, डायरी, चाबियाँ, दस्तावेज़ आदि, विशेष रूप से साहित्य के प्रति अनुराग रखने वाले लेखक के लिए इन चीज़ों का महत्त्व साँसों की तरह अनमोल रहता है। यह एक त्रासदी ही है कि ऐसे दस्तावेज़ अगली पीढ़ी के लिए रद्दी की तरह हो जाते हैं, जो ठेलों पर दिखाई देते हैं। हर काग़ज़ या दस्तावेज़ का महत्त्व हर व्यक्ति नहीं समझ सकता है। इसका एक निदान भी कवि सोचता है कि सुपात्र को अपने जीते जी जीवन काल में ही हस्तांतरित कर देना चाहिए, ताकि मूल्यांकन और चीज़ों को समझने वाले लोगों के हाथों में जाकर यह सुरक्षित रह सके।

सृजनशील व्यक्ति का टेबल और काग़ज़ पेंसिल से भरा तो रहता ही है, साथ ही बिखरी रहती हैं उसकी किताबें, काग़ज़ आदि। जैसे जीवन में भी उथल-पुथल भटकन और अधूरे भाव विचार आदि दोनों में साम्य दिखाई देता है। एक स्त्री अकेले ही जीवन के कितने पड़ाव पार कर लेती है बिना शिकायत के बिना किसी के सहयोग से लेकिन पुरुष सब कुछ जानते हुए भी ऐसी स्त्री को धन्यवाद नहीं कह पाता है। यह सच है कुछ बातें बहुत देर से समझ आती हैं। स्त्री पर केंद्रित रचनाएँ बहुत गहरे अर्थबोध को समेटे हैं। जादू की अरघनी में भी स्त्री की व्यस्त दिनचर्या के बाद सुबह पुनः नई ऊर्जा के साथ उसका दिन की शुरुआत करना एक पुरुष को सोचने के लिए विवश करता है कि ऐसी क्या जादू की छड़ी स्त्री के पास है कि बीते दिन की थकान भूल कर रोज़ के कामों में रम जाती है, जब कि पुरुष इस उपक्रम को चाहकर भी अपना नहीं पाता। एक समय में चार कामों का करने की आदत स्त्री में होती है, किचन के छोटे-छोटे कामों के साथ दुनिया की ख़बरें और अन्य बातों का ध्यान भी रख लेती है, तो पुरुष का आश्चर्य में पड़ना स्वाभाविक है कि इतना सब कैसे कर लेती हो। परिवार में स्त्री के महत्त्व को स्वीकारते हुए कविताएँ बहुत बढ़िया हैं, एक झलक प्रस्तुत है- यह परिभाषा फिर किस युग में तय की गई / कि घर का अर्थ तुम हो, / और तुम्हारा अर्थ घर है, / तुम्हारा जीवन, जीवन है / 'वाया डोलोरोसा' नहीं है, / जहाँ घर को सलीब की तरह / कंधों पर उठाये चलना है तुम्हें / जीवन भर, / ऐ स्त्री....! / तुम ईसा नहीं हो / इंसान हो।

संग्रह का दूसरा भाग 'प्रकृति'। बदलते मौसम में प्रकृति अपना रूप बदलती है और मनुष्य भी मौसम के अनुरूप कपड़े रखता है। गर्म कपड़े रखकर गर्मियों के कपड़े इस आशा में निकालता है कि सर्दी में पहनेंगे लेकिन कभी-कभी व्यक्ति बीत जाता है और कपड़े यहीं रह जाते हैं। कल का किसी को पूर्वाभास नहीं होता है, मार्मिक शब्द चित्र देखिए- अगला मौसम कभी-कभी / आकर भी नहीं आता, / वस्तुएँ रखी रहती है / मौसम बना रहता है / किंतु / इंसान बीत चुका होता है।

प्रकृति का दोहनकर विकास के नाम पर हरियाली का नष्ट होना बहुत ही दुखद पहलू है व्यक्ति जब सीमा लाँघ लेता है तो प्रकृति अपना रोष दिखलाकर स्वयं विकास को रोक देती है। उत्तराखंड में अक्सर ही ऐसे हालात देखने को मिलते हैं। आज के परिवेश पर कटाक्ष करते हुए कवि की यह पंक्तियाँ बहुत ही सामयिक हैं- इस सदी को कहा जाएगा / हत्यारी सदी / बच्चों की निश्चल हँसी / और निष्कपट प्रकृति / इन दोनों की हत्यारी सदी।

तीसरा विषय है 'प्रेम'। प्रेम का विस्तार अनंत है जो इकाई से आरंभ होकर अनंत की ओर जाता है। जीवन में विस्मय ज़रूरी है जो आह्लादित करता है, जिस प्रकार नमक के बिना भोजन स्वादहीन है, उसी प्रकार इसमें भी जीवन के आनंद के लिए ज़रूरी है। पहली मुलाक़ात कितनी यादगार होती है कि एक-एक पल चित्रित हो जाता है आँखों के सामने, लेकिन यह भी कितने आश्चर्य की बात है कि सब कुछ देखकर, उनका नज़र भर नज़र पाने का संकेत और पायल चूड़ी की खनक की याद है। कवि का मानना है कि प्रेम व्यक्ति से नहीं होता बल्कि उस व्यक्ति से जुड़ी अतीत की घटनाओं से होता है लेकिन अगले ही क्षण ऐसे भाव मन में आते हैं- फ्लैशबैक कहानियों में होते हैं / जीवन में नहीं, / जीवन तो निरंतर आगे की तरफ़ / घटते रहने वाली घटना है, / प्रेम स्थिर कर देना चाहता है / समय को / किसी विशेष कालखंड में- रिकॉर्ड पर अटकी हुई सुई की तरह, / लेकिन ऐसा नहीं होता / घटनाएँ बदलती जाती हैं / स्मृतियों में, / और प्रेम बदलता जाता है / अवसाद में.....।

संग्रह की शीर्षक कविता 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' में गहरे अर्थ समाहित हैं जब तक उम्मीद रहती है तब तक जीवन में सकारात्मकता बनी रहती है, उम्मीद पूरी न होने का दुख महत्त्वपूर्ण भी है बल्कि उम्मीद को बचाए रखना ज़्यादा संतुष्टि देता है कहा भी गया है की उम्मीद पर दुनिया क़ायम है। प्रेम वह होता है / जो बहुत गहरे में घटता है / ग़ालिब और ख़ुसरो ने / इसी कारण कहा था- डूबने के लिए।

कई तरह की कविताएँ इस भाग में हैं एक और भाव देखिए- दूसरे की रोशनी / दूसरे की ख़ुशी / दूसरे के ताप / दूसरे के सुख में / जो अपने को चमका ले / वही प्रेम होता है

'युद्ध के समय में' कविता आज के सन्दर्भ में बहुत ही उपयुक्त हैं- युद्ध के समय में / अवश्य करना चाहिए प्रेम / युद्ध के बाद के समय के लिए बचाकर रखना चाहिए- एक संभावना / एक उम्मीद / एक अंकुर

चौथा भाग है 'प्रारूप'। इसमें नानी की यादों को बहुत भावपूर्ण तरीक़े से व्यक्त किया गया है नानी की याददाश्त और बच्चों के प्रति प्यार की अभिव्यक्ति बहुत सुंदर बन पड़ी है। बच्चे कभी अपनी नानी से बोलते नहीं है और पिता के जाने के बाद कितना सन्नाटा घर में पसर जाता है, विश्वास ही नहीं होता कि पिता अब नहीं रहे दुनिया में। अपनी महायात्रा के लिए पिता का प्रस्थान कवि को बहुत कष्ट देता है, पिता को अपनी मौत का पूर्वाभास हो जाता है इसका शब्द चित्र देखिए- पर उस रात आपने नहीं पुकारा, / एकदम चुप कर सो गए, / जैसे युगों की थकान / बसी हो शरीर में, / तीन दिन बीत गए / मैं आज भी इंतज़ार में हूँ / आपके पुकारने के...

पिता अपने जाने का दुख बेटे के चेहरे पर नहीं देखना चाहता कितनी मार्मिक हैं यह पंक्तियाँ। पिता के अकेलेपन को बेटे महसूस करते तो हैं, बेटे अपनी व्यस्तता में से जब समय नहीं निकाल पाते तो पिता के जाने के बाद घर भी अकेलेपन का अनुभव करता है बेटे की तरह।

मन को छूने वाली मंथन करने के लिए ये कविताएँ विवश करती हैं। अपनी ग़लतियों को उत्तरार्ध में मानने का संकल्प लेते बेटे को जब समझ में आता है कि पिता से क्षमा माँगना चाहिए अपनी ग़लतियों के लिए, तब पिता महायात्रा पर चले जाते हैं, यह दुख कभी बेटे भूल नहीं पाते और पूछते हैं पिता को संबोधित करते हुए कि पिता तुम कब मिलोगे?

यह भी कैसी विसंगति है कि पिता अपनी दुनिया अपने परिवार के हर सदस्य में देखते हैं और उनको बाहर की दुनिया अर्थहीन लगती है, जब कि जिन सदस्यों के लिए उन्हें बाहर की दुनिया आकर्षक नहीं लगती, उन्हीं बच्चों की दुनिया बाहर ज़्यादा होती है, घर की दुनिया तो उनकी सिमटी रहती है।

चौथा खंड है 'प्रतिरोध'। इसमें प्रजातंत्र में व्याप्त विसंगतियाँ, आत्ममुग्धता और दोहरे मापदंड कवि को व्यथित करते हैं। संकेत के रूप में बहुत गहरे अर्थ इन कविताओं में निहित हैं। कवि यदि तानाशाह के आगे समर्पण कर दे तो यह कवि की हार है जो उसके कवि होने पर प्रश्न चिह्न लगाती है क्योंकि कवि में सत्य के प्रति दृढ़ता ज़रूरी है यह पंक्तियाँ देखिए- कवि ! / तुम कालीन कैसे बने ? / कब बिछे - / सत्ता की चरण - धूलि प्राप्त करने? / ऐसा कैसे हुआ / कि तुमने शब्दों को बना दिया / जूते साफ करने का कपड़ा? / और लगे रहे अनवरत

आजकल सुनी सुनाई बात को सत्य का प्रमाण मान लिया जाता है जबकि सत्य को घटते देखना ही सत्य का प्रमाण है। लेकिन जो देख रहा है वह चुप है और जो सुन रहा है वह बोलता ही जा रहा है। यह स्थितियाँ किसी भी प्रजातांत्रिक राष्ट्र के लिए घातक हैं, इस बात को बहुत ही सरल शब्दों में अभिव्यांजित किया गया है। आजकल चुप रहना सम्मान पाने की एक सीढ़ी है जिसे पाकर कवि गण ख़ुश होते हैं और आत्ममुग्धता में जीते हैं।

ऐसी स्थितियाँ देखकर लगता है ईश्वर भी ऐसे लोगों का साथ देता है स्थितियों के प्रति तटस्थ रहना भी बहुत बड़ा अपराध है। कुल मिलाकर पंकज सुबीर का पहला कविता संग्रह भावों और अभिव्यक्ति के स्तर पर बहुत समृद्ध है जो पाठकों के मन में हलचल की दस्तक देकर सोचने का दायरा विस्तृत करेगा।

000

संवेदना की कविताएँ

चारुमित्रा

कहते हैं, कवि के भीतर का मौन ही उसकी सबसे सशक्त आवाज़ होती है। पंकज सुबीर का नया कविता-संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' इस कथन को सत्य कर दिखाता है। पंकज सुबीर, जो कथाकार और उपन्यासकार के रूप में हिन्दी जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं, जब कविता की ओर मुड़ते हैं तो स्वाभाविक ही यह जिज्ञासा जन्म लेती है कि उनके भीतर का कवि किस रूप में प्रकट होगा? क्या वह जीवन की उदासी और नाउम्मीदियों के बीच कोई उजली किरण जगा पाएगा, या फिर वह हमारे भीतर ऐसी टीस छोड़ जाएगा, जो देर तक मन में गूँजती रहे?

संग्रह का शीर्षक 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' ही इस जिज्ञासा को और गहराता है। यह शीर्षक जैसे किसी ऐसे भावलोक को छू जाता है, जिससे हर मनुष्य कभी न कभी होकर गुज़रा है। लौटने की यह चाह- चाहे वह स्मृति की हो, अपनेपन की हो, या किसी बिछुड़े साये की- मनुष्य की सबसे गहरी आकांक्षाओं में से एक है।

संग्रह की पहली कविता 'अचानक' की पंक्तियाँ आपको ठहरने को विवश करती हैं- 'यूँ ही नहीं चला जाता है कोई / जैसे हम कह देते हैं कि वह तो अचानक ही चला गया / नहीं... / अचानक कुछ नहीं होता / कई दिनों से थोड़ा-थोड़ा घट रहा होता है यह 'अचानक'।' यह कविता मनुष्य के भीतर के उस मौन को उजागर करती है, जो शब्दों से अधिक गहरा होता है। पिता के चले जाने की यह पीड़ा केवल एक व्यक्ति की हानि नहीं, बल्कि जीवन की धुरी के डोल जाने का अनुभव है। पिता, चाहे वैचारिक मतभेदों में उलझे हों, पर उनका होना जीवन में स्थायी संबल की तरह रहता है। उनका जाना, जैसे किसी छाँव का हट जाना है- और इसी अनुपस्थिति से यह पूरी कृति जन्म लेती है।

अगली कविता 'अप्रैल' उस रिक्तता को और गहराई से छूती है- 'अप्रैल बहुत उदासी से भरा होता है / शायद यह उदासी / उन पत्तों के शोक से उपजती है / जो मार्च में विदा हो चुके होते हैं।' यहाँ कवि ने प्रकृति और मनुष्य के भावों को इस तरह गूँथा है कि ऋतु और मन, दोनों एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। उदासी यहाँ किसी मौसम का नहीं, बल्कि एक स्थिति का रूप ले लेती है।

'पचास पार की उम्र' कविता में कवि स्वयं को उस मोड़ पर पाता है जहाँ पिछली पीढ़ी का सहारा धीरे-धीरे छूट रहा है और अगली पीढ़ी हाथों से फिसलती जा रही है- 'हमेशा चिंता बनी रहती है / पूर्व की पीढ़ी किसी दिन अचानक थम जाएगी / और बाद की पीढ़ी किसी दिन / पहुँच के दायरे से बाहर निकल जाएगी / शेष रह जाएगी एक संक्रांति पीढ़ी।' यह कविता केवल उम्र का बोध नहीं कराती, बल्कि बदलते समय और संबंधों का गहरा आत्मविश्लेषण भी प्रस्तुत करती है।

'घर' कविता में कवि की उदासी अत्यंत

आत्मीय हो उठती है- 'हमें सबसे ज़्यादा उदास / हमारा घर ही करता है।' घर, जो कभी सबसे सुरक्षित ठिकाना था, अब स्मृतियों का संग्रहालय बन गया है। यह पंक्ति उस एकाकीपन की सटीक पहचान है, जो समय के साथ हर घर की दीवारों में बसने लगता है।

'जाने की उम्र' कविता में यह बिखराव और भी तीव्र हो जाता है- 'नहीं जाने की उम्र में भी / चले जाते हैं लोग, हम पीछे रह जाते हैं यह कहते हुए- / 'अभी उसके जाने की उम्र नहीं थी'।' यहाँ कवि मृत्यु की अनिवार्यता के आगे ठहरकर एक असहाय स्वीकारोक्ति करता है, जो किसी दर्शन से नहीं, बल्कि अनुभव से उपजती है।

'क्या बचा रहेगा' कविता में यही प्रश्न सामाजिक चेतना का रूप लेता है- 'अहंकार बचा रहेगा / या बची रहेगी विनम्रता? / करुणा बचेगी / या बची रहेगी क्रूरता?' यहाँ कवि मानवीय सभ्यता के भविष्य पर प्रश्न उठाता है- क्या मनुष्य के भीतर की संवेदना अब भी बची रहेगी?

संग्रह की शीर्षक कविता 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' इस कृति का हृदय है- 'इस बार जब लौटो / तो उम्मीद की तरह लौटना तुम / पृथ्वी पर अंतिम शेष हरितिमा को / जिस प्रकार उम्मीद होती है हर एक बादल से / प्रार्थनाओं में डूबी हुई सैनिकों की माँओं को / जिस प्रकार उम्मीद होती है युद्ध-विराम की हर घोषणा से।' इस कविता में 'उम्मीद' केवल एक शब्द नहीं, बल्कि जीवन का मूल तत्व बनकर उभरती है। यह कविता कहती है कि जब तक उम्मीद है, तब तक जीवन है। पृथ्वी की हरियाली, माँ की प्रार्थना, सैनिक की साँस, मनुष्य का विश्वास- सब कुछ उम्मीद की ही देन है। इसलिए कवि कहता है- अगर लौटो, तो व्यक्ति की तरह नहीं, उम्मीद की तरह लौटो- जो हर सूखे वृक्ष को हरियाली दे सके, हर माँ को सांत्वना दे सके, और हर बुझती साँस में जीवन का विश्वास जगा सके।

कवि केवल निजी वेदना तक सीमित नहीं रहता। 'गर्व कीजिए' जैसी कविताएँ समाज के ढोंग और विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य करती हैं- 'राजा की धज पर ग़ौर कीजिए / किस प्रकार एक-एक वस्त्र सज रहा है शरीर पर।' ये पंक्तियाँ कवि की सामाजिक दृष्टि और उसकी तीक्ष्ण संवेदना का प्रमाण हैं।

पूरे संग्रह का मूल भाव पिता के निधन से उपजी रिक्तता है। पिता यहाँ केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि मूल्य, अनुभव और दिशा का प्रतीक हैं। उनका जाना एक पीढ़ी का अंत है, पर उनकी स्मृति का लौटना- उम्मीद की तरह- हर अँधेरे में उजाला भर देता है। यह संग्रह शोक का नहीं, बल्कि उस निरंतरता का उत्सव है, जिसमें मनुष्य अपनी संतान के भीतर, अपने संस्कारों के रूप में जीवित रहता है।

समग्रत: 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' से गुज़रना एक आत्मानुभव से भरी यात्रा है। पंकज सुबीर अपनी सरल, पारदर्शी और जीवन-सुगंधित भाषा में गहरे भावों को इस सहजता से कहते हैं कि कविता सीधे हृदय को छू जाती है। वे किसी बड़े शोर में नहीं, बल्कि धीमे, भीतर उतरते स्वर में बोलते हैं- और यही उनकी सच्ची ताक़त है। यह काव्य-संग्रह हमें यह विश्वास दिलाता है कि उम्मीद कभी समाप्त नहीं होती- वह लौटती है, कभी पिता की स्मृति बनकर, कभी कविता के रूप में, और कभी हमारे भीतर एक नई संवेदना के रूप में।

000

24 कैरेट खरी कविताएँ

अशोक अंजुम

मेरा मानना है कि छांदस कविता जहाँ विराट् की अभिव्यक्ति का सहजता से निर्वहन करती है, तो वहीं मुक्तछंद कविता में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विषय, तथ्य समाहित रहते हैं। सो, छांदस- अछांदस कविताएँ- दोनों का ही महत्त्व है। 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' पंकज जी की कविताओं की नई किताब है। पंकज जी की नज़र से जो गुज़रा, योग्य हुआ, वही इस किताब की कविताओं में ढल गया। इन कविताओं की उत्पत्ति के बारे में पंकज जी कहते हैं कि ये पिताजी के देहावसान के बाद तीन-चार माह के अंतराल में रची गई कविताएँ हैं, यूँ कि जैसे भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ा हो उन दिनों। ... सिवाय 7-8 कविताओं के... बकौल कवि जो पुरानी हैं। यूँ ही होता है कभी-कभी.. लेखनी चलती नहीं, दौड़ती है; जैसे कि बुलेट ट्रेन हो... और अनगिनत भावों, विषयों को अभिव्यक्ति की राह पर चलकर जब मंज़िल मिलती है तो ख़ासा सुकून भी मिलता ही है।

बहरहाल, इस पुस्तक की कविताएँ सहजता से छोटे-छोटे विषयों पर बड़ी-बड़ी बात कह जाती हैं। जैसे पहली ही कविता 'अचानक' में पंकज जी कहते हैं- अचानक कुछ नहीं होता / कई दिनों से थोड़ा-थोड़ा / घट रहा होता है यह 'अचानक'। 'एक दिन' में वे कहते हैं कि जब एक दिन ऐसा आएगा कि कविताएँ नहीं लिखी जा रही होंगी - तो शायद जीवन की गति ही रुक जाएगी। और अंत में प्रार्थनाओं के अभाव में ईश्वर के अस्तित्व पर भी सवाल खड़ा हो जाएगा। 'धीरे-धीरे' में समय के मार्ग पर स्मृतियों के धुँधलाते चित्रों की मार्मिक अभिव्यक्ति है। जंग लगी चाबियों के गुच्छे प्राय: अधिकांश मध्यवर्गीय घरों में मिल ही जाते हैं, जो शायद ही कभी काम आते हों ... इस विषय पर बेहतरीन कविता पंकज जी के पास है। बहुत कुछ है इन कविताओं में- 'प्रवेश' के बाद 'प्रकृति' है- जिसमें महीनों के साथ मौसम के बदलाव हैं। प्रेम है, जिसमें- प्रेम के विभिन्न एंगल से उकेरे गए चित्र हैं। 'प्रारूप' में विशेष रूप से पिता का स्मरण है। और साथ ही इस खंड में सुधा ओम ढींगरा, गौतम राजऋषि, अशोक कुमार पांडेय, यतींद्र मिश्र, फातिमा, कृष्ण और शहरयार को कविताओं के केंद्र में रखकर स्वयं को अभिव्यक्त किया है। वैसे कहानी हो, उपन्यास हो, या फिर कविता.. 'शहरयार' को पंकज सुबीर ने पुत्र की तरह याद किया है।

भूमिका के रूप में पंकज सुबीर किताब का केवल एक पेज़ ख़र्च करते हैं, और उसमें इन कविताओं के बारे में लिखते हैं- 'मुझे नहीं पता कि ये कविताएँ भी हैं कि नहीं!'.... तो इन पंक्तियों को पढ़ने वालों को विश्वास दिलाते हुए मैं यही कहूँगा कि ये 24 कैरेट खरी कविताएँ हैं, और सचमुच ख़ूब भरी-पूरी, कवित्व से लबरेज़ कविताएँ हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

बीज और आकाश

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ममता सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

'बीज और आकाश' सुपरिचित कथाकार ममता सिंह का दूसरा उपन्यास है। इसके पूर्व इनका उपन्यास 'अलाव पर कोख' प्रकाशित हो चुका है। ममता सिंह के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती है। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। उपन्यास के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। ममता सिंह अपनी कथाओं के पात्रों के अंतस के तार-तार खोलकर सामने लाती हैं। इनकी कथा साहित्य में यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है।

ममता सिंह की लेखन प्रक्रिया समय के रैखिक प्रवाह को तोड़ती है। वे वर्तमान, अतीत और भविष्य के बीच लगातार आवाजाही करती हैं। यह सिर्फ़ तकनीकी शिल्प नहीं, बल्कि उनके कथ्य का मूल उपकरण है, समय के जरिए वे पात्रों के भीतर चल रहे द्वंद्व को उभारती हैं।

उनकी कहानियों का केंद्रीय स्वर 'राग-विराग' का है, संबंधों में आकर्षण भी है और दूरी भी। उनके पात्र न तो पूरी तरह पुराने मूल्यों को छोड़ पाते हैं, न ही नए समय को पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं। यही द्वंद्व उनकी कहानियों को भावनात्मक गहराई देता है। यादों की भूमिका उनकी रचनाओं में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतीत उनके यहाँ केवल स्मृति नहीं, बल्कि एक आश्रय-स्थल बन जाता है। जब पात्र वर्तमान की जटिलताओं और दबावों से टूटने लगते हैं, तो वे अतीत में लौटकर एक तरह की मानसिक शरण लेते हैं। लेकिन यह पलायन स्थायी समाधान नहीं होता, बल्कि उनके संघर्ष को और जटिल बना देता है। पुराने और नए मूल्यों के बीच टकराव उनकी कहानियों का एक स्थायी तत्व है। उनके पात्र आधुनिक समय में जी रहे हैं, लेकिन उनकी चेतना में परंपरागत नैतिकताएँ गहराई से जमी हुई हैं। इस कारण वे लगातार एक आंतरिक संघर्ष में फँसे रहते हैं। ममता सिंह की कथा-रचना मनोवैज्ञानिक जटिलताओं, समय की उलझनों और संबंधों के सूक्ष्म तनावों को केंद्र में रखती है। उनका साहित्य बाहरी घटनाओं से ज़्यादा भीतर की हलचलों का साहित्य है।

इस उपन्यास में कथाकार ने न केवल समकालीन समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक ढाँचे को छेड़ा है, बल्कि स्त्री स्वतंत्रता, संघर्ष, और शक्ति के विभिन्न पहलुओं को भी उजागर किया है। यह उपन्यास तीन स्त्रियों तन्वी, करिश्मा और मोनिका के जीवन- सफ़र का गहन और संवेदनशील आख्यान है, जिसमें उनकी जिजीविषा, आत्मबल और संघर्षशीलता प्रमुख स्वर के रूप में उभरती है। ये स्त्रियाँ केवल परिस्थितियों की शिकार नहीं हैं, बल्कि हर चुनौती के सामने डटकर खड़ी होने वाली सशक्त व्यक्तित्व हैं। जीवन के विभिन्न मोड़ों पर जब हालात उन्हें तोड़ने की कोशिश करते हैं, तब वे बिखरने के बजाय अपने भीतर छिपी शक्ति को पहचानती हैं और और भी दृढ़ होकर आगे बढ़ती हैं। यह कथा उनके बाहरी संघर्षों के साथ-साथ

उनके आंतरिक द्वंद्व, भावनात्मक उतार–चढ़ाव और आत्म-खोज की यात्रा को भी उजागर करती है। समाज की रूढ़ियाँ, पारिवारिक दबाव, व्यक्तिगत इच्छाएँ और सपनों के बीच संतुलन बनाने की जद्दोजहद, इन सबके बीच वे अपने अस्तित्व और अस्मिता को बनाए रखने की कोशिश करती हैं। यह उपन्यास आधुनिक समाज की एक जटिल सच्चाई को प्रभावी ढंग से सामने लाता है, जहाँ स्वास्थ्य सेवाएँ सेवा से ज़्यादा बाज़ार बनती जा रही हैं। अस्पताल का दृश्य, भीड़ में ख़ामोशी और हेल्थ पैकेज के विज्ञापन- ये सभी चित्र बहुत जीवंत और विचारोत्तेजक हैं। तन्वी का चरित्र मज़बूत, आत्मनिर्भर और संवेदनशील रूप में उभरता है। वहीं सागर के साथ उसका संबंध जीवन के अलग-अलग दृष्टिकोणों का टकराव दिखाता है- मातृत्व की चाह बनाम कॅरियर और महत्त्वाकांक्षा। आईवीएफ तकनीक का प्रयोग कहानी में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ के रूप में आता है, जो विज्ञान, नैतिकता और भावनाओं के संगम को दर्शाता है। यह उपन्यास समाज में स्त्री की पहचान को मातृत्व तक सीमित करने वाली सोच और भाषा में निहित लैंगिक भेदभाव को बहुत प्रभावी ढंग से उजागर करता है।

तन्वी आईवीएफ तकनीक से दो बच्चों की माँ बनती है। यह उपन्यास पारिवारिक ज़िम्मेदारियों में असमानता और भावनात्मक दूरी को स्पष्ट रूप से सामने लाता है। तन्वी का संघर्ष और सागर की उदासीनता प्रभावी ढंग से उभरती है, जिससे कहानी में यथार्थ और संवेदना दोनों गहराते हैं। तन्वी का पति एक मशीन बन चुका था।

राज और करिश्मा की कहानी समाज की रूढ़ियों, लैंगिक पहचान और परिवार के भीतर स्वीकृति जैसे संवेदनशील विषयों को उजागर करती है। इसमें एक बच्चे की जिज्ञासा और माँ की समझदारी के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि अलग होना ग़लत नहीं, बल्कि स्वाभाविक है।

विवेक और मोनिका की कथा रिश्तों में अस्थिरता और स्वार्थपूर्ण प्रेम को दर्शाती है। इसमें विवेक के बदलते भाव और अंत में लौट आने से यह संकेत मिलता है कि सच्चे संबंधों की अहमियत अक्सर देर से समझ आती है। आज का युवा पुरुष एक ऐसे संक्रमणकालीन मोड़ पर खड़ा है, जहाँ उसके भीतर परंपरा और आधुनिकता के स्वर एक साथ गूँजते हैं। वह न तो पूरी तरह से नवीन विचारधाराओं के साथ अपने को सामंजस्य बिठा पा रहा है, और न ही अपने संस्कारों की जड़ों से स्वयं को पृथक कर पा रहा है। परिणामस्वरूप, उसके मन में एक गहन द्वंद्व उत्पन्न हो गया है, एक ऐसा द्वंद्व, जो उसकी पहचान, उसकी संवेदनाओं और उसके संबंधों को निरंतर प्रभावित कर रहा है।

यह उपन्यास एक निरंतर गतिमान यात्रा का रूपक है, जिसमें तीन स्त्रियाँ सहयात्री के रूप में उपस्थित हैं। यह यात्रा न तो उनके पेशेवर जीवन की उपलब्धियों का आख्यान है और न ही किसी बाह्य सफलता की दास्तान; अपितु यह उनकी अंतर्निहित जिजीविषा का सजीव वृत्तांत है। इन तीनों स्त्रियों का पथ संघर्षों और मोड़ों से होकर गुज़रता है, किन्तु वे किसी भी क्षण विखंडित नहीं होतीं। परिस्थितियाँ उन्हें परखती अवश्य हैं, परंतु पराजित नहीं कर पातीं। उनके अंतर्मन में एक अटूट साहस और धैर्य का संबल विद्यमान है, जिसके सहारे वे प्रत्येक आने वाले क्षण का दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ सामना करती हैं। यह कथा उनके भीतर निहित उस अदम्य जीवट की अभिव्यक्ति है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी उन्हें थमने नहीं देता, बल्कि निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। इस प्रकार, यह उपन्यास बाह्य घटनाओं से अधिक उनके आंतरिक साहस, संघर्षशीलता और जीवन के प्रति अडिग विश्वास का साक्षी बन जाता है।

उपन्यास में जीवन की सच्चाइयों और आवश्यक जीवन-कौशलों को लेखिका ने समय-समय पर अत्यंत सहजता और स्वाभाविकता के साथ पिरोया है, जिससे कृति को एक गहरा दार्शनिक स्पर्श प्राप्त होता है। ये विचार न तो बोझिल उपदेश के रूप में आते हैं और न ही कथानक की गति को बाधित करते हैं, बल्कि कथा के साथ सहज रूप से प्रवाहित होते हुए पाठक को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करते हैं।

इस उपन्यास को पढ़ने के पूर्व पाठक ममता सिंह के उपन्यास 'अलाव पर कोख' ज़रूर पढ़ें। तभी यह उपन्यास 'बीज और आकाश' समझ पाएँगे। 'अलाव पर कोख' उपन्यास में आईवीएफ की प्रक्रिया, उसकी जटिलताएँ, शारीरिक-मानसिक दबाव और उससे जुड़ी उम्मीदें काफी विस्तार से सामने आती हैं, जिससे पाठक को इस तकनीक की वास्तविकता का बोध होता है। आईवीएफ केवल एक चिकित्सीय प्रक्रिया भर नहीं रह जाता, बल्कि वह स्त्री-जीवन के गहरे भावनात्मक, सामाजिक और संबंधात्मक पक्षों को उजागर करने का माध्यम बनता है। लेकिन उपन्यास का मूल केंद्र तकनीक नहीं, बल्कि उस स्त्री का आंतरिक संघर्ष है जो मातृत्व की तीव्र इच्छा से गुज़र रही है। एक बच्चे की चाह उसके जीवन को किस तरह प्रभावित करती है, उसकी आत्मछवि, उसका दांपत्य, पारिवारिक संबंध और सामाजिक स्थिति, ये सब परत-दर-परत खुलते हैं। उपन्यास यह भी दिखाता है कि मातृत्व की इच्छा केवल व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं रहती, बल्कि समाज और परिवार की अपेक्षाओं का बोझ भी उसमें शामिल हो जाता है। इस कारण नायिका का संघर्ष और जटिल हो जाता है। वह केवल जैविक असफलता से नहीं, बल्कि सामाजिक दबाव और भावनात्मक अकेलेपन से भी जूझती है।

ममता सिंह की कथाओं के पात्र विचित्र मानसिक संघर्षों से जूझते हैं, जो अत्यंत वास्तविक और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। ममता सिंह के पात्र अपने जीवन की जटिल परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि लेखिका उनसे केवल मानसिक नहीं, बल्कि गहरी रागात्मकता के साथ जुड़ती हैं। यही आत्मीय जुड़ाव उनके साहित्य को जीवंत और आत्मस्पर्शी बनाता है। ममता सिंह एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई की पात्र हैं।

000

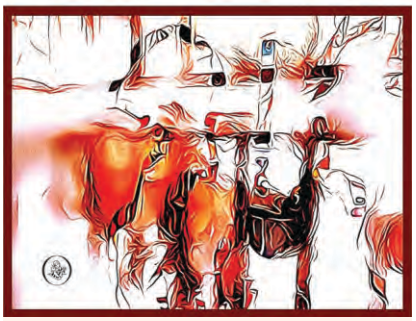

(आत्मकथा)

जब से आँख खुली है

समीक्षक : मोहन कुमार डहेरिया

लेखक : लीलाधर मंडलोई

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

मोहन कुमार डहेरिया
नई पहाड़े कालोनी, महाराजा टैंट हॉउस के पास, गुलाबरा, छिंदवाड़ा, ज़िला- छिंदवाड़ा, मप्र 480001
मोबाइल- 6268539927
ईमेल- mohankumardeheria@gmail.com

आत्म कथा की संस्कृति अब हिन्दी में नई नहीं है। इसकी एक शानदार परंपरा बन चुकी है। इसी क्रम में लीलाधर मंडलोई की आत्मकथा 'जबसे आँख खुली है' भी है, जिसमें उन्होंने इसी परंपरा को अपने मूल्यावान और मार्मिक स्मृतियों के सहारे न केवल बहुत आगे तक बढ़ाया है बल्कि इसे कुछ नए आयाम भी दिए हैं। इस आत्मकथा में कुल मिलाकर चौंसठ अध्याय हैं। हर अध्याय के प्रारंभ में लेखक ने कुछ काव्य पंक्तियाँ दी हैं। इससे आत्मकथा के शिल्प को एक नया तेवर, अलग तरह रचनात्मक गहराई मिली है। इस प्रयोग में पर्याप्त ख़तरा था कि ये काव्य पंक्तियाँ, उस किताब के शरीर पर थोपे गए थिगड़े की तरह लगें और किताब गद्य और पद्य का एक बेसुरा मेल बनकर रह जाए; लेकिन चूँकि घोर ग़रीबी के कारण लेखक अपने जीवन के स्कूली दिनों में कई-कई बार थिगड़े लगे कपड़े पहनने और वरिष्ठ सहपाठियों की पुरानी कटी-फ़टी जर्जर पन्नों वाली पुस्तकें पढ़कर भी अक्सर हर कक्षा में अव्वल नंबर पर आते रहे इसलिए थिगड़ों को अपनी वेशभूषा का गौरव और स्वाभाविकता देने की बचपन में सीखी गई यही स्वाभिमानी कला उनके इस आत्मकथा लेखन में भी काम आई। ये काव्य पंक्तियाँ किताब की आत्मा को सूत्र रूप में प्रतिबिम्बबित करती है और गद्य की ज़मीन पर रचना का आस्वाद लेते पाठकों की मानसिक एकाग्रता की लय को कहीं से भी भंग नहीं होने देती। वैसे भी लीलाधर मंडलोई के रचना संसार के जो पुराने, चौकन्ने पाठक हैं, वे जानते हैं, उनकी अधिकांश कविताओं की पृष्ठभूमि छिंदवाड़ा का कोयल खदान क्षेत्र ही है; इसलिए उनके गद्य और पद्य का नाभिकेंद्र एक ही है, जहाँ वे अपनी नौकरी से अवकाश मिलते ही अक्सर लौट-लौटकर यहाँ बिताये समय और बदलते जीवन यथार्थ से मुठभेड़ करते रहे हैं।

मुख्य रूप से यह लेखक की आत्मकथा है जिसमें उसके बाल मज़दूर के रूप में कोयला खदान में दगान में काम आने वाले मिट्टी के गट्टे, भरी दोपहरी में तपते बॉयलर की सफाई, होटल में कप-प्लेट धोने तथा अवैध दारू की बोतलें बेचने फिर पुलिस से पकड़े जाने पर पिटाई अत्यंत मार्मिक दृश्य हैं। कई अन्य पात्र भी हैं, जिसमें किसी के भी व्यक्तित्व के वज़न को लेखक ने हल्का नहीं होने दिया। इसमें असमय ही विधवा होकर अपने तीन छोटे-छोटे बच्चों के साथ घर आ जाने वाली बड़ी बहन के रूप में 'जीजी' है; जो परिवार के संघर्ष को कम करने के लिए सब्ज़ी-भाजी बेचती हुई गहरी समझदारी और साहस का परिचय देती है लेकिन जब ग़ुस्से में होती है तो जो उसके हाथ में आता है, उसी से छोटे भाइयों को पीटने लगती है और अंत में ख़ुद भी फफककर रोने लगती है। झुँझलाहट तथा क्रोध के दुर्गम शिखर पर पहुँचने के बाद अचानक लुढ़ककर एक अजीब सी यातना, हताशा और नैतिक अवसाद की भीषण खाई में गिरकर उसका रोना पाठकों को हिलाकर रख देता है। क्रोध और प्रायश्चित की धारा में साथ-साथ बहते, डूबते-उतराते भाई-बहन के साथ पाठक भी शामिल होकर रोने लगते हैं। भीषण ग़रीबी में जीते मनुष्य के मन की ये आकस्मिकता, यथार्थ और विडंबना का यह दुर्लभ मेल कमाल का है। जब किसी रचना के पात्र और पाठक साथ-साथ रोने लगे तो माना जाना चाहिए, लेखक ने अपनी रचनाधर्मिता के साथ पूरा न्याय कर दिया है।

इस आत्मकथा में कई पात्र हैं लेकिन सबसे विकट जुझारू चरित्र माँ है। पिता को तो अपनी ज़्यादा उम्र और दमे की बीमारी के कारण अक्सर 'सारी उम्र कमाओ, भटा भात न खाओ' का ही अफ़सोस बना रहता है लेकिन वह माँ ही है, जो विकट से विकट ख़राब आर्थिक परिस्थिति में भी कभी महुये के फल, बेर, जामुन, आम, कंद-मूल तथा आसपास के खेतों, दूसरों के घर की बाड़ियों से कोई न कोई मौसमी साग-सब्ज़ी की व्यवस्था कर किसी को भी कभी भूखा नहीं सोने देती है। चक्की में अनाज पीसती, दोनों हाथों को लयबद्ध ढंग से घूमाती, घोर ग़रीबी की कर्कश आवाज़ों में भी, काँसे के लोटे को सिक्के से बजाकर जीवन का आनंददायक संगीत गाती यह वही माँ है; जिसे दिन रात की हाड़तोड़ मेहनत के कारण अपने दाम्पत्य जीवन की मिठास कम होते चले जाने का भी अफ़सोस है, इसलिए वह सरौते से सुपारी की बारीक-बारीक कतरनें काटती हुई कहती है कि उसके 'बलम' उससे इतने रिसाए (नाराज़) हैं कि उसकी कतरी सुपारी

तक नहीं खा रहे हैं। इस आत्मकथा में प्रेम, क्रोध, क्षणिक ताने-उलहाने और मेहनत के पसीने से महकते, अनंत गहराइयों वाले प्रेम जल में डूबते-उतराते दाम्पत्य जीवन के ऐसे कई दृश्य है, जिनसे परिचित होने के लिए आज की यांत्रिक लैपऑपी युवा पीढ़ी को यह किताब ज़रूर पढ़ना चाहिए; ताकि उन्हें मालूम हो सके, पुराने समय में जीवन की वह कौन सी अमूल्य निधि थी, जिनसे वह अब महरूम हो चुकी है। इस आत्मकथा की माँ की तुलना रुसी क्रांति के दौर पर रचित गोर्की के उपन्यास 'माँ' की माँ, प्रेमचंद के 'गोदान' की 'धनिया' तथा महाश्वेता देवी के उपन्यास '1084 की माँ' की निरंकुश तथा भ्रष्ट पुलिस तंत्र से लड़ती माँ से की जा सकती है।

माँ के अलावा इस किताब में दद्दा, चोखे कक्का, मँझले भैया, हिरैया दादा, बालकराम, सुखई सेठ, लेखक के दोस्त तथा विभिन्न तरह के जीव-जंतु और परिंदों की दुनिया भी है। आगे जाकर इन्हीं विभिन्न रंगों वाले परिंदों से लेखक का रंगबोध विकसित हुआ, जिसकी परिणिती आज लीलाधर मंडलोई के एक समर्थ चित्रकार होने में भी है। स्पष्ट है, उनका रंग सफ़र, रंग सौंदर्य तथा रंग कर्म की प्रारंभिक ज़मीन सतपुड़ा का यह जंगल ही था। इस किताब में उन्होंने परिंदों, जीव-जंतुओं के रंगों की विस्तार से जानकारी दी है, जो शुरू में अच्छा लगता है लेकिन आगे जाकर कहीं-कहीं थोड़ा यांत्रिक, सूचनापरक और बोझिल सा भी हो गया है; हालाँकि रंगों की इस दुनिया को यहाँ उन्होंने एक अलग तरह की दार्शनिक दृष्टि से भी देखा है, जो इसे एक बड़ी मनुष्यता के पक्ष में सार्थक और संदेशनुमा भी बनाती है। यह आत्मकथा इकहरी या व्यक्ति वाचक दृष्टि से नहीं लिखी गई है। इसमें कोयला खान मज़दूरों के सुख-दु:ख, गीत संगीत, संघर्ष तथा उस दौर की मज़दूरों की यूनियनों की कार्य प्रणाली तथा हरामखोरी का भी ज़िक्र है।

इस आत्मकथा का एक अन्य पात्र विकलांग बच्चे के रूप में जन्मा- मुन्ना भी है। तुलनात्मक रूप से इसे आत्मकथा में कम जगह मिली है लेकिन अपने इस गूँगे भाई के साथ अपने त्रासद संबंधों का ज़िक्र लेखक ने बेहद संवेदनशीलता तथा ईमानदारी से किया है। यहाँ उस पर जान लुटाते परिवार के लोग हैं। लेकिन वर्षों उसके मल मूत्र से सने कपड़े साफ़ करते, उसकी पागलनुमा चीख-पुकार को झेलते-झेलते मन ही मन उससे छुटकारे पाने की सबकी कामना भी है। लेखक ने इस संबंध को कभी बेहद भावुकता से, तो कभी कठोर आत्मालोचन की दृष्टि से देखा है। लेकिन यही मुन्ना जब लेखक को हमेशा के लिए मुक्त करके परिंदे की तरह एक अनाम दिशा में उड़ जाता है तो लेखक उससे छुटकारा पाने के बाद एक नई तरह की क़ैद में शामिल हो जाता है। बाद के वर्षों में वह अंदर ही अंदर कई बार बिलख-बिलखकर रोता है। समय बीतने के साथ यह दु:ख कम और धूमिल हो जाता है लेकिन उस रुदन की अनुगूँज से वह कभी मुक्त नहीं हो पाता। अपनी ही आत्मा की अदालत में वर्षों से सिर झुकाए खड़ा लेखक शायद यह कहना चाहता है; अगर हमारी इस दुनिया में ऐसे और भी 'मुन्ने' हों तो उनसे गहरे धैर्य तथा अटूट सेवाभाव से जुड़ने की ज़रूरत है क्योंकि अगर प्रकृति की यह आधी-अधूरी मासूम निरापराध कलाकृति हमेशा के लिए चली गई, तो बड़ा से बड़ा कोई भी चित्रकार उन्हें जीवन के कैनवास पर दुबारा चित्रित नहीं कर सकता है।

लोकगीतों, मुहावरों और कहावतों के प्रचुर प्रयोग ने इस आत्मकथा को बेहद दिलचस्प, जीवंत और धारदार बना दिया है। लेखक कई जगह पाठकों को अपनी भाषा की ताक़त का अहसास करवाता चलता है। वह एक जगह कहता है- 'अमर घर चल' जैसे परम्परागत स्कूली पाठ कुलीन वर्ग के बच्चों के लिए उपयुक्त, प्रासंगिक हो सकते है लेकिन मज़दूरों के बच्चों के लिए तो 'अमर जंगल चल' जैसे पाठ ज़्यादा ज़रूरी है। इन बच्चों के लिए घर माने भूख, बरसात में टूटी-फूटी छत से टपकता पानी और भीषण ठंड। वहीं जंगल याने घूमना-फिरना, मौज-मस्ती और भूख का कोई न कोई पुख्ता इंतज़ाम। यहाँ लेखक न केवल सर्वहारा वर्ग के प्रति प्रतिबद्धता दिखाते हैं बल्कि शिक्षा के जीवन की ज़मीन से दूर खड़े होकर बनाए गए सभी परम्परागत पाठों, घिसी-पिसी शैक्षणिक उक्तियों को भी ज़मीन के बल सिर के बल उल्टा खड़ा कर देते हैं। मजदूर कालोनी और अफसर कॉलोनी के बच्चों के बीच खेली जाने वाली गेंद की बनाबट तथा उनके खेल मैदानों के बीच के फ़र्क़ को बताते हुए भी यही वर्गीय दृष्टि पूरी ताक़त से उभरती है।

यह आत्मकथा जहाँ अपने मार्मिक प्रसंगों से पाठकों को बार-बार उदास करती है, वहीं लेखक के बड़े भाई धन्ना लाल का ज़िक्र आने पर ख़ूब हँसाती भी है। यहाँ आम और महुये के पेड़ों के बीच की सुनसान सड़क पर फिल्म अभिनेता राजकपूर की जीवन और अभिनय शैली की नकल करते धन्नालाल और उन्हें छुपकर देखते मज़े लेते छोटे भाई लोग हैं लेकिन इसी धन्नालाल के अंदर का राजकपूर कोयला खदान में काम करते-करते अंत में उसी तरह गुम हो जाता है, जैसे राजकपूर के अंदर का राजकपूर चमक-दमक से भरे फिल्म उद्योग में गुम हो गया था और फ़िल्म 'मेरा नाम जोकर' के जोकर की तरह कभी ख़ुद को दुबारा पा नहीं सका।

यह आत्मकथा कालक्रम की दृष्टि से की एक सरल रेखा की तरह एक जैसे क़दमों से बढ़ते हुए नहीं दिखाई देती। न ही यह साहित्य की किसी विधा विशेष में लिखी गई है। डायरी, संस्मरण, रिपोतार्ज से लेकर निबंधनुमा चीज़ें भी इसमें है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे क़दमों वाली यात्रा के बीच में कुछ छलाँगें भी हैं लेकिन इससे पाठकों को ज़्यादा बड़े झटके नहीं लगते। कथानक की कसावट कहीं से भी ढीली होती दिखाई नहीं होती। अंत में छिंदवाड़ा के कोयला खदान क्षेत्र से निकलकर भोपाल के कालेज जीवन में पहुँचकर यह आत्मकथा समाप्त हो जाती है। वहाँ भी तंगहाली के दिनों में किराये के कमरे में मित्र के संग रहते हुए खाली पीपे से आटा झारकर लपसीनुमा खाद्य पदार्थ बनाने का लेखक का हुनर, लेखक के भविष्य के लौह इरादों तथा उनकी जिजीविषा को प्रकट कर देता है। उम्मीद है, पाठकों को इसके अगले भाग का बेचैनी से इंतज़ार रहेगा, मुझे तो है।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

साज़-बाज़

समीक्षक : डॉ. कुमारी उर्वशी

लेखक : प्रियंका ओम

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. कुमारी उर्वशी
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, रांची विमेंस कॉलेज, सर्कुलर रोड, रांची 834001, झारखंड
मोबाइल- 9955354365
ईमेल- urvashiashutosh@gmail.com

'साज़–बाज़' को केवल एक कथा-रचना कह देना उसके गहन स्वरूप के साथ अन्याय होगा; यह दरअसल मनुष्य के अंतरतम में निरंतर चलने वाली उन सूक्ष्म कंपनाओं का संवेदनशील अभिलेख है, जो अक्सर हमारे दैनिक शोर-शराबे में दबकर रह जाती हैं। यह उपन्यास जीवन के उस मौन प्रदेश में प्रवेश करता है जहाँ भावनाएँ शब्दों का सहारा नहीं लेतीं, बल्कि अनुभवों की अनुगूँज के रूप में उपस्थित होती हैं। प्रेम यहाँ किसी सजावटी या रूढ़ छवि का विस्तार नहीं, बल्कि एक जटिल और बहुस्तरीय अनुभूति है, जो अपने भीतर विरोधाभासों का समुच्चय समेटे हुए है। प्रियंका ओम इस जटिलता को रेखांकित करते हुए प्रेम को एक ऐसे भूगोल के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिसमें हर मोड़ पर अहं का उभार है, हर दिशा में स्मृतियों की छाया है, और हर क़दम पर पीड़ा तथा आत्म-स्वीकृति की अनिवार्य उपस्थिति है। यह वही भूमि है जहाँ मनुष्य अपने भीतर की दरारों से रू-ब-रू होता है और उन्हीं दरारों में अर्थ की नई रोशनी खोजने का प्रयास करता है। इस दृष्टि से यह रचना केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि गहन आत्मदर्शी और दार्शनिक भी बन जाती है, जो पाठक को उसके अपने अंत:संघर्षों से सामना करने के लिए प्रेरित करती है।

इस उपन्यास की एक उल्लेखनीय विशेषता इसकी संरचनात्मक सजगता है, जहाँ कथा केवल घटनाओं के क्रम में नहीं बहती, बल्कि मनोभावों के सूक्ष्म उतार-चढ़ाव के साथ विकसित होती है। भाषा यहाँ मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि संवेदना का विस्तार है-एक ऐसी भाषा जो संकेतों, विरामों और मौन के सहारे भी उतना ही कह जाती है जितना शब्दों के माध्यम से। यही कारण है कि 'साज़–बाज़' का पाठ एक अनुभव बन जाता है, जिसमें पाठक केवल कहानी नहीं पढ़ता, बल्कि उसे भीतर तक महसूस करता है। मनोवैज्ञानिक गहराई इस रचना का सबसे प्रखर पक्ष है; पात्रों के भीतर चलने वाले द्वंद्व को जिस सूक्ष्मता और ईमानदारी से उकेरा गया है, वह इसे समकालीन हिन्दी उपन्यासों की भीड़ में विशिष्ट बनाता है।

कथानक के केंद्र में स्थित देविका और शिवेन दो ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनकी बाहरी दुनिया भले ही सामान्य प्रतीत होती हो, किंतु भीतर वे अनेक स्तरों पर विखंडित और जूझते हुए मनुष्य हैं। उनके अतीत के अनुभव, विशेषकर वे क्षण जो स्मृति में पीड़ा के रूप में स्थिर हो गए हैं, उनके वर्तमान संबंधों की दिशा तय करते हैं। वे प्रेम की ओर बढ़ते हैं, पर हर बार अपने भीतर के अवरोधों से टकरा जाते हैं। इस प्रकार उनका संबंध किसी सहज, निर्बाध प्रवाह की तरह नहीं, बल्कि एक सतत संघर्ष के रूप में सामने आता है-एक ऐसा संघर्ष जिसमें आत्म की परतें बार-बार खुलती और पुन: सिमटती हैं। इस द्वंद्व में 'खोना' और 'पाना' एक-दूसरे के विपरीत नहीं रह जाते, बल्कि एक ही प्रक्रिया के दो अनिवार्य पक्ष बन जाते हैं।

देविका और शिवेन के बीच का प्रेम अपनी प्रकृति में अत्यंत जटिल है, क्योंकि यह केवल आकर्षण या अनुरक्ति का परिणाम नहीं, बल्कि उनके भीतर उपस्थित रिक्तताओं की प्रतिध्वनि भी है। वे एक-दूसरे में सहारा खोजते हैं, किंतु उसी प्रक्रिया में अपनी असुरक्षाओं का सामना भी करते हैं। प्रेम यहाँ किसी स्थिर भाव की तरह नहीं, बल्कि एक गतिशील अवस्था के रूप में उभरता है-जहाँ हर निकटता के साथ एक नई दूरी जन्म लेती है, और हर दूरी में पुन: निकट आने की आकांक्षा छिपी रहती है। इस अर्थ में उनका संबंध एक सतत संवाद है, जो शब्दों से अधिक मौन के स्तर पर घटित होता है।

उपन्यास में प्रेम को जिस रूप में परिभाषित किया गया है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह प्रेम न तो पूर्णत: सुकुमार है और न ही केवल विघटनकारी; बल्कि इसमें दोनों तत्वों का संतुलित सह-अस्तित्व है। यह मनुष्य को कमज़ोर भी बनाता है-क्योंकि वह अपने सबसे भीतरी, असुरक्षित हिस्सों को उजागर करता है-और साथ ही उसे एक अदृश्य शक्ति भी प्रदान करता है, जो उसे टूटने से बचाए रखती है। जब प्रेम चोट पहुँचाता है, तो वही भीतर एक ऐसा स्पर्श भी देता है, जो उस पीड़ा को सहने योग्य बना देता है। इस प्रकार प्रेम यहाँ एक विरोधाभासी किंतु सुसंगत अनुभव के रूप में सामने आता है, जो मनुष्य को विखंडित भी करता है और पुन: संयोजित भी।

इस समूची प्रक्रिया में जो तत्व सबसे अधिक उभरकर सामने आता है, वह है आत्म-स्वीकृति का प्रश्न। देविका और शिवेन का संघर्ष केवल एक-दूसरे से नहीं, बल्कि स्वयं से भी है। वे अपने भीतर के उन हिस्सों को स्वीकारने से कतराते हैं, जो उन्हें असहज बनाते हैं। किंतु जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है, यह स्पष्ट होता जाता है कि बिना इस आत्म-स्वीकृति के कोई भी संबंध पूर्ण नहीं हो सकता। प्रेम, अपने वास्तविक स्वरूप में, तभी संभव है जब मनुष्य अपने भीतर के अंधकार को पहचानने और उसे स्वीकारने का साहस जुटा सके। यही वह बिंदु है जहाँ यह उपन्यास अपनी भावनात्मक ऊँचाई को प्राप्त करता है।

'साज़–बाज़' एक ऐसे अनुभव की रचना करता है, जो पाठक को केवल बाहरी घटनाओं के स्तर पर नहीं, बल्कि उसकी अपनी भीतरी संवेदनाओं के स्तर पर भी प्रभावित करता है। यह उपन्यास हमें यह सोचने पर विवश करता है कि प्रेम वास्तव में क्या है-क्या वह केवल सुखद क्षणों का संकलन है, या फिर वह उन कठिन, असहज और पीड़ादायक अनुभवों का भी समावेश करता है, जो हमें भीतर से बदल देते हैं। प्रियंका ओम की यह रचना इसी प्रश्न को केंद्र में रखकर एक ऐसा साहित्यिक संसार रचती है, जो जितना निजी है, उतना ही सार्वभौमिक भी।

'देविका का चरित्र विशेष रूप से जटिल और बहुस्तरीय है। वह आधुनिकता, विद्रोह, स्त्रीवाद और व्यक्तिगत आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है, किंतु उसके भीतर एक गहरी असुरक्षा, एक अधूरापन भी है। वह प्रेम में 'पिता' की तलाश करती है- एक ऐसा सहारा, जो उसे भीतर से स्थिर कर सके। यह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति उसे बार-बार उलझनों में डालती है। उसका स्त्रीवाद भी कहीं-कहीं सतही प्रतीत होता है- जैसे वह उसे एक कवच की तरह ओढ़ती है, ताकि अपने भीतर के भय और कमज़ोरियों को छिपा सके। यही कारण है कि वह प्रेम और स्वतंत्रता के बीच एक पेंडुलम की तरह झूलती रहती है।

इसके विपरीत, शिवेन का चरित्र धैर्य, स्थिरता और आंतरिक गहराई का प्रतीक है। वह प्रेम को किसी त्वरित उपलब्धि की तरह नहीं, बल्कि एक साधना की तरह जीता है। उसका धैर्य ही उसे बार-बार देविका के पास लौटने को प्रेरित करता है। वह जानता है कि प्रेम में जीतना नहीं, बल्कि सम पर आना आवश्यक है-और यह सम तब तक संभव नहीं, जब तक अहं की दीवारें ध्वस्त न हों। शिवेन का यह धैर्य उपन्यास के नैतिक और भावनात्मक केंद्र को स्थिर करता है।

उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसका मनोवैज्ञानिक आयाम है। बाल्यावस्था में हुए यौन शोषण की स्मृतियाँ देविका और शिवेन दोनों के व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित करती हैं। यह केवल एक घटना नहीं, बल्कि उनके पूरे भावनात्मक तंत्र को आकार देने वाला तत्व है। उनके भीतर जो ज़िद, असुरक्षा और आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति है, वह इन्हीं अनुभवों से उपजती है। लेखक ने इस विषय को अत्यंत संवेदनशीलता और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है, बिना किसी सनसनीखेजता के। यह उपन्यास को केवल प्रेमकथा से आगे ले जाकर एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दस्तावेज़ बना देता है।

भाषा की दृष्टि से 'साज़–बाज़' अत्यंत समृद्ध और बहुरंगी है। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी और कहीं-कहीं स्वाहिली शब्दों का प्रयोग इसे एक वैश्विक और बहुसांस्कृतिक आयाम प्रदान करता है। यह भाषा कभी-कभी पाठक से अतिरिक्त सजगता की माँग करती है, किंतु इसी के माध्यम से रचना का सौंदर्य भी निर्मित होता है। प्रियंका ओम की भाषा संकेतों में बात करती है, सीधे कथन से अधिक वह भावों की आभा रचती है। उनके छोटे-छोटे संवाद 'पंच' की तरह पाठक के भीतर उतरते हैं-जैसे 'तुम मुझ में इतनी ज़्यादा हो कि मैं अब ख़ुद में कम बचा हूँ' या 'मौन के बाद टेलीपैथी इस दुनिया की सबसे सुंदर भाषा है।' ऐसे वाक्य केवल कथन नहीं, बल्कि अनुभव बन जाते हैं।

उपन्यास की संरचना भी उल्लेखनीय है। देविका की दिवंगत माँ का नैरेटर के रूप में उपस्थित होना इसे एक विशिष्ट आयाम देता है। यह केवल कथा-वाचन का उपकरण नहीं, बल्कि एक भावनात्मक सेतु है, जो अतीत और वर्तमान, जीवन और मृत्यु, स्मृति और यथार्थ के बीच संबंध स्थापित करता है। माँ की दृष्टि से देखी गई देविका की कहानी में एक करुणा, एक चिंता और एक आत्मीयता है, जो पाठक को गहराई से छूती है।

यह उपन्यास पाठक को केवल एक कहानी नहीं सुनाता, बल्कि उसे अपने भीतर झाँकने के लिए बाध्य करता है। यह प्रश्न उठाता है- क्या प्रेम वास्तव में इतना सरल है, जितना हम उसे समझते हैं? क्या हम अपने अहं, अपने अतीत और अपनी असुरक्षाओं से मुक्त हुए बिना किसी को सचमुच प्रेम कर सकते हैं?

इस रचना का सबसे बड़ा योगदान यही है कि यह प्रेम को एक 'भावना' से आगे ले जाकर एक 'प्रक्रिया' के रूप में प्रस्तुत करती है- एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमें धैर्य, समझ, आत्म-स्वीकृति और बराबरी अनिवार्य हैं। यह उपन्यास यह भी स्पष्ट करता है कि स्त्रीवाद और प्रेम परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं- यदि उन्हें सही अर्थों में समझा जाए। प्रेम किसी भी प्रकार की असमानता या अहंकार को स्वीकार नहीं करता; वह केवल समता की भूमि पर ही फलता-फूलता है।

'साज़-बाज़' अंतत: एक यात्रा है-देविका और शिवेन की, और उनके माध्यम से हर उस व्यक्ति की, जो प्रेम के रास्ते पर चलता है। यह यात्रा सरल नहीं, बल्कि काँटों, उलझनों और आत्म-संघर्षों से भरी है। किंतु इसी कठिनाई में इसकी सुंदरता भी निहित है। उपन्यास यह विश्वास जगाता है कि जहाँ सब कुछ टूटता हुआ प्रतीत होता है, वहीं से कुछ नया और बेहतर शुरू भी हो सकता है।

प्रियंका ओम का यह उपन्यास समकालीन हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है। यह केवल पढ़े जाने के लिए नहीं, बल्कि महसूस किए जाने के लिए लिखा गया है। 'साज़–बाज़' अपने पाठकों को भीतर से बदलने की क्षमता रखता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(निबंध संग्रह)

विचार और समय 2

समीक्षक : मधु संधु

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु
13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल, जी. टी. रोड, अमृतसर, 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610
ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

'

विचार और समय' भाग- 2 सुधा ओम ढींगरा के 'विभोम स्वर' पत्रिका के लिए 2020 से प्रकाशित 29 संपादकीय लेखों का संकलन है। इससे पहले उनके ग्यारह कहानी संग्रह, दो उपन्यास, चार काव्य पुस्तकें, एक निबंध संग्रह हिन्दी जगत् को मिल चुके हैं। सुधा ओम ढींगरा पंजाब प्रांत के जालंधर शहर से हैं और वर्षों से (नॉर्थ कैरोलाइना) अमेरिका में हैं।

हिन्दी जगत् की साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादकीय परिक्षेत्र की बात करें तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी सम्पादकीय लेखों का जनक कह सकते हैं। वे 'हरिश्चंद्र पत्रिका' और 'कविवचन सुधा' के संपादक थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के, प्रेमचंद 'हंस' के, महादेवी वर्मा 'चाँद' की, अज्ञेय 'प्रतीक' और 'नया प्रतीक' के सम्पादक रहे हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं के सारगर्भित, समय की चुनौतियों से जुड़े संपादकीय के लिये अमृतराय, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञानरंजन, राजेन्द्र यादव, संजय सहाय भी जाने जाते हैं।

यह ऑनलाइन पत्रिकाओं का समय है। पूर्णिमा वर्मन 'अनुभूति' और 'अभिव्यक्ति', सुमन कुमार घई 'साहित्यकुंज', तेजेन्द्र शर्मा 'पुरवाई', प्रीति अज्ञात 'हस्ताक्षर' का संपादकत्व करते हुये सटीक, परिष्कृत और प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं।

सुधा ओम ढींगरा के लेखन की शुरुआत पंजाब के जालंधर से निकलने वाले लोकप्रिय दैनिक समाचार पत्र 'पंजाब केसरी' से जुड़ी पत्रकारिता से ही हुई। मानती हैं कि उनका पहला प्यार पत्रकारिता ही रहा। वर्षों साहित्यिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के संपादकत्व के बाद संप्रति 'विभोम स्वर' की संपादक हैं। 'विचार और समय' की भूमिका में लिखती हैं- 'जो आवाज़ें विधाओं से परे होकर शोर मचाती रहती हैं, वे सम्पादकीय लेखों में सिमट कर शांत हो जाती हैं। सम्पादकीय लिखते समय मेरा पत्रकार रूप बड़ा प्रबल होता है। निष्पक्ष, तलवार की धार पर चलने वाला। न काहू से दोस्ती, न काहू से वैर।'

आत्म मुग्ध, आत्म केन्द्रित व्यक्ति की बात करते मानती हैं कि कला, साहित्य या राजनीति- हर क्षेत्र में मनुष्य अपने को अहं ब्रह्मास्मि मानने का अहंकार लिए है। अमेरिका में फैले रंगभेद और नस्लभेद और उसके मूल में समाये अहं की भी बात करती हैं।

महामारी कोरोना कोविड- 19 के बायोलॉजिकल युद्ध, आतंक, संत्रास, विध्वंस, आर्थिक संकट, बेरोज़गारी, अस्पताल, मृत्यु दर, मानसिक यंत्रणा, लॉकडाउन और दूरगामी प्रभाव तो अनेक सम्पादकीय लेखों में चर्चित ही है, जनवरी-मार्च 2021 के सम्पादकीय में महामारियों के वैश्विक विवरण का शोधात्मक उल्लेख भी मिलता है।

उनका चिंतन वैश्विक चिंताओं से जुड़ा है। नासा की, बैटरी और स्वचालित कारों की, ऑनलाइन कार्य प्रणाली और पढ़ाई की, पर्यावरण की खेतीबाड़ी में आए नवाचार की, समूचे विश्व पर मँडरा रहे युद्ध के बादलों की, टैरिफ बढ़ने की- हर समस्या पर सुधा जी गहराई से विचार करती हैं- 'टैरिफ़ बढ़ा देने से नुकसान अमेरिका का ही होगा। अन्य देश तो आत्मनिर्भर हो जाएँगे। उन्हें टैरिफ़ बढ़ने से यह ज़रूर महसूस हो गया होगा कि सिर्फ अमेरिका को ही अपनी मंडी बनाना अब लाभकारी नहीं। अन्य देशों से भी अच्छे संबंध बनाकर उन देशों में अपनी चीज़ें बेचें।'

रूस-यूक्रेन, ईरान-इज़राइल-अमेरिका- गाज़ा-फिलिस्टाइन के युद्धों और विध्वंस ने विश्व

को जो असुरक्षा और नकारात्मता दी है, जिस राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक तनाव में वृद्धि की है, उसका ज़िक्र करती लिखती हैं- 'अमेरिका तो जन्म से ही दादा है, उसकी दादागिरी तो विश्व प्रसिद्ध है। वह हर छोटे-बड़े देश को सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर उन देशों को अपने पाँव तले रखने की कोशिश करता है।' कैलिफोर्निया की आग में झुलसे लोग, यूक्रेन में मर रहे मासूम बच्चे और स्त्रियाँ, गाज़ा के बेघर लोग, बांग्ला देश के पीड़ित हिंदुओं- उनकी लेखनी सब के प्रति अतिरिक्त संवेदनशील है। मानती हैं कि मणिपुर हो या पेरिस- सर्वत्र यही स्थिति है।

राजनीति में समाई त्रासदियों का उल्लेख करते देखती हैं कि आज भी विश्व में सामंत काल की तरह जिस की लाठी उसकी भैंस का वर्चस्व है, क़ानून की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। नेता पार्टी के प्रति वफ़ादार हैं, देश या समाज के प्रति नहीं। 'नए बेघर लोग' में कहती हैं कि आज समाज की पहचान उच्च, मध्य, निम्न वर्ग और जातिवाद के पैमाने पर हो रही है। एक ओर धर्मांध कट्टरपंथी हैं, दूसरी ओर ब्रेन वॉश किए हुये वामपंथी, तीसरी ओर राजनीतिज्ञों के वोटबैंक द्वारा ख़रीदे गए मुफ्तपंथी और चौथी ओर शांति और मानवता की बात करने वाले उदारवादी। वोटों के ख़रीददार जनता को आलसी और कामचोर बना रहे हैं, राष्ट्रीय ध्वंस कर रहे हैं।

सामाजिक त्रासदियों की बात करते सुधा जी मानती हैं कि सामाजिक त्रासदियों में सबसे दयनीय स्त्री की स्थिति है। समाज की अवधारणाएँ, झूठी मान-मर्यादा, पुरुष की हिंसक वृति; उच्च शिक्षित, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्वावलंबी स्त्री को भी सामान्य सम्मानित जीवन नहीं दे पाती। 'किसी मर्द का हाथ उठने से पहले' में लिखती हैं- 'अमेरिका में हर वर्ष 5,58,000 घरेलू औरतें हिंसा का शिकार होती हैं। जिनमें से 3,29,000 हाई स्कूल से भागी हुई होती हैं यानी अमेरिका के आँकड़ों के अनुसार अशिक्षित। पूरी दुनिया में औरतें प्रताड़ित होती हैं, चाहे वे विकसित देश की हों या विकासशील देश की।'

'अमेरिका में हिन्दी की दशा और शिक्षण' में सुधा जी अमेरिका में हिन्दी की विडम्बना और स्थापना की बात करती हैं। विडम्बना यह है कि पहचान और स्थापना, संघर्ष और अस्तित्व में जुटे प्रवासी भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति को भूल रहे थे और सकारात्मकता यह है कि मंदिरों और विश्वविद्यालयों ने, सिनेमा- टेलिविजन-रेडियो ने, सोशल मीडिया और अंतर्जाल ने, नाटकों और साहित्यिक संगोष्ठियों ने प्रवासी भारतीयों को अपनी भाषा और संस्कृति की ओर उन्मुख कर दिया। जबकि सबसे बड़ी त्रासदी और विडम्बना यह है कि अपने ही देश भारत के स्कूलों में हिन्दी को नंबर दो पर रखा जाता है।

इन सम्पादकीय लेखों में सोशल मीडिया का बार-बार ज़िक्र आता है। सोशल मीडिया का मंच समाज को सकारात्मकता भी दे रहा है और इसका दुरुपयोग चिंता का विषय भी है। यह व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ भी रहा है, परिवार से तोड़ भी रहा है, और नित्य नई भ्रांतियों, झूठ और अफवाहों को भी जन्म दे रहा है। यह ज्ञानवर्द्धक भी है और हर पल अवसाद को डिप्रेशन का आह्वान भी कर रहा है। समाचारों में बढ़ रही नकारात्मकता व्यक्ति को अवसाद की ओर ले जा रही है। मानवतावाद से विमुख कर रही है। रचनात्मकता, सृजनात्मकता, सकारात्मकता के संदर्भ में वे मेडिकल क्रांति, आधुनिक उपकरणों से सिंचाई में क्रांति, बौद्धिक क्रांति, तकनीक और संचार जगत् की क्रांति की बात भी करती हैं।

चिंता यह भी है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहीं मनुष्य की मौलिकता और बुद्धिमत्ता का ही हरण न कर ले- 'जिस तरह अंर्तजाल के आने से डायरियाँ और चिट्ठियाँ गुम हो गई, उनके साथ ही सरल-तरल भावनाएँ, अभिव्यक्तियाँ, संवेगों से भीगे शब्द, आँखों से टपके आँसुओं से धुँधलाए शब्द, डायरियों में पड़े सूखे फूल भी अंर्तजाल के जाल में उलझ कर रह गए।'

सुधा जी के सम्पादकीय व्यंग्य की पैनी धार लिए रहते हैं- 'सभी देशों में सिर्फ उदारवादी वर्ग ही ऐसा वर्ग है, जिसकी सोच और विवेक के लिए कोई प्लेटफॉर्म या भूमि नहीं। आज के युग में ये नए बेघर लोग हैं, जिन्होंने मानवता और प्रेम को ज़िंदा रखा हुआ है।' कथात्मकता इन संपादकियों की गुणवत्ता बढ़ा देती है। यहाँ वे अनेक लोगों के उदाहरण भी देती हैं और कहानियों, उद्धरणों, किवंदत्तियों, काव्य पंक्तियों की सहायता से अपने कथन की पुष्टि करती हैं।

उनके सम्पादकीय वर्तमान की दशा और दिशा पर टिके हैं। समसामयिक महत्त्वपूर्ण ज्वलंत विषयों, घटनाओं, समस्याओं पर केन्द्रित हैं। वे पक्ष-विपक्ष दोनों पर गहराई से विचार करती हैं। आँकड़े, तार्किकता, दृष्टिकोण, विचार, विश्लेषण, स्पष्टीकरण, सटीकता, शोध, उनकी एप्रोच को आधिकारिक और प्रभावशाली बनाते हैं, पाठक को झिंझोड़ते और जागरूक करते हैं। कहानियों, उद्धरणों, किंवदंतियों, काव्य पंक्तियों से वे सम्पादकीय में अतिरिक्त रस घोल देती हैं। भाषा सरल, परिष्कृत, प्रभावशाली और गंभीर है। इन सम्पादकीय लेखों में एक वैश्विक अर्थ शास्त्री का चिंतन, समाजशास्त्री की सोच, राजनीति विशेषज्ञ के अंदेशे, पर्यावरण विद् की चिंताएँ, साहित्यकार का संवेदन, इतिहासकार के विवरण और निष्कर्ष हैं। लेखिका के अन्तर्मन में समाया अर्थशास्त्री कहता है कि युद्ध केवल टैंक, मिसाइल, जेट बेचने का, व्यापार-वाणिज्य का साधन है। राजनीति विशेषज्ञ कुछ देशों की दादागिरी की बात करता है। प्रजातन्त्र वोटों की ख़रीद- फ़रोख़्त से आ जुड़ा है। इतिहासकार दो विश्वयुद्धों, महाभारत युद्ध के आँकड़े प्रस्तुत कर मानव को जागृत करना चाहता है।

एक बात और, विश्व में अनेकों प्रकार के पुरस्कार है, लेकिन सम्पादकीय साहस और उत्कृष्टता के लिए शायद कोई भी नहीं। हाँ ! पत्रकारिता के लिए अवश्य पुलित्ज़र या दो-एक दूसरे पुरस्कार हैं।

सुधा ओम ढींगरा, विचार और समय, भाग-2, शिवना, सीहोर एम. पी., 2026, पृष्ठ 7, वही, पृष्ठ 87, वही, पृष्ठ 81, वही, पृष्ठ 101, वही, पृष्ठ 63, वही, पृष्ठ 10

000

पुस्तक समीक्षा

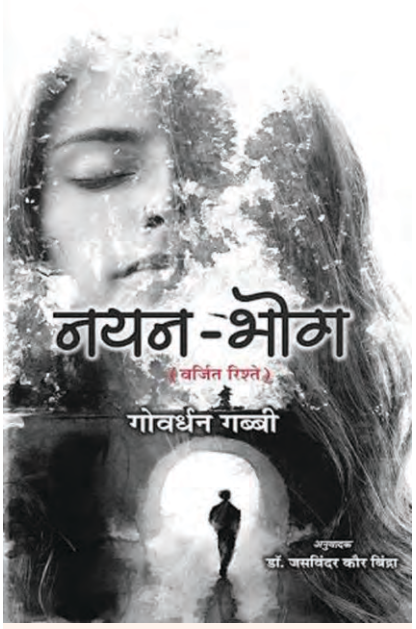

(कहानी संग्रह)

नयनभोग

समीक्षक : सीमा गुप्ता
लेखक : गोवर्धन गब्बी
अनुवाद : जसविन्दर कौर बिन्द्रा
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

सीमा गुप्ता
76, हरमिलाप नगर, फ़ेज़ 1, एस ए एस नगर (मोहाली), बलटाना, 140604, पंजाब
मोबाइल- 7988916255
ईमेल- seemagupta0370@gmail.com

गोवर्धन गब्बी की पुस्तक नयनभोग (वर्जित रिश्ते) में शामिल ये कहानियाँ समाज में ही पनपी या समाज की ही देन हैं। 'स्त्री कोई वस्तु नहीं कि उसे दाँव पर लगाया जाए या किए गए प्रेम का मोल लगाया जाए', पहली कहानी नयनभोग का शीर्षक अपने आपको बयान करने में पूरी तरह सक्षम है, सार्थक है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है जहाँ स्त्रियों को बोलने, पहनने, रहने-सहने की सोच उधार मिलती रही है। जिन स्त्रियों ने इस सबसे पार जानना चाहा उन्हें बहुत से लांछनों या ग़लत संबोधनों से नवाज़ा गया। आज इक्कीसवीं सदी में भी समाज की रूढ़िवादी सोच में बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं आया है। जब मैंने इस कहानी को अपने दृष्टिकोण से देखा तो अर्थ थोड़े और तीक्ष्ण हुए। मुख्य पात्र चाचा का भोगवादी होना स्त्री को केवल भोग की वस्तु ही मानना है। उसकी देह की ख़रीद-फरोख़्त, मनोरंजन या निज सुख और आनंद का साधन माना। स्त्री को उपभोग की तरह देखने का इस क़दर आदी हो चुका था किरदार कि एक बार स्वयं को ही ऐसी स्थिति में देखना पड़ा, जहाँ सुबह जाते वक़्त वह तकिये के नीचे कुछ नोट रख गई। सच जानिए मुझे यह पढ़कर और सोचकर बहुत मज़ा आया, काश किरदार चाचा को उस वक़्त यह अंदाज़ा लग गया होता कि बिकाऊ होना या मजबूर होकर बिकने का एहसास कितना दर्दनाक होता है। लेकिन जो तन लागे सो तन जाने। कुछ अहसास केवल स्त्री होकर ही महसूस किए जा सकते हैं। यह जीवन एक युद्ध है जो निरंतर चलता रहता है और एक स्त्री के लिए और भी ख़तरनाक हो जाता है क्योंकि उसकी एक लड़ाई चारदीवारी के भीतर होती है दूसरी बाहर समाज में हर कहीं। उसे सर्वाइवल के लिए अपने आपको ज़िंदा बचाए रखने के लिए बहुत जद्दोजहद करनी पड़ती है। इस कहानी की स्त्री पात्र जिसे नाम दिया गया 'महाजनी', पितृसत्तात्मक समाज की ही सतायी हुई या बनाई गई। एक अध्यापिका होकर बाज़ार में उतर जाना मुझे अखरा है लेकिन ये कहानीकार की मर्ज़ी है वह अपने किरदारों को कहाँ कैसे देखना चाहता है। यह कहानी समाज के दोहरे मापदंड को उजागर करती है। पुरुष के लिए सब सामान्य,जायज़ है और स्त्री के सर केवल दोष। इस कहानी में स्त्री मन की पीड़ा को सीधे न कहकर अपरोक्ष रूप से कहती है। यह कहानी बताती है जताती है कि हम आज भी स्त्रियों को सुरक्षित, सहज सही वातावरण नहीं दे पाए हैं। इसमें बख़ूबी बयान किया गया कि किस तरह एक स्त्री मानसिक और शारीरिक शोषण से बच निकल अपने अस्तित्व को बचाने में कामयाब रहती है। यह कहानी गहरी सामाजिक, मनोवैज्ञानिक परतों को उजागर करती है। संदेश बहुत अच्छा जाता है कि भोग और स्वार्थ से केवल धोखा और पछतावा ही शेष बचता है। गोवर्धन गब्बी ने अपनी कहानियों में महिलाओं के साथ होते अन्याय, शोषण कार्यस्थलों, सार्वजनिक स्थानों या घर की दहलीज़ के भीतर को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से बयान कर स्त्री मन को पढ़ने और समझने की बहुत अच्छी कोशिश की है।

'पहेली' कहानी में नायिका अपनी इच्छाओं, ज़िम्मेदारियों के बीच भावनात्मक और मन से जुड़े रिश्ते के सुख को लेकर कैसे अपराधबोध से घिरी रह हर वक़्त स्वयं को स्वयं के तराज़ू में तौलती रहती है। आत्मग्लानि या अपराधबोध स्त्रियों के मन के लिए ही बने शब्द हैं जैसे। पुरुषों में ये विचार होते होंगे नहीं जानती वे ख़ुद को जज करते होंगे यह पितृसत्तात्मक समाज में थोड़ा मुश्किल सा लगता है। गोवर्धन गब्बी की कहानियाँ हर उस स्त्री के मन की बात कहती हैं जहाँ वे मन, समाज और रिश्तों के बीच इच्छा या अनिच्छा से फँसी रहती हैं।

'शताब्दी' कहानी में मैं ही नहीं सभी महिलाएँ ज़रूर अपने आपको देख पाएँगी। ट्रेन हो या बस सफ़र करना ही पड़ा है कभी न कभी। ऐसे अनुभव बहुत हुए जहाँ पुरुष सहयात्री के बात करने या बेसिरपैर की हरकतें करने के कारण सफ़र को बेहद कठिन, मानसिक प्रताड़ना के रूप में झेलना पड़ता है। वही सोच समाज की देखने को मिलती है कि ग़लत किसे कहा जाएगा, चुप रहे या शोर मचाए। यह केवल एक घटना नहीं, स्त्री को असहाय, कमज़ोर, स्वामित्व के नज़रिए से देखने से जुड़ा मुद्दा है। इस कहानी की ख़ूबसूरती भी यही है कि मुख्य पात्र अपने पूरे सफ़र में जिस रोमांच और रोमांस के स्वपन ले रहा था, उस पर स्त्री पात्र की जागरूकता,

समझदारी, मज़बूती ने जिस अंदाज़ में पानी डाला वह बहुत मज़ेदार रहा। गोवर्धन गब्बी ने अपनी इस कहानी में भी स्त्री की गरिमा, सशक्त सोच, समझदारी को संवादों के माध्यम से जीवंत कर सामने से देखने जैसा अनुभव दिया है। 'शताब्दी' कहानी का कथानक साधारण या रोज़मर्रा की परिस्थिति जैसा बेशक लगे लेकिन इसके पात्र, अनुभव महत्त्वपूर्ण विषयों को उठाते हैं। सभी पात्र मध्यमवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानी में स्टेशन, टिकट खिड़की, ट्रेन, भीड़ अन्य सहयात्रियों का सूक्ष्म चित्रण कहानी को रोचक और ईमानदार बनाता है। संवाद सरलता, सहजता से पाठक को अपने साथ बहा ले जाने में सफल हुए हैं। कुल मिलाकर यह कहानी भी अन्य कहानियों की तरह स्त्री के पक्ष में ही है, उसे और समृद्ध करती है।

कहानी नंबर दो में भ्रष्ट मानसिकता से ग्रसित पात्र जो हमेशा पद का दुरुपयोग चालाकी और अवसरवाद का प्रतीक है। अपनी कहानी स्वयं बताते हुए वह शर्मिंदा नहीं बल्कि गर्व से अपनी गंदी सोच को बताता है जो उसके नैतिक पतन की चरम सीमा है। यह कहानी भी समाज में आज भी हर जगह स्त्री के शोषण, उसकी स्थिति को बयान करती है। कहानी में कहीं-कहीं व्यंग्य के माध्यम से कटाक्ष भी झलकता है। नायक किस तरह की सोच के साथ पढ़ाई, नौकरी और रिश्तों को लेकर सोचता है और मानवीय मूल्यों व नैतिकता को दरकिनार कर कई बार अपनी बातों से पाठकों को असहज महसूस करवाता है। यह कहानी समाज के उस अँधेरे पक्ष को सामने ला खड़ा करती है जिसे देखते हम सब हैं बस बोल नहीं पाते और अनदेखा कर अपने काम में व्यस्त रहते हैं। सामाजिक संदर्भ में यह कहानी जो बताना चाहती है मेरे ख़्याल से बता पाने में सक्षम रही है।

सभी कहानियाँ हमारे आपके आसपास की कड़वी सच्चाई उजागर करती हैं। कहीं अधूरा इश्क़ वर्तमान और अतीत के रिश्तों को लेकर नैतिक द्वंद्व में उलझे मन हैं, तो संवेदनशील हृदय यथार्थ की परिस्थितियों को समझने की समझ भी रखता है। भ्रमजाल ऐसे ही पात्रों की एक सुंदर कहानी है जिनका जीवन अब अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार बदल चुका है। शीर्षक सार्थक है, विषय सुंदर है, सामाजिक बंधनों में बँधे चरित्र विवाह की सार्थकता को सही ढंग से बयान करने में सक्षम हैं। भाषा शैली सरल व प्रभावी रही है। कहीं-कहीं लम्बी ज़रूर महसूस हुई और कोई-कोई पात्र कमज़ोर भी लगा। मगर फिर भी भावनात्मक रूप से यह कहानी पाठक पर गहरी छाप छोड़ती है।

ऐसे ही एक और कहानी 'तीन तिक्का सात' मध्यमवर्गीय परिवार रिश्तों की जटिलता और बदलते परिवेश के साथ बदलती संवेदनाओं से किस तरह दो चार हो रहा है, आधुनिक तकनीक और सोशल मीडिया के कारण बदलती जीवनशैली संवादों को वास्तविक बना देती है। अतीत की मधुर स्मृतियाँ, वर्तमान का तनाव मेरे ख़्याल से मनुष्य जीवन की विडम्बना ही है जहाँ अतीत दुखदायी होकर भी हमेशा सुखद ही लगता है और वर्तमान बोझ महसूस होने लगता है। कहानी अच्छी है बस कहीं-कहीं दोहराव महसूस हुआ है और अंत कुछ और भी हो सकता था मगर कहानीकार कैसे अपने पात्रों को देखना चाहता है यह उसकी अपनी इच्छा होती है, तो यह भी अपनी जगह सही हो सकता है।

जसविंदर कौर जी ने बहुत ही सुंदर अनुवाद कर कहानी को मूल कहानी सा एहसास करवाया है। वे बधाई की पात्र हैं। अनुवादक के तौर पर डॉ. जसविंदर कौर बिंद्रा बहुत मज़बूत और सफल रही हैं, सशक्त अनुवाद सरल, रोचक रहा है।

इन कहानियों में क्या होना चाहिए, क्या सही है क्या ग़लत, ऐसा होता तो अच्छा होता या ऐसा कैसे होता है पाठक इन प्रश्नों में उलझ सकता है, कहीं-कहीं स्वयं को या किसी अन्य को महसूस कर सकता है। अवसरवादी, भोगवादी, अनैतिक सोच समाज में अक्सर व्यक्ति को अकेला और गहरे अवसाद में धकेल सकती है तो सृष्टि का आधार स्त्री के लिए घातक सिद्ध होती रही है और है। भावनात्मक, शारीरिक, मानसिक तौर पर महिलाओं को सुरक्षित वातावरण की आवश्यकता होती है, इसलिए नहीं कि वे कमज़ोर हैं, बल्कि इसलिए कि वे ही आधार हैं, वे ही धुरी हैं जिसके इर्द गिर्द सभी रिश्ते घूमते हैं और उनके आँचल में पनाह माँगते हैं। गोवर्धन गब्बी की कहानियों में संवाद शैली की प्रधानता ने कहानियों को रोचक बना, असहजता को भी सहज कर दिया। संवेदनशील मुद्दों पर मानवीय सोच किस प्रकार बदलती है, संबंध परिस्थिती अनुसार कैसा व्यवहार करते हैं समाज के आइने के तौर पर हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु जो सामने आए- आज भी असुरक्षित महसूस करना, रात नौ बजे के बाद निकलना तो डर महसूस करना। कहानियों ने बताया कि स्त्री को पुरुषों का व्यवहार जैसे ताड़ना, घूरना, भद्दे कमेंट या हरकतें महिलाओं को कितना असहज महसूस करवाते हैं अब ऐसे लोग समझ पाएँ काश। स्त्री को वस्तु या उपभोग की तरह लेना गहरा स्त्री विमर्श का मुद्दा है। इस बात को समझा गया कि स्त्री का अकेलापन, सुरक्षा, सम्मान और अस्तित्व जिस तरह दाँव पर लगते हैं पुरुष के नहीं। कहानीकार ने अपनी कहानियों में स्त्री को अपनी बात कहने और गरिमा की रक्षा का मौक़ा भी दिया जो सकारात्मक और सुंदर बात है। स्त्री के घर बाहर के संघर्ष हैं तो महिलाओं की सशक्तता और बदलाव की दिशा को भी दिखाया गया है। इन कहानियों से स्त्री जो सीख सकती है वह ये कि यह आत्मसम्मान की लड़ाई है। अपनी सीमा तय करनी चाहिए। संकोच हो तो साहस भी होना ही चाहिये। क्या बोलना चाहिए, कब बोलना चाहिए, अन्याय पर चुप नहीं रहना चाहिए। कहानियों में अगर स्त्री पीड़िता है तो आत्मविश्वासी और उम्मीद से भरी हुई भी है। पुरुष प्रधान समाज में एक पुरुष होकर स्त्री के अस्तित्व के संवेदनशील, मनोवैज्ञानिक पहलुओं को ध्यान में रखना और उसके आत्मसम्मान को बचा लेना ख़ासकर वर्जित रिश्तों की इन कहानियों में बड़ी बात है।

000

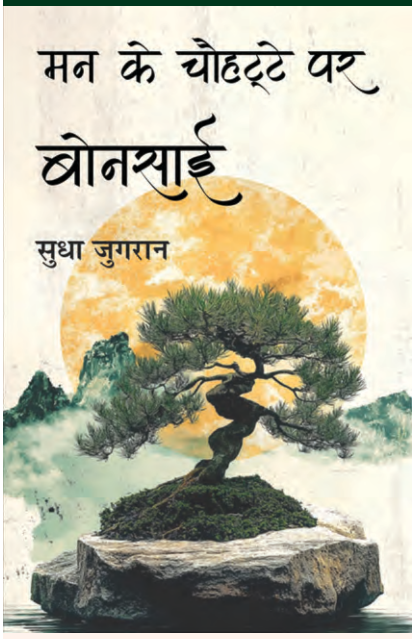

(उपन्यास)

मन के चौहट्टे पर बोनसाई

समीक्षक : सुधा आदेश

लेखक : सुधा जुगरान

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

सुधा आदेश
३०६,वाइसराय स्प्लेंडर अपार्टमेंट, १st क्रॉस रोड, कासावानाहल्ली, बंगलुरु, कर्नाटक -५६००३५
मोबाइल- 9415665941
ईमेल- sudhaadesh54@rediffmail.com

अनेक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त साहित्यिक एवं व्यावसायिक पत्रिकाओं में निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराती प्रतिष्ठित साहित्यकार सुधा जुगरान किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। इनके अभी तक 8 कहानी संग्रह, 1 समीक्षाओं की पुस्तक तथा 1 उपन्यास प्रकाशित हैं।

मन के चौहट्टे पर बोनसाई इनका नया उपन्यास है। अपनी बात में वह लिखती हैं कि पिछले बीसेक सालों में बहुत से परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। ज़ब से सोशल मीडिया ने मानव जीवन में मज़बूती से घुसपैठ की है तबसे जो गैप अभी तक मात्र विचार, शिक्षा व वेशभूषा तक सीमित था वह अंतराल अब पारिवारिक ढाँचे से लेकर सामाजिक चेतना, स्त्री-पुरुष समानता की बात करता हुआ, स्त्री-पुरुष के रिश्तों में संतुलित होता हुआ अब असंतुलित होता जा रहा है।

मध्यम वर्गीय और उच्च मध्यम वर्गीय स्त्री-पुरुष के बीच पनपे इसी सामाजिक असंतुलन को सुधा जी अपने उपन्यास 'मन के चौहट्टे पर बोनसाई' में उकेरने के साथ उसकी अच्छाई बुराइयों पर विश्लेषण करने का अधिकार युवाओं पर छोड़ दिया है। लेखिका स्वयं कुछ नहीं कहतीं पर संवादों के माध्यम से नई पीढ़ी की सोच को व्यक्त करती हैं। उपन्यास के कुछ संवाद आज की युवा पीढ़ी की मानसिकता ही नहीं दर्शाते, उनकी एकांगी सोच दिल को भी झकझोरती हैं। उदाहरणार्थ- घबराहट होती है मुझे शादी के नाम पर... शादी से पहले हर जगह स्पेस देने वाला पुरुष, पति के रूप में मालिक बन जाता है। बस इसी मालिकाना हक़ से घबराहट होती है।

-विवाह में कभी-कभी प्यार के लिए जगह नहीं होती। यह मात्र कर्त्तव्यों का समूह बन कर रह जाता है।

-प्रेम नैसर्गिक सत्य है और विवाह सामाजिक बंधन। प्यार एक ख़ुशनुमा बादल है और विवाह एक ज़िम्मेदारी। शारीरिक संबंधों के लिए एक ख़ूबसूरत लिबास।

-पति-पत्नी के रिश्ते में कोई किसी का मालिक क्यों बने।

-हमारे मस्तिष्क की कंडीशनिंग कुछ ऐसे कर दी जाती है कि कुछ बातें ग़लत लगते हुए भी ग़लत नहीं लगतीं।

कभी-कभी उनकी भाषा शैली चकित करती है ज़ब वह प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति की मानसिकता के साथ उसके दु:ख दर्द को उकेरती हैं। रिजुल के पति समन्वय के एक्सीडेंट में मृत्यु के समाचार को व्यक्त करते हुए लेखिका कहती हैं-इस भीषण दुर्घटना के बारे में सुनकर कमरे की दीवारें अभी भी काँप रही थीं। हवा थमकर कोने में ख़ामोश खड़ी उनका दु:ख साझा कर रही थी। संध्या घबराकर खिड़की से बाहर कूद गई थी। वक़्त की नजाकत देख अँधेरा धीरे-धीरे भीतर सरक आया था।

रियाना और अनुपम के बीच लिव इन रिलेशन पर समाज के मद्देनज़र वह कहती हैं- इक्कीसवीं सदी में भी दो वयस्कों के बीच पैठ बना गई इस प्रथा को लोग स्वीकार नहीं कर पाते हैं और जहाँ कुछ हद तक स्वीकार्य है, वहाँ मज़बूरी है।

आज के नौकरी में व्यस्त युवाओं के लिए लेखिका कहती हैं- उम्र सुबह शाम का लबादा ओढ़े हलके अँधेरे में साये के समान भागी जा रही है। फुर्सत का मन भावन पंछी दूर बिजली के तार पर बैठा उम्मीद से ताक रहा है। उसे दाना डालने की फुर्सत ही किसे है या कहें कि बुलाने

की इच्छा भी नहीं है।

उपन्यास का प्रारम्भ होता है सुनंदा समीर के बीच चल रहे तलाक़ के केस से। उनका एक आठ वर्षीय बेटा कियान भी है, जो उनके बीच चल रहे झगड़े के कारण बहुत अपसेट है। दोनों उसे बहुत चाहते हैं पर अपने स्वाभिमान की क़ीमत पर नहीं। सुनंदा और समीर की उहापोह के बीच उपन्यास की कहानी 11 वर्ष पीछे चली जाती है जब वे आठ मित्र सुनंदा- समीर सोमी- रोमिल रियाना-अनुपम, मेहुल और रिजुल आत्मविश्वास से भरे हुए अपने स्वप्नों में रंग भर रहे होते हैं। ये दोस्त तो हैं ही अपने मनपसंद साथी से जुड़ भी गए हैं। सोमी-रोमिल का प्रेम विवाह के साथ अरेंज मैरिज भी है। उनका वैवाहिक संबंध ठीक चल रहा है। विवाह के वर्षों पश्चात् भी रोमिल तथा सोमी के घर वालों के कहने पर भी सोमी बच्चा प्लान करने में डर रही थी क्योंकि उसे लगता था कि इससे उसकी आर्थिक स्वतंत्रता बाधित होगी, जो वह नहीं चाहती थी। वह शॉक्ड उस समय होती है ज़ब डॉक्टर कहती है कि हार्मोन्स के असंतुलन की वजह से एक उम्र के बाद बच्चा प्लान करने में ख़तरा है। सोमी तो निराश होती ही है। रोमिल भी मन मार कर रह जाता है क्योंकि बच्चे के लिए वह कोई ख़तरा मोल नहीं लेना चाहता।

सुनंदा समीर से विवाह करने के लिए नौकरी छोड़कर पूना आ गई थी किन्तु उसका व्यवहार समीर के घर वालों के साथ सभ्य व संतुलित नहीं था। वह उनसे कोई संपर्क नहीं रखना चाहती थी। लेखिका के शब्दों में एक लड़की किस प्रकार पूरे परिवार का वातावरण विषैला बना सकती है... समर के साथ पूरा परिवार इस बात को महसूस कर रहा था। बच्चा तो उसने प्लान कर लिया था। साथ में ट्रेंड आया भी, किन्तु ज़ब उसे पता चला कि बच्चा उसकी सासू माँ पाल रही हैं तो उसने नौकरी से ब्रेक लेने का फ़ैसला कर लिया क्योंकि उसे लगता था आया डॉक्टर के बताये अनुसार बच्चे की देखभाल करेगी जबकि मम्मी उसका पालन पोषण पुराने तरीक़े से कर रही हैं।

सुनंदा के ख़ाली रहने के कारण अब उसके विरोध के स्वर उठने लगे। आपस के तर्क-वितर्क अपनी गर्मी शयन कक्ष के बाहर छोड़ने लगे, जिससे घर का वातावरण असहज होने लगा। अब समर को अपने चुनाव पर अफ़सोस होने लगा। वह सोचने लगा कि उसे समझना चाहिए था कि सुनंदा जैसी मज़बूत व्यक्तित्व की स्त्रियाँ समझौता करने की परिभाषा नहीं जानती। यहाँ लेखिका ने सुनंदा के रूप में एक ऐसी स्त्री को चित्रित किया है जिसे विवाह-बंधन तो स्वीकार्य है किन्तु विवाह से बँधे रिश्ते नहीं।

रियाना को विवाह जैसी संस्था में विश्वास नहीं है। अत: वह और अनुपम लिव इन में रहते हैं। ज़ब उनके माता-पिता को इस बात का पता चलता है तो वे उनके इस तरह के संबंध को स्वीकार नहीं कर पाते। बच्चों को समझा न पाने की मन: स्थिति में वे मौन धारण कर लेते हैं। किन्तु फिर भी अनुपम और रियाना विवाह के पश्चात आए कर्त्तव्यों में स्वयं को बाँधने के लिए तैयार नहीं हो पाते।

रिजुल और मेहुल एक दूसरे को प्यार करते हैं किन्तु उन दोनों के परिवारों के बीच असमानता की जो खाई है उसके मद्देनज़र वे अपने माता-पिता की पसंद से विवाह भी कर लेते हैं। ख़ुश भी हैं किन्तु फिर भी दोनों का दिल एक दूसरे के लिए धड़कना बंद नहीं करता। रिजुल की स्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका कहती हैं कि मेहुल की सूरत क़ब्र से बाहर निकल ही आती है।

रियाना माँ बनने वाली है लेकिन अनुपम बिना विवाह बंधन में बँधे बच्चे को दुनिया में नहीं लाना चाहता। वह अपनी बात रिजुल से शेयर करती है। उसकी बात सुनकर वह भी महसूस करने लगी थी कि हमेशा रिश्तों में खींचतान किन्तु-परन्तु जोड़-घटाव करते रहने जैसी गणितिक बातें ही रिश्तों का रस निचोड़ लेती हैं। वह अनुपम से समझौता करने के लिए तैयार हो गई।

सोमी और रोमिल का विवाह देहरादून में होता है। उनके विवाह में सम्मिलित होने गए दोस्त उत्तराखंड के कुछ पर्यटन स्थलों का भ्रमण करने जाते हैं। लेखिका नई टिहरी, कौसानी इत्यादि की ख़ूबसूरती के साथ उनके इतिहास का जिस प्रकार वर्णन करती हैं वह उनकी लेखन शैली की ख़ूबसूरती है। इसके साथ ही मेहुल अपने सभी मित्रों को अपने चाचा के घर ले जाता है। यहाँ भी लेखिका सहज़, सरल, पहाड़ी लोगों के जीवन की झलक के साथ गढ़वाली भाषा की मिठास से भी पाठकों को परिचित कराती हैं। उपन्यास का दु:खद पहलू रिजुल के पति समन्वय की दुर्घटना में मृत्यु है। उसकी एक दो वर्षीय पुत्री है। वह स्वयं को सँभाल कर पुन: मुंबई में अपने दोस्तों के पास आ जाती है।

उपन्यास का अंत समुद्र के किनारे एक रिसॉर्ट में होता है जहाँ रिजुल के प्रयासों से सारे मित्र 11 वर्ष बाद मिलते हैं। पुरानी यादों के साथ वर्तमान में उलझे इन युवाओं का भविष्य क्या उनके उलझे जीवन को सुलझा पायेगा? बहुत से अनुत्तरित प्रश्नों के साथ उपन्यास का अंत लेखिका के इन शब्दों के साथ होता है- जीवन नहीं चुकता, समय नहीं बीतता... चुक तो मनुष्य जाता है। बीत तो जीवन जाता है। उन सभी के मन के चौहट्टों पर पानी जम कर गँदला हो गया था। उन सबको प्रकृति ने जिन नैसर्गिक सम्पदाओं से युक्त किया था, वे ख़ुद अपने द्वारा ही उन्हीं नैसर्गिक सम्पदाओं के बोनसाई बन एक निश्चित परिधि में क़ैद हो गए थे।

दरअसल पिछले कुछ वर्षों में स्त्री की मानसिकता में जितना परिवर्तन आया है उतना पुरुष में नहीं। आज की अधिकतर आत्मनिर्भर कामकाजी स्त्रियाँ अपने स्वाभिमान और कॅरियर के लिए रिश्तों को अहमियत नहीं देतीं। उनका मानना है जैसा वे चाहें, वैसा ही उनका पार्टनर करे तो ठीक वरना राहें अलग-अलग। इस स्थिति का दु:खद पहलू तो यह है कि रिश्तों में आती संवेदनहीनता, टूटन ने पिछली पीढ़ी को तो तोड़ा ही है तथाकथित नव पीढ़ी भी अनेक तर्क-वितर्क में उलझी अपनी दशा और दिशा निर्धारित नहीं कर पा रही है।

यह उपन्यास आधुनिक पीढ़ी के लिए एक संदेश भी है और अपने नैतिक और सामाजिक मूल्यों को अक्षुण्ण रखने की एक चेतावनी भी है।

000

(नाटक)

कोई और रास्ता तथा अंतराल

समीक्षक : डॉ. स्वाति चौधरी

लेखक : प्रताप सहगल

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. स्वाति चौधरी
एच-1608, ए.वी.जे. हाइट्स,
जेटा-1, ग्रेटर नोएडा,
गौतम बुद्ध नगर, 201306, उप्र
मोबाइल- 9958287119

'प्रताप सहगल' का एकल नाटक 'कोई और रास्ता' समकालीन हिन्दी रंगमंच में स्त्री-अस्तित्व, आत्मनिर्णय और सामाजिक संरचनाओं के बीच संघर्ष का एक गहन और बहुस्तरीय पाठ प्रस्तुत करता है। सबसे पहले यदि एकल नाटक की संरचना पर विचार करें, तो यह रचना उस दृष्टि से अत्यंत सफल है कि इसमें एक पात्र 'इन्दु' के माध्यम से अनेक पात्रों, परिस्थितियों और समय-खंडों को जीवंत किया गया है। एकल नाटक की चुनौती यही होती है, कि मंच पर अकेला अभिनेता दर्शकों की रुचि को बनाए रखे और कथ्य को बहुस्तरीय बनाए। यहाँ इन्दु का चरित्र स्मृतियों के सहारे अतीत और वर्तमान के बीच आवाजाही करता है, जिससे नाटक में एक प्रवाहशीलता और आंतरिक गतिशीलता बनी रहती है। स्मृति यहाँ केवल कथानक उपकरण नहीं, बल्कि एक दार्शनिक और भावात्मक संरचना है, जो उसके आत्मबोध को आकार देती है।

नाटक का केन्द्रीय विषय स्त्री की पहचान की खोज है। इन्दु का प्रारम्भिक संवाद, 'मुझे नहीं बनना सती अनसूया, न सीता, न सावित्री...' सीधे-सीधे उस पितृसत्तात्मक ढाँचे को चुनौती देता है, जिसमें स्त्री को आदर्शों के बोझ तले दबाकर उसकी व्यक्तिगत पहचान को नकार दिया जाता है। यह उद्घोष नाटक की वैचारिक दिशा तय कर देता है। नाटक का कथानक तीन प्रमुख चरणों में विकसित होता है; प्रेम, विवाह और विघटन। प्रेम का आरम्भ आकर्षण से होता है, जिसमें देह और सौन्दर्य की भूमिका को स्वयं इन्दु स्वीकार करती है। यहाँ लेखक ने मानवीय कमज़ोरी को ईमानदारी से चित्रित किया है। इन्दु जिस बाह्य सौन्दर्य की आलोचना करती है, वही उसे आकर्षित भी करता है; यह द्वंद्व यथार्थपरक है। गौतम के साथ उसका संबंध सामाजिक स्वीकृति की ओर बढ़ता है, लेकिन विवाह के बाद यथार्थ का कठोर चेहरा सामने आता है।

विवाहोत्तर जीवन का चित्रण नाटक की सबसे सशक्त उपलब्धियों में से एक है। नाटक में 'मिडिल क्लास' की मानसिकता पर भी तीख़ा व्यंग्य है। चाहे दफ़्तर हो या घर, हर जगह निगरानी, नैतिकता का दबाव और सामाजिक प्रतिष्ठा का भय मौजूद है। नाटक का अन्त विशेष रूप से विचारणीय है। सामान्यत: ऐसे कथानकों में स्त्री के आत्मनिर्भर होकर अकेले जीवन जीने को 'प्रगतिशील' निष्कर्ष माना जाता है, लेकिन यहाँ लेखक ने एक अलग रास्ता चुना है। इन्दु का कमल से विवाह और उसके साथ एक स्थिर, संतुलित जीवन जीना कई स्तरों पर व्याख्यायित किया जा सकता है। एक ओर यह आशंका उठती है, कि क्या स्त्री की पहचान फिर से पुरुष-निर्भर हो गई? किंतु, दूसरी ओर यह भी स्पष्ट होता है, कि यह निर्णय इन्दु का अपना है! उसकी स्वतंत्र इच्छा का परिणाम! वह अब परिस्थितियों की शिकार नहीं, बल्कि अपने जीवन की निर्णायक है! यही द्वंद्व नाटक को गहराई प्रदान करता है।

शिल्प की दृष्टि से भी नाटक प्रभावशाली है। स्मृति और वर्तमान के बीच सहज संक्रमण, काव्यात्मक अंशों का प्रयोग, संवादों की स्वाभाविकता और मंचीय संभावनाओं का विस्तार; यह सभी तत्व इसे एक सशक्त रंग-रचना बनाते हैं। इन्दु के एकालाप में कहीं आत्मकथात्मक प्रवाह है, तो कहीं दार्शनिक चिंतन! भाषा सरल होते हुए भी भाव-गर्भित है, जिसमें कविता और गद्य का संतुलित समावेश है। मंचीय प्रस्तुति की दृष्टि से भी यह नाटक अत्यंत संभावनाशील है। एक पात्र के माध्यम से अनेक चरित्रों की उपस्थिति, प्रकाश और ध्वनि का प्रतीकात्मक उपयोग तथा स्मृतियों की दृश्यात्मकता आदि इसे दर्शकों के लिए एक प्रभावी अनुभव बनाते है! यह नाटक केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं, बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी गहरी छाप छोड़ता है।

अंतत:, 'कोई और रास्ता' एक स्त्री की आत्मखोज की यात्रा है, जो व्यक्तिगत अनुभवों से शुरू होकर सामाजिक विमर्श तक पहुँचती है। यह नाटक प्रश्न उठाता है, उत्तर थोपता नहीं; विकल्प सुझाता है, बाध्य नहीं करता। यही इसकी सबसे बड़ी शक्ति है। यह समकालीन हिन्दी रंगमंच में एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में देखा जाना चाहिए, जो न केवल स्त्री-विमर्श को समृद्ध करता है, बल्कि मनुष्य की स्वतंत्रता और विकल्प की मूलभूत अवधारणा को भी पुनर्परिभाषित करता है/ करता रहेगा एवं सदैव प्रासंगिक रखेगा!

'ख़ामोश फ़ाँकों में धड़कता समय : 'अन्तराल' का काव्यात्मक परिप्रेक्ष्य'

समय की सतह पर कभी-कभी ऐसे विराम उभर आते हैं, जहाँ शब्द ठहर जाते हैं और संबंध बोलने लगते हैं ; अनकहे, अनसुने, किंतु गहरे और प्रभावी! इन्हीं ठहरावों के बीच जन्म लेता है 'अन्तराल' ...वह सूक्ष्म दूरी, जो पीढ़ियों के बीच ही नहीं, एक ही छत के नीचे धड़कते दिलों के बीच भी पसरी होती है। प्रताप सहगल का बहुपात्रीय नाटक 'अन्तराल' इसी अदृश्य फाँक को स्वर देता है, जहाँ समय, संवेदना और विचार एक-दूसरे से टकराकर नए अर्थ रचते हैं।

नाटक की सबसे बड़ी विशेषता इसकी बहुस्तरीय संरचना है। एक ओर माँ मंजू और पुत्र गौरव के बीच वैचारिक टकराव है, तो दूसरी ओर उसी पीढ़ी की दो स्त्रियों, मंजू और दीपा के बीच दृष्टिकोण का स्पष्ट अंतर दिखायी देता है। तीसरी ओर गौरव और मधु का संबंध है, जो आधुनिक प्रेम, स्वतंत्रता और अनिश्चितता के बीच झूलता हुआ एक 'पेंडुलम' बन जाता है। इन सभी संबंधों के बीच सुरेश का संतुलित और अपेक्षाकृत व्यावहारिक दृष्टिकोण नाटक को एक और आयाम प्रदान करता है।

मंजू का चरित्र नाटक का केन्द्रीय बिन्दु है। वह एक माँ है, किंतु साथ ही एक व्यक्ति/ व्यक्तित्व भी है ...और यही द्वंद्व उसके भीतर सबसे अधिक सक्रिय है। उसका मातृत्व उसे अपने पुत्र से बाँधे रखता है, जबकि उसका व्यक्तित्व कहीं-न-कहीं यह स्वीकार भी करता है, कि समय बदल चुका है। मंजू उस भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने अपने सपनों का त्याग करके अपने परिवार को प्राथमिकता दी, लेकिन जब वही त्याग उसके सामने प्रश्न बनकर खड़ा होता है, तो वह असमंजस में पड़ जाती है। उसके भीतर का भय, 'बेटा बड़ा होकर आदमी क्यों बन जाता है?' ...एक माँ का भावनात्मक प्रश्न नहीं, बल्कि समय के परिवर्तन से उत्पन्न असुरक्षा का प्रतीक है।

गौरव का चरित्र नई पीढ़ी की आकांक्षाओं, आत्मनिर्भरता और वैश्विक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने करियर, अपने सपनों और अपने 'स्व' को प्राथमिकता देता है। उसके लिए विदेश जाना एक अवसर नहीं, एक आवश्यकता है! वह अपनी माँ के त्याग को समझता तो है, लेकिन उसे दोहराना नहीं चाहता। यही बिन्दु नाटक का सबसे बड़ा संघर्ष रचता है, क्या पिछली पीढ़ी के त्याग अगली पीढ़ी के लिए बाध्यता बन सकते हैं? नाटक इस प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं देता, बल्कि पाठक/ दर्शक को सोचने के लिए छोड़ देता है।

मधु का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह आधुनिक युवती है, जो प्रेम, स्वतंत्रता और यथार्थ के बीच झूलती रहती है। वह एक ओर गौरव के निर्णय को समझती है, वहीं दूसरी ओर भावनात्मक रूप से उससे जुड़ी भी है। उसका यह द्वंद्व आज के शहरी युवा वर्ग की मानसिकता को सटीक रूप में प्रस्तुत करता है। उसका अंतिम संवाद, 'एक बार तो कह देता...' उस अधूरेपन और भावनात्मक रिक्तता को पूरी तरह से व्यक्त करता है, जो वर्तमान आधुनिक संबंधों की एक अकाट्य सच्चाई है।

दीपा का चरित्र नाटक में एक आलोचनात्मक दृष्टि लेकर आता है। वह मंजू की भावनात्मकता को चुनौती देती है और उसे आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती है। दीपा का यह कहना, कि 'माँ भी तो एक व्यक्ति ही है' नाटक का एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक हस्तक्षेप है! वह उस धारणा को तोड़ती है, जिसमें माँ को केवल त्याग और समर्पण की मूर्ति के रूप में देखा जाता है। दीपा का दृष्टिकोण आधुनिक, तार्किक और कुछ हद तक कठोर भी है, जो मंजू के भावुक संसार से टकराकर एक बहुत ही सार्थक संवाद को उत्पन्न करता है।

नाटक का शिल्प भी अत्यंत प्रभावी है। फ्लैशबैक तकनीक का प्रयोग, संवादों की स्वाभाविकता, और मंचीय निर्देशों की सटीकता इसे एक सशक्त रंग-रूपांकन/ बिम्ब बनाते हैं। पहले दृश्य में तूफ़ान और बारिश का वातावरण; बाहरी प्रकृति का चित्रण ही नहीं है, बल्कि मंजू के भीतर के उथल-पुथल का भी प्रतीक है। इसी प्रकार, एयरपोर्ट का दृश्य वैश्विकता और दूरी के प्रतीक के रूप में उभरता है; जहाँ एक ओर उड़ान है, वहीं दूसरी ओर छूट जाने का दर्द!

'अन्तराल' ...पाठकीय और दर्शकीय अनुभव, दोनों के दृष्टिकोण से अत्यंत प्रभावशाली प्रतीत होता है। नाटक में प्रस्तुत पात्र और उनकी संवेदनाएँ इतनी सजीव हैं, कि दर्शक स्वयं को किसी-न-किसी पात्र में प्रतिबिंबित होते पाता है। कभी वह मंजू की तरह भावुकता और चिंता में उलझते हैं, कभी गौरव की तरह आकांक्षाओं और आत्म-निर्णयों में संतुलन खोजते हैं और कभी मधु की तरह असमंजस और अनिश्चितताओं में अपने अनुभव को पहचानते हैं। यही तादात्म्य; पात्र और दर्शक के बीच भावनात्मक साम्य ...'अन्तराल' की सफलता का सबसे ठोस प्रमाण है।

नाटक किसी एक दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करता; इसके पात्र और उनके संवाद विविध संदर्भों में जीवन के वास्तविक पहलुओं को उद्घाटित करते हैं। यहाँ पीढ़ियों के बीच के वैचारिक अंतर, समय और परिस्थितियों के प्रभाव और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को इतनी सहजता और बौद्धिक गहराई के साथ प्रस्तुत किया गया है, कि प्रत्येक दृश्य दर्शक के मन में संवाद और चिंतन के बिलकुल नए ही आयाम खोल देता है। 'अन्तराल' ...मतभेद स्वाभाविक रखता है और उन्हें संवाद, सहानुभूति और समझ के माध्यम से स्वीकार किया जा सकता है। यह नाटक हमें यह सोचने पर विवश करता है कि समय/ अन्तराल के साथ परिवर्तन अवश्य आता है, किंतु मानवीय संवेदनाओं, संबंधों और आत्मीयता को उसके बीच जीवित और सजीव बनाए रखना ही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि और सौंदर्य है!

संक्षेप में, 'अन्तराल' अपने कलात्मक संयोजन, गहन पात्र-चित्रण और संवेदनात्मक बुनावट से मनोरंजन के साथ-साथ पाठक और दर्शक को जीवन के अन्तराल, भावनाओं और संबंधों की सूक्ष्मता में खो जाने का आमंत्रण देता है ...यही इसकी साहित्यिक और नाट्यात्मक प्रावीणता है!

000

पुस्तक समीक्षा

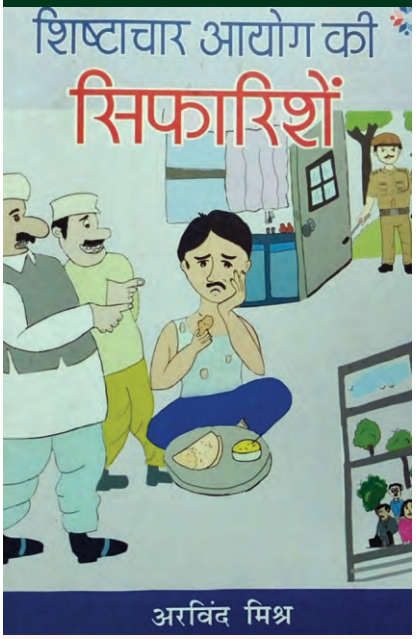

(व्यंग्य संग्रह)

शिष्टाचार आयोग की सिफारिशें

समीक्षक : लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

लेखक : अरविंद मिश्र

प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन, भोपाल, म.प्र.

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
मोहल्ला- बरगदवा (नई कॉलोनी),
निकट गीता पब्लिक स्कूल
पोस्ट- मड़वा नगर (पुरानी बस्ती)
जिला- बस्ती 272002 (उ. प्र.)
मोबाइल- 7355309428
ईमेल- laldevendra204@gmail.com

साहित्यकार अरविंद मिश्र जी व्यंग्य विधा के समर्थ रचनाकार हैं। वर्ष 2022 में उनकी व्यंग्य विधा की पुस्तक "शिष्टाचार आयोग की सिफारिशें" आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल (म. प्र.) से प्रकाशित हुई है। संग्रह के 148 पृष्ठ में कुल 42 व्यंग्य हैं।

व्यंग्य वर्तमान में साहित्य की लोकप्रिय विधा है। गद्य में आम जन द्वारा यह सर्वाधिक पसंद की जाने वाली और पढ़ी जाने वाली विधा है। मजेदार शैली और पढ़ने-समझने में सरल-सहज होने के कारण यह विधा वर्तमान में पत्र-पत्रिकाओं में ख़ूब प्रकाशित होती है और कृतियाँ सम्मानित भी होती हैं।

यद्यपि व्यंग्य विधा का सृजन साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कठिन है। पूर्व में इस विधा को अधिक महत्त्व नहीं मिला पर वर्तमान में यह एक महत्त्वपूर्ण विधा है। आम पाठक भी व्यंग्य पढ़ता है क्योंकि व्यंग्यकार अपने व्यंग्य के जरिए समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर करता है और लोगों को उनके प्रति जागरूक करता है। व्यंग्य में विसंगति या समस्या को पाठक अपने से जोड़ लेता है, इसीलिए व्यंग्य विधा के पाठक वर्ग व्यापक है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में इस विधा को गंभीरता से लिया जाता है।

व्यंग्यकार चाहता है कि समाज में अपनी लेखनी से नई रोशनी लाए, लोग चिंतन-मनन पर मजबूर हों। व्यंग्यकार कड़वी बात को यदि सहज अंदाज़ में व्यक्त कर देता है तो यह उसके सृजन की सार्थकता कही जाएगी।

संग्रह की पहली व्यंग्य रचना 'रास्ता रोको आंदोलन और भैंसों का योगदान' है। आजकल आए दिन किसी मुद्दे को लेकर रास्ता रोको होता आंदोलन होता रहता है। चक्का जाम करना पड़ता है। ऐसे आंदोलनों के लिए समर्पित भाव से कार्य करने वाले आंदोलन भक्त उपलब्ध हो नहीं पाते और किराए के आंदोलनकर्ताओं से आंदोलन सफल नहीं होते। सफलता के लिए मोटी अक्ल के संवेदना शून्य और कर्मठ कार्यकर्ताओं की खोज में राष्ट्रीय आंदोलन के चेयरमैन ने भैंस के महत्त्व को स्वीकारा है। सत्य है कि वर्तमान में आंदोलन के लिए भैंस जैसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है।

'बड़े आदमी की विशेषताएँ' वर्तमान में व्यक्ति के स्वभाव के बारे में शानदार और सटीक व्यंग्य है। आज बड़े आदमी होने की पहचान क्या है? कौन है बड़ा आदमी?

भौतिकता की चकाचौंध में आज प्रत्येक व्यक्ति बड़ा आदमी बनना चाहता है। धन, दौलत और पद से लैस होते ही वह सोचता है कि अब वह बड़ा आदमी बन गया और उसे छोटे लोगों से यानी आर्थिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति से कम बोलना चाहिए, उससे दूरी बनाकर रहना चाहिए वरना इज़्ज़त नहीं मिलेगी। आस-पड़ोस के लोगों से रौब से बात करो, परिचितों का अभिवादन मात्र सिर हिलाकर करो, बाज़ू से गुज़रो पहचानो न। जबकि पहले के ज़माने में आर्थिक संपन्नता और उच्च पदों पर आसीन होने के बावजूद व्यक्ति अपने को बड़ा आदमी नहीं समझता था। लोगों से हँस कर बात करना, उनके सुख-दु:ख के बारे में पूछना, मधुरता और प्रेम से बतियाना ही ही बड़े आदमी की पहचान होती थी।

'बारिश, गड्ढे और जनता की तफरी' में जनता की समस्याओं के निदान के लिए सरकारी कामकाज द्वारा किस तरह ढुलमुल तरीक़ा अपनाया जाता है। चुटीले शब्दों द्वारा व्यंग्यकार ने शानदार लिखा है। बारिश में बाढ़ की संभावना में उससे बचने और राहत के लिए सरकारी योजना कैसे आगे बढ़ती है?

'देश कहाँ जा रहा है?' व्यक्ति के निज स्वार्थ की चिंता को व्यक्त करता मारक व्यंग्य हैं। देश कहाँ जा रहा है? लोग कहते तो हैं पर अपने को बदलने की कोशिश नहीं करते। लोगों को सिर्फ अपने लाभ की, अपने स्वार्थ की पड़ी रहती है और कहेंगे कि देश कहाँ जा रहा है? व्यक्ति से ही देश बनता है। जब हर बात में, हर जगह, हर रिश्ते में व्यक्ति निज स्वार्थ त्याग कर सबके भले, देश के भले, समाज की भलाई के लिए चिंतन करेगा, सोचेगा, कार्य करेगा, तभी तो देश आगे जाएगा। महज कहने से कि देश कहाँ जा रहा है? और हम सिर्फ अपने स्वार्थ, अपने हित में मस्त रहेंगे, दूसरे से या देश से मतलब नहीं रखेंगे तो हमें कहने का भी हक नहीं कि देश कहाँ जा रहा है? दूसरे का, समाज का, देश का नुकसान ही क्यों न हो जाए, हमें सिर्फ अपनी पड़ी है?

'घाटा का चाँटा' भी एक बढ़िया व्यंग्य है। बजट में हर साल घाटा ही दिखाया जाता है। जब हर जगह घोटाला ही घोटाला है तो तो घाटा होना ही है। व्यंग्यकार लिखते हैं, "विगत वर्षों में हमने घोटालों को पर्व के रूप में मनाया है। जैसे कोई किसी क्षेत्र में दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करता है, वैसे ही हमारे जननायकों ने एक से बढ़कर एक घोटालों की सौगातें हमें दी हैं। जो विरासत में मिलता है, हम उसी का अनुगमन तो करते हैं।"

'अथ श्री पादुका चरित्रम्' में जूता की महिमा को सुंदर व्यंग्य में व्यंग्यकार ने दर्ज कराया है। जूता हर युग में महत्त्वपूर्ण रहा है। भरत ने प्रभु श्रीराम के पादुकाएँ को पाने के लिए हाथ-पैर जोड़कर उसे प्राप्त किया और चौदह वर्ष तक उसे नित्य नियम से पूजा।

हमारे राज्यों की विधान सभाओं और संसद में कभी-कभी जन प्रतिनिधियों द्वारा जूता चलाते देखा जा सकता है। जहाँ से हमारे देश की दिशा और दशा तय होती है, कानून बनते हैं। जब ऐसी जगह जूते चल सकते हैं तो अन्य जगहों पर चलने-चलाने में कोई समस्या नहीं होनी चाहिए।

अरविंद मिश्र जी इस व्यंग्य में लिखते हैं, "जूतों की बहुआयामी प्रतिभाओं के मद्देनज़र उन्हें चाटने की प्रथा भी विद्यमान है।" जूताखोरों का कथन है, "कि गाय मारकर जूती दान कर देने से सब पाप कट जाते हैं।" सच में इस व्यंग्य को जूता बखान व्यंग्य कह सकते हैं।

इस संग्रह की शीर्षक व्यंग्य रचना 'शिष्टाचार आयोग की सिफारिशें' हैं। व्यंग्यकार अरविंद मिश्र जी ने एकदम सटीक लिखा है कि समाज में जन-जागरण के लिए समर्पित सदाचारियों का कार्य लोगों पर नज़र रखना है, यदि कोई पास-पड़ोस या मोहल्ले में सुख-चैन की बंशी बजा रहा है तो इन्हें अजीर्ण हो जाता है। ये किसी को दाल-रोटी आराम से खाते हुए नहीं देख सकते। आख़िर ये दाल-रोटी कैसे खा रहे हैं? दाल कहाँ से लाते हैं? दाल को पकाने के लिए मीठा पानी किस कुएँ से लाते हैं? मोहल्ले में और कौन-कौन दाल-रोटी खाता है?

ऐसे में शिष्टाचार आयोग की क्या सिफारिशें क्या हैं या क्या होनी चाहिए? आप इस संग्रह को पढ़कर जान और समझ सकते हैं?

'मेहमान भत्ता' रोचक व्यंग्य है। कर्मचारियों को तीस दिन में एक दिन वेतन मिलता है तो पहला सप्ताह ख़ुशी से, दूसरा एवं तीसरा सप्ताह रो-धोकर गुज़रता है। आख़िरी सप्ताह के कुछ दिन उधारी के लाचारियों भरे होते हैं। ऐसे में किसी मेहमान के आ जाने पर उसकी आवभगत में ख़र्च बढ़ जाते है। ऐसे में प्रत्येक विभाग को अन्य कई भत्तों की तरह घर आए मेहमान की उचित ख़ातिरदारी हेतु पर्याप्त मेहमान भत्ता दिया जाना चाहिए। और इसे मौसम के अनुसार घटाना-बढ़ाना चाहिए।

अपने देश में हिन्दी की बदतर स्थिति को 'हाय हिन्दी तुम कहाँ हो' शानदार व्यंग्य है। सितंबर माह आने पर ही हिन्दी होने का एहसास होता है, आयोजन होते है, स्मारिकाएँ प्रकाशित होती हैं, उसके बाद ग्यारह महीने हिन्दी अज्ञातवास में रहती है। लोगों को अंग्रेज़ी का भूत सवार रहता है। लोग सुबह नाश्ते को ब्रेकफास्ट, घूमने को मॉर्निंग वॉक, शीतल पेय को कोल्ड्रिंक्स बोलकर गर्वित होते हैं। अब लोग दफ्तर नहीं ऑफिस जाते हैं, आराम नहीं रेस्ट करते हैं।

संग्रह के अन्य- पानी से पतला होता आदमी, तुम गधा नहीं हो, यह कहकर शर्मिंदा न करें, एक सूत्रीय कार्यक्रम, सूअरों के सम्मान में दो शब्द, बचाओ रे!, बाप और आप, आदमी की लुप्त होती नस्ल, ससुराल सुख की सार, सिर न होने की संभावनाएँ, नाक से जुड़ा मसला, मुझे भी तिहाड़ ले चलो, एक रेलयात्रा और तीन लोक के दर्शन भी बढ़िया व्यंग्य हैं।

व्यंग्य संग्रह की भाषा सरल, सहज और प्रवहमान है। अरविंद जी सामाजिक कुरीतियों, समस्याओ, आमजन की समस्याओं को इस तरह धार देते हैं जो हमें चिंतन के लिए मजबूर करते हैं। व्यंग्य में कई ऐसे गंभीर प्रश्न को उपस्थित करते हैं जो हमारे दैनिक जीवन से जुड़े अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं?

अरविंद मिश्र जी एक प्रतिबद्ध लेखक हैं और व्यंग्य के जरिए प्रश्नों या समस्याओं को सहज अंदाज़ में एक-दो पंक्तियों में व्यक्त करते हैं और फिर उसे विस्तार देते हुए उसके प्रभाव को परिणति तक ले जाते हैं।

अरविंद मिश्र जी अपने व्यंग्य के विषयों के चयन के लिए अभिजात्य वर्ग के जीवन शैली को नहीं बल्कि आमजन की जीवन शैली और उनकी दिनचर्या को अपना आधार बनाते हुए समस्यायों को रेखांकित करते हैं, इसीलिए इनके व्यंग्य आमजन या आम पाठक को अपने लगते हैं। आम पाठक को अपनी रचनाओं से जोड़ लेने में अरविंद जी सिद्ध व्यंग्यकार हैं। हाँ, एकाध व्यंग्य में विषय से भटकाव है। फिर भी संपूर्णता में संग्रह को सार्थक व्यंग्य संग्रह कहा जा सकता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

गधों का आदमी विमर्श

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : गोविंद सेन

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

राहुल देव
9/48, साहित्य सदर, कोतवाली मार्ग,
महमूदाबाद (अवध),
सीतापुर 261203, उप्र
मोबाइल- 9454112975
ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

वरिष्ठ लेखक गोविंद सेन का तीसरा व्यंग्य संग्रह 'गधों का आदमी विमर्श' प्रकाशित हुआ है, जिसमें 49 व्यंग्य संग्रहित है। गोविंद सेन को मैंने 'व्यंग्ययात्रा' में पढ़ा है। उनकी कई रचनाओं को एक जगह मैं पहली बार पढ़ रहा हूँ। अपने इस संग्रह में लेखक सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विसंगतियों पर तिरछी नज़र से व्यंग्य वार करते नज़र आते हैं। उनके पास विषयों की बड़ी रेंज है हालाँकि मेरे देखे संग्रह में कुछ औसत रचनाएँ भी ले ली गई हैं, जिनसे बचा जा सकता था।

गोविंद सेन जी व्यंग्य निबंध लिखने में ज़्यादा रुचि लेते हैं। वह संतुलित हास्य के साथ व्यंग्य लिखते हैं। उनमें करुणा के दृश्य बहुत कम हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी लगा जैसे लिखते हुए वह सिर्फ़ लिखना ही शेष रह गया और लेखक सपाट बयानी की धार में बह गया, जिससे रचना का ओवरऑल इंपैक्ट प्रभावित हुआ। गोविंद सेन जी के पास लिखने के लगभग सभी उपकरण मौजूद हैं। बीच-बीच में वे अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के भी दर्शन करते मिलते हैं।

गोविंद सेन जी मध्य प्रदेश के धार जिले से आते हैं। मैं कई बार सोचता हूँ कि मध्य प्रदेश की धरा में ज़रूर कुछ ऐसा ख़ास है जो वहाँ अन्य प्रदेशों के बनिस्बत अधिक व्यंग्य लिखा जाता रहा है। हालाँकि अभी तक मुझे अपने इस प्रश्न का बहुत ठोस उत्तर नहीं मिल पाया है। मेरी इस बात से लगभग सभी सहमत होंगे कि इस दौर में व्यंग्य लिखना दुष्कर है, ख़तरों से भरा है। नकलीपन और झूठ का बोलबाला चहुँओर है। ऐसे में व्यंग्य लिखने के लिए इससे माकूल समय और क्या होगा। वे ही व्यंग्य लिखने से कतराएँगे जिनमे रीढ़ की हड्डी नहीं होगी।

'पाँवने जीमते रहेंगे' शीर्षक व्यंग्य में वह राज्य की पतनगाथा लिखते हुए संवेदनहीन राजा व उसके चापलूस दरबारियों के प्रतीक के जरिए प्रभावशाली व्यंग्य कथा रचते हैं। पुस्तक के 'रावण नहीं मरते' शीर्षक व्यंग्य में मनुष्यता का गिरता हुआ ग्राफ इंगित किया गया है। इस व्यंग्य में वह लिखते हैं, 'वह पुरातन रावण आज के मानव से कई गुना बेहतर था। उसे अत्याचारी कहा जा सकता है। ज़ालिम कहा जा सकता है। घमंडी तो कहा ही जाता है। उसमें लाख बुराइयाँ सही, लेकिन ऐसी बुराइयाँ कतई नहीं थी जैसी कि आज के मानव समाज में कूट-कूट कर भरी हैं।' इसमें अच्छी डिटेलिंग है और पढ़ते हुए आनंद के साथ आह बरबस निकलती है। गोविंद सेन की व्यंग्य भाषा सधी हुई है। उसमें बहुत कलात्मकता या चालू नुस्खे नहीं है। आपके हास्य-व्यंग्य आपकी ही तरह प्रौढ़ हैं। सरल और सहज प्रवाहपूर्ण भाषाशैली में आपकी ज़्यादातर व्यंग्य रचनाएँ लिखी गई हैं। उनमें व्यंग्य की परंपरागत तुर्शी, पैनापन और तीखापन नहीं है। आपका 'हाँ जी की नौकरी' शीर्षक व्यंग्य पढ़कर मुझे युवा कथाकार अजय नावरिया की चर्चित कहानी 'यस सर' की स्मृति हो आई। यत्र-तत्र दबा-ढका राजनीतिक विवेक भी व्यंग्य से झाँकते नज़र आता है। 'भीड़ भगदड़ और मोक्ष' में आए या दो वाक्य देखें- 'वह व्यवस्था ही क्या जो चरमराए नहीं। व्यवस्था का धर्म ही चरमराना है।'....'यहाँ भगदड़ में कोई मर जाता है तो सिर्फ़ मरता नहीं है, सीधे-सीधे मोक्ष को पा जाता है।'

'खाली की फुल गारंटी' शीर्षक व्यंग्य का यह सूक्तिवत वाक्य कितना कुछ कह जाता है- 'ढोल हमारी संस्कृति है और डीजे हमारी आधुनिकता।' लेखक का व्यंग्य लिखते हुए परिवेश से सीधा जुड़ाव बना हमेशा बना रहा है। अच्छी बात है कि किसी व्यंग्य रचना को समाप्त करते हुए वे कोई निर्णय नहीं सुनाते हैं, वे अपने स्पेस में विसंगति का चित्रण भर करते हैं बस। उनके यहाँ शैली की बहुत अधिक विविधता नहीं है फिर भी उन्होंने भरसक संवाद शैली, लघुकथा शैली, निबंध शैली का प्रयोग किया है।

जहाँ एक ओर 'दो दीयों का दर्द' शीर्षक व्यंग्य समाज में बहिष्कार के नाटक का पर्दाफाश करता है तो वहीं 'मोबाइल ने मार डाला' व्यंग्य पाठक को चेताता है कि मोबाइल की ग़ुलामी अच्छी नहीं। मोबाइल पर हमारी अधिक निर्भरता जनरेशन गैप को बढ़ाकर आपसी रिश्तों की संवाद ऊष्मा को सोख लेता है साथ ही वह पुस्तक संस्कृति भी विनाश करता है। सूचनाओं की बाढ़ में सोशल मीडिया पर हर समय लगे रहना कहीं न कहीं हमारी मौलिक चेतना को भी भोथरा

करता है। इस व्यंग्य में वे एक जगह लिखते हैं, 'झूठ पर सच का बटर लगाकर ये परोसते रहते हैं। वे बिगाड़ की बातें ही करते रहते हैं। ईमान की बात भूलकर नहीं करते। वह बताते हैं कि मेरा ख़ून कितना पानी हो चुका है। लड़ने के लिए उकसाते रहते हैं। भाव यही होता है कि तुम लड़ो हम तमाशा देखेंगे। फेसबुक, गूगल, व्हाट्सएप आदि मोबाइल की सशस्त्र सेना मुझे घेरे रहने लगी है।'

गोविंद सेन मीडियाकर तिकड़मों से अलग अपनी दुनिया में रहने वाले कुछ लेखकों में से हैं। मुझे उनका अंदाज़ेबयाँ काफी हद तक अश्विनीकुमार दुबे की रचनाशीलता के नज़दीक लगा। उनमें मौलिक व्यंग्य प्रतिभा है और वह मुहावरे से भी व्यंग्य निकाल लाते हैं। जैसे 'रेवड़ी ने अंधा बना दिया' या 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला' शीर्षक व्यंग्य। कहीं-कहीं उनके यहाँ बतकही का मोहक अंदाज़ भी देखने को मिलता है, जैसे 'हमको डंका बजाना है' शीर्षक व्यंग्य। 'लीकेज अच्छे हैं' शीर्षक व्यंग्य में व्यंग्यकार बेरोज़गारी और पेपर लीक जैसी जनसमस्याओं को अपने व्यंग्य में उठाता नज़र आता है। इस संग्रह का जो सबसे अच्छा व्यंग्य मुझे लगा वह है 'गिरते हैं पुल यहाँ' इस व्यंग्य रचना की चर्चा के बग़ैर इस किताब की चर्चा अधूरी रह जाएगी। यह बहुत सशक्त व्यंग्य रचना है जिसमें लेखक करुणा के इस्तेमाल से पाठक को झकझोरते मिलते हैं। पहली ही पंचलाइन आप देखे- 'पुल तो बहुत बाद में गिरते हैं। पहले आदमी गिरता है।'

इस किताब में कई दफा लेखक किसी ख़ास विसंगति की जड़ को उखाड़कर देखने की महीन रचनात्मक कोशिश करते दिखाई दिए हैं। इस प्रक्रिया के मार्फ़त वे कहीं न कहीं व्यंग्य की ज़रिये आदमी और उसकी प्रवृत्ति के मनोविज्ञान को समझने का ही प्रयास करते नज़र आते हैं। उनका मानना है अगर मन का इलाज हो गया तो कई सारी अन्य समस्याओं का इलाज ढूँढ़ा जा सकता है। इस संग्रह में मुझे 'दरवज्जा खुला रखना' जैसे सटायर पढ़ कर थोड़ी निराशा भी हुई। संग्रह थोड़ा संपादकीय चयन की माँग रखता था जिससे इसकी गुणवत्ता और बढ़ सकती थी। 'सड़क पर शोर' शीर्षक व्यंग्य भी कुछ इसी तरीक़े का अल्पविकसित होकर रह गया व्यंग्य है। कुल मिलाकर आपकी यह व्यंग्य पुस्तक विसंगतियों से भिड़ती हुई सकारात्मक बदलाव की पैरवी करती है। इस व्यंग्य संग्रह को साल के उल्लेखनीय हस्तक्षेप के रूप में दर्ज़ किया जाना चाहिए।

पढ़ते-पढ़ते इस संग्रह से रेखांकित किये गए कुछ महत्त्वपूर्ण व्यंग्य स्थल-

1- 'आदमी की हरकतों से हमें शर्म और घिन आती है। ऊपरवाले से यही प्रार्थना है कि हमें अगले जन्म में कोई भी जानवर बना देना पर आदमी मत बनाना।' (गधों का आदमी विमर्श)

2- 'महापुरुषों को छोड़कर आजकल आदमी पशु-पक्षियों और कीड़े-मकोड़े से प्रेरणा लेने में जुटा है। कोई चींटी से प्रेरणा लेता है तो कोई मकड़ी से। इधर गधे से प्रेरणा लेने का नया फैशन चल पड़ा है। बेचारे गधे को पता ही नहीं कि आदमी उससे प्रेरणा ले रहा है। यदि पता होता तो वह कितना गर्व अनुभव करता।' (कहीं गधा आदमी न बन जाए)

3- 'कवि उल्टे मानता था कि राजा की संवेदना अवसरवादी है। अवसर के अनुसार ही उसकी संवेदना जागती है। कभी-कभी वह जनता के दुखों से दुखी होकर रो भी देता था। रोने में राजा प्रवीण था। प्रतिकूल परिस्थिति में उसकी संवेदना कुंभकरणी नींद में चली जाती थी।' (उल्टे, सुलटे और पुल्टे)

4- 'आजकल तो बड़ी-बड़ी चीज़ें चुरा ली जाती हैं। महापुरुष तक चुरा लिए जाते हैं और किसी को पता भी नहीं चलता। जिन महापुरुषों को चुरा नहीं पाते, उन्हें खलनायक घोषित कर दिया जाता है। महापुरुषों के क़द को कतरकर उसे लघु पुरुष बनाकर छोड़ दिया जाता है। चुराने वाले इतने चतुर हैं कि वह किसी की आँखों से काजल भी चुरा लेते हैं। वे आपको ऐसा चश्मा पहना देते हैं कि जो जैसा हो, वह वैसा नज़र नहीं आता। गीदड़ शेर नज़र आने लगता है और शेर गीदड़।' (छिपाने की कला)

5- 'आत्माराम भी आत्मा की कष्टकारी फितरत को जान गया था। आत्माराम ने भी आत्मा को अपने से कटवा कर अलग कर दिया। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। अब वह आत्मा का जाप करने की मजबूरी से मुक्त हो गया है। बेखटके मुँह में राम बगल में छुरी रखता है।' (आत्मा और आदमी)

6- 'लोग भी अजीब हैं भाई साहब। पूजा गाय की करते हैं लेकिन दूध भैंस का पसंद करते हैं।' (गई भैंस पानी में)

7- 'रिश्वत को रिश्वत या घूस मत कहिए। इस सुविधा शुल्क, वज़न, पेपरवेट, लिफाफा, शिष्टाचार, भेंट-पूजा, बच्चों के लिए मिठाई या चाय-पानी कहिए।' (ज्ञान बाँटते चलो)

8- 'आजकल झूठ इतना सूक्ष्म हो गया है कि उसको पकड़ना ही मुश्किल हो गया है। यहाँ तक की झूठ पकड़ने की मशीन तक झूठ बोलने लगी है।' (झूठ का पुलिंदा)

9- 'परिवर्तन प्रकृति का नियम है भाई साहब। समय बदलता है। मौसम बदलता है। कुछ न कुछ बदलता ही रहता है भाई साहब। कहते हैं आईना वही रहता है, चेहरा बदल जाता है। पेड़ वही रहता है, पत्ते बदल जाते हैं। फंदा वही रहता है और गर्दन बदल जाती है। दोस्त वही रहता है, विचार बदल जाते हैं। पीते-पीते कभी-कभी जाम बदल जाते हैं। आदमी वही रहता है, काम बदल जाते हैं।' (परिवर्तन प्रकृति का नियम)

10- 'बच्चे हमेशा दिल से चलते हैं। बूढ़े दिमाग़ से चलते हैं। वे जितना बताते हैं, उससे अधिक छुपाते हैं। वे अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से हर पोल-पट्टी छिपा लेते हैं। बुढ़ापे में जिह्वा की लपलपाहट चरम पर पहुँच जाती है।' (बूढ़े नहीं होते मन के सच्चे)

11- 'भले आदमी से मिलने के बाद मुझे मालूम हो गया था कि हमाम में रेनकोट पहनकर कोई नहीं नहाता। हमाम में सभी नंगे ही होते हैं। भला आदमी हो या फलाँ आदमी। अब मैं भले आदमियों से सतर्क रहने लगा हूँ। क्या पता कब भले आदमी के भेष में बुरा आदमी आपको चकमा देकर चला जाए।' (भला जो देखन मैं चला)

000

पुस्तक समीक्षा

(ग़ज़ल संग्रह)

पहला मौसम

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश
लेखक : प्रेम रंजन अनिमेष
प्रकाशक : सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी- ए,
ज़िला- हजारीबाग, झारखंड - 829108
मोबाइल- 9931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

हिन्दी ग़ज़ल का प्रारंभ दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों से माना जाता है। इसके पूर्व में भी हिन्दी में ग़ज़ल लिखी गईं थीं, पर वे इसके प्रारंभिक दौर की थीं जिनमें अनेक प्रकार की ख़ामियाँ थीं। यही कारण है कि वे अपने समय में प्रचलित नहीं हो सकीं।

ग़ज़ल की बात जब भी प्रारंभ होती है तो सबसे पहले उर्दू ग़ज़ल की तरफ़ ही हमारा ध्यान जाता है। उर्दू में ग़ज़ल की परंपरा बहुत पहले ही प्रारंभ हो गई थी। लेकिन वह उस समय राजाश्रय प्राप्त थी। वे ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों के माध्यम से राजाओं का मनोरंजन करने का कार्य करते थे। ये ग़ज़लें प्यार-मोहब्बत और श्रृंगार की हुआ करती थीं। जिसमें नायिका के सोलहों श्रृंगार का वर्णन होता था। धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलीं और ग़ज़ल का मिजाज भी बदला।

हिन्दी ग़ज़ल का परिवेश और परिस्थितियाँ समय-सापेक्ष हुआ करती हैं। समय के अनुसार ही साहित्य का सृजन होता है। जैसी परिस्थितियाँ होती हैं, साहित्य भी उसी के अनुरूप लिखा जाता रहा है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता। उसी प्रकार साहित्य भी अपने काल क्रमानुसार समय को ही रचता है, जो कालांतर में समय की सच्चाई को उजागर करता प्रतीत होता है। भले ही उसमें कुछ अतिशयोक्तियाँ आ जाती हैं, लेकिन ये नाम मात्र की होती हैं। इसमें अपने समय का प्रतिबिंब झलकते रहता है।

हिन्दी ग़ज़ल का प्रारंभ स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही हो गया था। उस समय के कवियों ने हिन्दी में ग़ज़ल लिखने की कोशिश की है, भले ही इनका स्वर स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ था। पर हिन्दी ग़ज़ल की नींव उसी समय पड़ चुकी थी। उस समय मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद आदि ने ग़ज़लें लिखीं। लेकिन यह विधा प्रमुख नहीं बन सकी।

छायावादी दौर में हिन्दी कविता का विकास तेज़ी से हुआ, लेकिन रहस्यवाद ने इसे बोझिल बना दिया। तुकांत कविताओं का यह दौर ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सका। इसी समय पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने मुक्त-छंद की कविताएँ लिखकर, इसके वैशिष्ट्य को व्याख्यायित किया। इसके बाद मुक्त-छंद की कविताओं का दौर शुरू हुआ। जो आज अपनी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर चुकी है।

'पहला मौसम' प्रेम रंजन अनिमेष का पहला ग़ज़ल-संग्रह है। इसके पूर्व में इनकी दर्जनों कविता, कहानी और उपन्यास विधा की पुस्तकें प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इनकी ग़ज़लें लीक से हटकर लिखी गई ग़ज़लें हैं। ग़ज़लों में अमूमन पाँच से सात शेर होते हैं, पर प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लों में दस-ग्यारह शेर होना तो आम बात है। इनकी एक ग़ज़ल में एक सौ छह शेर हैं, तो दूसरी में पचपन शेर हैं। इनके कहने का अंदाज़ भी अलहदा है। ग़ज़लों में शीर्षक नहीं होते हैं, पर प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लों में सभी के शीर्षक हैं।

'पहला मौसम' में प्रेम रंजन अनिमेष ने प्रेम, जीवन और समाज के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त किया है। प्रेम की विभिन्न भावनाओं को तो दर्शाया ही है, प्रकृति के चित्रण भी देखने को मिलते हैं, जो इनकी ग़ज़लों में एक विशेष रंग भरते हैं। इनकी ग़ज़लों की विशेषता है कि ये आम जीवन के विभिन्न रंगों को अपनी ग़ज़ल का विषय बनते हैं और बेबाकी से कह भी जाते हैं। इसीलिए इनका मन-मिजाज ग़ज़लों में रम जाता है।

'पहला मौसम' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने यह बात कहने की कोशिश की है कि मैं पत्ता-पत्ता बिखर गया हूँ, फिर भी मैं शांत हूँ। मेरे ऊपर बिखरने का कोई असर नहीं पड़ा है। वह मौसम जो दिल को छू ले, वह पहला मौसम होता है। इस मौसम की खासियत है कि यह हमेशा-हमेशा के लिए दिल में बरकरार रहता है। ग़ज़लकार ने लिखा है -

"पत्ता पत्ता बिखर गया हूँ फिर भी सालम हूँ, मैं दिल को छूकर गुज़रा वो पहला मौसम हूँ।"

'थक गया हूँ' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने कहना चाहा है कि मैं जीवन से अब थक गया हूँ। इसलिए एक किनारे होकर शेष जीवन जीना चाहता हूँ, जिसमें शोर-शराबा न रहे।

अगले शेर में कहते हैं कि मेरी आँखें भरी हुई हैं। उन आँखों को पानी से धोना चाहता हूँ, ताकि मन की मैल धुल जाए। फिर कहते हैं कि मुझे टूटा हुआ खिलौना ही चाहिए, नए की चाह नहीं है। जो लगाव और अपनापन टूटे से है, वह नए से नहीं हो सकता। ग़ज़लकार ने लिखा है -

"थक गया हूँ एक कोना चाहता हूँ, कब का जागा हूँ मैं सोना चाहता हूँ।

उससे भी अच्छा मिलेगा कहते हैं सब, मैं वही टूटा खिलौना चाहता हूँ।"

'माँओं की खोयी लोरियाँ' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने बच्चों के बचपन के लुप्त होने की बात कही है। बच्चों का बचपन खोता जा रहा है, उसी तरह माँ द्वारा बच्चों को सुनाई जाती रही लोरियाँ भी विलुप्त होती जा रही हैं। हर घर में कुछ-न-कुछ कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं। उसे फिर से ढूँढ़ने की आवश्यकता है। समय जिन किताबों को पढ़ता है, उन किताबों की गलतियाँ ढूँढ़ने की ज़रूरत है। बच्चों के द्वारा बचपन में काग़ज़ के नाव बनाकर खेलने की परंपरा रही है, बरसात के दिनों में। फिर से उस बचपना को खोजने की ज़रूरत है। आजकल चिट्ठियों का चलन प्राय: बंद हो गया है। उसे फिर से शुरू करने की ज़रूरत है या फिर पुरानी चिट्ठियों से ही काम चलाया जाए। गज़लकार ने लिखा है -

"जिन किताबों को वक़्त पढ़ता है, / उन किताबों की गलतियाँ ढूँढ़ो। / यादों के गाँव में घिरे बादल, फिर से कागज की कश्तियाँ ढूँढ़ो। / अब नई तो नहीं लिखी जातीं, कुछ पुरानी ही चिट्ठियाँ ढूँढ़ो।"

'सोचते हैं' ग़ज़ल के माध्यम से गज़लकार ने रातों-रात हालात बदलने की बात की है। वह कहता है कि राजा अपने ही मातहतों के द्वारा घिरा हुआ है। अब उसे स्वतंत्र होकर काम करने की ज़रूरत है, अन्यथा स्थित ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। अगर ठान कर कोई काम किया जाए तो स्थिति ज़रूर बदलेगी। ग़ज़लकार ने लिखा है- "सोचते हैं रोज़ हम हालात बदलेंगे, / और बदलेंगे तो रातों-रात बदलेंगे। / है यहाँ राजा घिरा अपने ही मोहरों से, / शह बदलकर आप कैसे मात बदलेंगे।"

'इस जगह' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने यह कहना चाहा है कि शगुन के लिए दूब और धान तैयार है, यानी धरती को कुछ नया होने की उम्मीद अब भी बची हुई है। ज़िंदगी को जीना शुरू किया तो लगा कि शायरी करना आसान है। यानी शायर को गौर से पढ़ने की ज़रूरत है, क्योंकि ये सिर्फ़ एक शेर नहीं है, बल्कि एक दीवान है। जिसके माध्यम से बहुत कुछ समझा-बुझा जा सकता है। ग़ज़लकार ने लिखा है- "आज भी धरती है ये उम्मीद से, / दूब है आँचल में और कुछ धान है। / ज़िंदगी को जब जिया तब ये लगा, / शायरी करना बहुत आसान है। / पढ़ना सुनना गौर से 'अनिमेष' को, /उसका हर इक शेर इक दीवान है।"

'कोई धुन' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने कहना चाहा है कि आदमी की ज़िंदगी में कोई धुन मातमी न रहे, बल्कि वह सरगमी बनी रहे। वह आगे कहता है कि माँ के अंदर इतनी नमी रहे कि उसके भीतर की नदी सूखे नहीं। आदमी के अंदर एक ऐसा आदमी होना चाहिए कि वह जब भी निकले तो आदमी की ही खोज में निकले, ताकि आदमीयत बरकरार रहे। गृज़लकार ने लिखा है- "ग़म भी हो तो सरगमी रहे, / कोई धुन क्यों मातमी रहे। / सूखे मत बाहर नदी कोई, / आँखों में इतनी नमी रहे। / आदमी को ढूँढ़े आदमी, / सबमें कुछ ऐसी कमी रहे।"

'फिर सन्नाटा' ग़ज़ल के माध्यम से ग़ज़लकार ने कहना चाहा है कि घर में औरत है, तो सन्नाटा रह ही नहीं सकता है, क्योंकि उसके रहने मात्र से घर में कुछ-न-कुछ गतिविधियाँ होती रहती हैं। वह रसोई घर से लेकर अन्य कामों में हमेशा व्यस्त रहती है। वह कहता है कि आने वाला कल ख़्वाबों का होगा यानी सपने सच होने का दिन होगा। अब परिस्थितियाँ एक-सी नहीं रहेंगी, वह बदलते रहेंगी। ग़ज़लकार ने लिखा है - "फिर सन्नाटा चौंका होगा, / औरत ने कुछ छौंका होगा। / आज यही सच मान रहा मन, / कल अपने ख़्वाबों का होगा।"

'घर कोई' ग़ज़ल के माध्यम से गज़लकार ने कहना चाहा है कि घर किसी के आने की राह देखते रहता है। वह इंतज़ार में रहता है कि कोई-न-कोई तो आएगा। कोई सफ़र में निकलता है तो उसका कोई-न-कोई मक़सद होता है। जानने के बाद भी कोई किसी को औरत न कह पाता है, क्योंकि उस आदमी के अंदर कोई जानवर विराजमान रहता है। ग़ज़लकार ने लिखा है - "हो सफ़र मक़सद-ए-सफ़र कोई, / राह आने की ताकता घर कोई। / जानकर भी कहे किसे औरत, / आदमी में है जानवर कोई।"

'कह के फिर' ग़ज़ल इस संग्रह की सबसे बड़ी ग़ज़ल है। इस ग़ज़ल में एक सौ छह शेर हैं। ये शेर जीवन के विविध रंगों को उकेरने में काफी मददगार साबित हुए हैं। ग़ज़लकार ने लिखा है - "जीते मरते औरों की खातिर रहे, / हाल अपना ही सुनना रह गया। / आग के दरिया में तो उतरे मगर, / डूब कर उस पर जाना रह गया। / साथ में जिसके रहे हम उम्र भर, / उसको अपने पास लाना रह गया। / चेहरे के भीतर जो असली चेहरा है, / आईना उसको दिखाना रह गया। / औरों की खातिर जिये ताज़िंदगी, / अपने को अपना बनाना रह गया।"

'यूँ ही आए हैं' ग़ज़ल में पचपन शेर हैं। इनकी ग़ज़लों में शेरों की कोई बंदिश नहीं हैं। अपनी भावभूमि और कहन में ये शेर लीक से अलग नहीं हटते हैं। ग़ज़लकार ने लिखा है- "एक चादर ये उम्र की जिसको, / ओढ़ना है कभी बिछाना है। / जोड़ना रिश्ता है बहुत आसान, / मुश्किल उसको मगर निभाना है।"

'पहला मौसम' में प्रेम रंजन अनिमेष ने समय की सच्चाई को कई कोणों से परखने की कोशिश की है। ये ग़ज़लें प्यार-मोहब्बत, दुख-दर्द, बेरोज़गारी, जीवन की जद्दोजहद, प्रकृति चित्रण आदि को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ रही हैं। कहीं पर भी गज़लकार ने विषय से इतर कोई बात नहीं कही है। यही कारण है कि प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लें लोगों को सहज ही अपना बना लेती हैं ...और पाठक को पूरी पुस्तक पढ़ने को विवश कर देती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

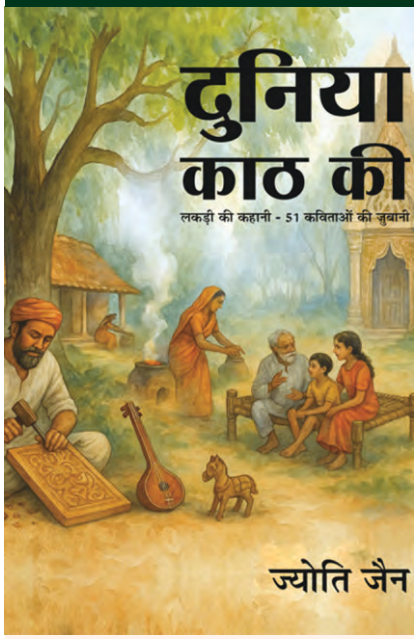

(कविता संग्रह)

दुनिया काठ की

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल- +91-9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

ज्योति जैन समकालीन कविता एवं कथा साहित्य की महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। ज्योति जैन के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। ज्योति जैन लघुकथा, कविता, व्यंग्य, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, निबंध आदि विधाओं में निरंतर लेखन कर रही हैं। कई पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित ज्योति जैन की रचनाएँ प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित ज्योति जैन का कविता संग्रह 'दुनिया काठ की' इन दिनों चर्चा में है। 'दुनिया काठ की' 51 कविताओं का ऐसा सघन और संवेदनशील संकलन है, जो साधारण प्रतीत होने वाली लकड़ी को जीवन, प्रकृति और मानवीय अनुभवों के व्यापक प्रतीक में रूपांतरित कर देता है। यह कृति केवल काव्य-पाठ नहीं, बल्कि एक ऐसी अनुभूति-यात्रा है, जिसमें पाठक अपने ही परिवेश, स्मृतियों और संबंधों को नए अर्थों में पुनः खोजता है। वरिष्ठ साहित्यकार ज्योति जैन ने अत्यंत सरल, किंतु मार्मिक भाषा में उस संसार को शब्द दिए हैं, जो हमारे बीच होते हुए भी अक्सर हमारी दृष्टि से ओझल रह जाता है।

जीवन का यह सत्य अत्यंत सरल, किन्तु गहन अर्थों से परिपूर्ण है कि उसकी यात्रा काठ के पालने से आरंभ होकर काठ की चिता तक पहुँचती है। जन्म के कोमल स्पर्श से लेकर मृत्यु की अंतिम निस्तब्धता तक, 'काठ' मनुष्य के साथ एक मौन सहयात्री की तरह उपस्थित रहता है। वह केवल एक पदार्थ नहीं, बल्कि जीवन-चक्र का प्रतीक बन जाता है। इस संग्रह में 'काठ' एक केन्द्रीय बिंब के रूप में निरंतर उपस्थित है - जंगल की असीम हरितिमा से लेकर औज़ारों के रूप में ढलते श्रम तक और वहाँ से जीवन के सांस्कृतिक व दार्शनिक विस्तार तक। यह यात्रा केवल पदार्थ की नहीं, बल्कि सभ्यता के विकास, श्रम की गरिमा और मनुष्य-प्रकृति के गहरे, सहजीवी संबंध की भी कथा है। कविताएँ मेहनतकश जीवन के यथार्थ को जिस आत्मीयता से सामने लाती हैं, वह पाठक के भीतर एक सहज सम्मान और संवेदना का संचार करती हैं।

भाषा इस कृति की सबसे बड़ी शक्ति है। यहाँ शब्दों का आडंबर नहीं, बल्कि अर्थों की गहराई है। सरल शब्दों में व्यक्त जटिल जीवन-दर्शन पाठक तक बिना किसी बौद्धिक बोझ के पहुँचता है। ये कविताएँ शोर नहीं करतीं, बल्कि एक शांत, मृदुल प्रवाह की तरह मन में उतरती हैं और पढ़ने के बाद भी देर तक भीतर गूँजती रहती हैं। यही उनकी स्थायित्व-शक्ति है।

संग्रह की विविध कविताएँ जीवन के अनेक आयामों को उजागर करती हैं। 'चौखट-2' कविता अपनी सादगी में ही गहरे सांस्कृतिक अर्थ समेटे हुए है। 'मेहँदी रचे पाँव' और 'धान्य कलश' जैसे बिंब नववधू के आगमन को शुभता और समृद्धि से जोड़ते हैं, वहीं उसे लक्ष्मी का रूप मानना भारतीय परंपरा को सजीव करता है। चौखट का मानवीकरण इसकी विशेषता है। वह एक प्रतीक्षारत सजीव इकाई बनकर उभरती है, जो नववधू के आगमन से घर के पूर्ण होने का भाव देती है। 'लाँघ के देहरी...' पंक्तियाँ घर की ख़ुशहाली को नववधू से जोड़ती हैं, जिसमें पारंपरिक दृष्टि की झलक मिलती है। सरल भाषा और स्पष्ट बिंबों के कारण कविता सहज ही मन को स्पर्श करती है। कुल मिलाकर यह रचना भाव, परंपरा और आत्मीयता का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती है। 'खिलौने बर्तन' कविता अपने छोटे-से आकार में बचपन, स्मृति और सामाजिक संरचना का अत्यंत सघन चित्र प्रस्तुत करती है। 'खिलौने-बर्तन' केवल बाल-खेल की वस्तुएँ नहीं रह जाते, बल्कि वे जीवन की प्रारंभिक समझ और भावी गृहस्थी की प्रतीकात्मक नींव बन जाते हैं। 'लकड़ी के छोटे-छोटे बर्तन' और 'रोटा-पानी खेलना' जैसे बिंब बचपन की सहजता और कल्पनाशील संसार को जीवंत करते हैं। इन खिलौनों में 'पूरी की पूरी गृहस्थी' का समावेश यह संकेत देता है कि खेल-खेल में ही बच्चे जीवन के सामाजिक ढाँचे को आत्मसात करना आरंभ कर देते हैं। कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह खिलौनों को केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं रहने देती, बल्कि उन्हें सांस्कृतिक और पारिवारिक संस्कारों के प्रतीक में बदल देती है। 'कैरम बोर्ड' जीवन में अनुशासन, संतुलन और लक्ष्य-साधना का सशक्त रूपक बनती है, जबकि पेंसिल ज्ञान, शिक्षा और संस्कार की यात्रा को एक सरल किंतु प्रभावी प्रतीक में रूपायित करती है। 'खड़ाऊँ' में साधारण वस्तु के माध्यम से आस्था और

आध्यात्मिकता का गहन बोध उभरता है, जो भारतीय सांस्कृतिक चेतना की जड़ों से जुड़ता है। 'ताँगा' बीते समय की सादगी, सामूहिकता और जीवन की मंथर लय का स्मृतिमय चित्र प्रस्तुत करती है, जहाँ यात्रा केवल दूरी तय करना नहीं, बल्कि संबंधों और अनुभवों को जीना भी था। 'क्रिकेट बैट' कविता एक साधारण 'लकड़ी के बैट' के माध्यम से माँ-बेटे के गहरे भावनात्मक संबंध और स्मृतियों की दुनिया को उजागर करती है। बैट में बेटे की बचपन की ऊर्जा और माँ के लिए उसकी स्मृतियाँ जीवित रहती हैं, इसलिए वह उसे आज भी सहेजकर रखती है। समय के साथ बेटा बड़ा हो जाता है और उस भावनात्मक जुड़ाव को भूल जाता है, जिससे एक सूक्ष्म पीड़ा उत्पन्न होती है। 'क्या बेटे का दिल काष्ठ का था?'- यह प्रश्न पूरी कविता को संवेदनशील आत्ममंथन में बदल देता है। 'पतंग की घिर्री' कविता संदेश देती है कि मज़बूत सहयोग, विश्वास और जुड़ाव से ही कोई भी लक्ष्य ऊँचाइयों तक पहुँच सकता है। जैसे घिर्री और माँझा मिलकर पतंग को उड़ाते हैं, वैसे ही जीवन में भी रिश्तों और सहयोग से सफलता मिलती है। 'ओखली-मूसल' कविता सन्देश देती है कि पुराने समय की ओखली-मूसल जैसी परंपराएँ केवल काम करने के साधन नहीं थीं, बल्कि उनमें जीवन की सादगी, स्वास्थ्य, मिल-जुलकर काम करने की भावना और ख़ुशी जुड़ी हुई थी। उस समय काम करते हुए लोग गीत गाते थे और आपसी जुड़ाव महसूस करते थे। आज के आधुनिक समय में सुविधाएँ तो बढ़ गई हैं, लेकिन वह प्राकृतिक, सरल और सामूहिक जीवन शैली धीरे-धीरे कम होती जा रही है, जिससे लोगों की देह खोखली होती जा रही है।

इस काव्य-संग्रह का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह हमें यह समझने की दृष्टि देता है कि लकड़ी मनुष्य के जीवन के प्रत्येक चरण में किस प्रकार सहयात्री बनी रहती है- जन्म के पालने से लेकर अंतिम संस्कार तक। इस प्रकार 'काठ' जीवन की सम्पूर्ण चक्र-यात्रा का मौन साक्षी बनकर एक गहरी दार्शनिक अर्थवत्ता अर्जित कर लेता है। पुस्तक में प्रत्येक कविता के साथ संलग्न चित्रांकन इसकी सौंदर्य-सम्पन्नता को और भी समृद्ध करता है। शब्द और चित्र का यह संतुलित संयोजन पाठकीय अनुभव को बहुआयामी बनाता है, जिससे कविता केवल पढ़ी नहीं जाती, बल्कि देखी और महसूस भी की जाती है। 'दुनिया काठ की' अपनी सादगी में ही अपनी विशिष्टता को स्थापित करने वाली कृति है। यह पाठक को जीवन की मूलभूत सच्चाइयों, प्रकृति के महत्त्व और साधारण वस्तुओं में निहित असाधारण अर्थों के प्रति जागरूक करती है। यह संग्रह न केवल पढ़ा जाता है, बल्कि भीतर एक धीमी, दीर्घकालिक अनुभूति की तरह बस जाता है और यही इसकी सबसे बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है। इस संकलन की कविताएँ गद्य शैली में लिखी गई हैं, लेकिन इन कविताओं में वह रवानी वह बहाव है जो दिल को छू लेती हैं। लेखिका ज्योति जैन का दृष्टिफलक विस्तृत है। इनकी रचनाओं में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क में गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। इन कविताओं में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। लेखिका ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपनी इन कविताओं में किया है। संग्रह की सभी रचनाओं में जीवन दर्शन है। इन रचनाओं में मानव जीवन के विविध पक्ष- सुख-दुख, आशा-निराशा, संबंधों की मधुरता, श्रम का महत्त्व, प्रकृति से जुड़ाव तथा सामाजिक परिवर्तन सूक्ष्म रूप से समाहित रहते हैं।

प्रत्येक कविता किसी न किसी रूप में हमें जीवन को देखने, समझने और उसे बेहतर ढंग से जीने की दिशा प्रदान करती है। इनमें छिपा जीवन दर्शन हमें यह सिखाता है कि जीवन केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें संवेदना, सहयोग, परंपराओं का महत्त्व और मानवीय मूल्यों की भी बड़ी भूमिका होती है। ये रचनाएँ अतीत की सादगी और वर्तमान की जटिलताओं के बीच तुलना कर हमें आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती हैं।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 10 मार्च 2026

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

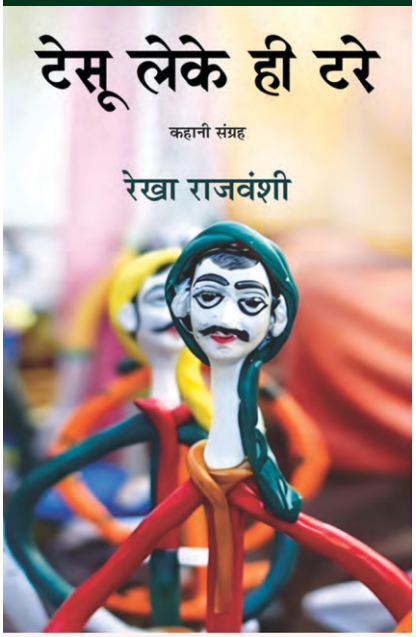

(कहानी संग्रह)

टेसू लेके ही टरे

समीक्षक : मधु संधु
लेखक : रेखा राजवंशी
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल- +91-9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. मधु संधु
13 प्रीत विहार, आर. एस. मिल, जी. टी. रोड, अमृतसर, 143104, पंजाब
मोबाइल- 8427004610
ईमेल- madhu_sd19@yahoo.co.in

'टेसू लेके ही टरे' विगत 24 वर्षों से बहुसांस्कृतिक देश आस्ट्रेलिया में, कंगारुओं की धरती पर रह रही भारत की प्रवासी कहानीकार, कवयित्री, गजलकार, संपादक, अनुवादक, शिक्षिका और पत्रकार रेखा राजवंशी का 2026 में प्रकाशित कहानी संकलन है। 1999 में 'अनुभूति के गुलमोहर', 1911 में 'कंगारुओं के देश में', 1923 में 'जीवित रहेगी स्त्री' काव्य संग्रह, 2016 में 'मुट्ठी भर चाँदनी', 2024 में 'इश्क है, ख्वाब है, कहानी है' गजल संग्रह के अतिरिक्त कहानियों, लघुकथाओं, लोककथाओं, बाल साहित्य पर भी उनकी अनेक रचनाएँ आ चुकी हैं। 'टेसू लेके ही टरे' में उनकी दस कहानियाँ हैं- 'टेसू लेके ही टरे', 'घंटियाँ', 'सपने और सच्चाई', 'मेन टू', 'वापसी', 'आर्नी', 'नई शुरुआत', 'सूर्य की तलाश', 'मुक्ति', 'मिस्टर एक्स'।

इन कहानियों में प्रवासी मन की पीड़ा, सांस्कृतिक चित्र, सम्बन्धों के घेरे, नियति के घात, बहुमुखी चुनौतियाँ, अतीत की भावुक स्मृतियाँ और अपने देश की याद अधिकांशत: यहाँ- वहाँ बिखरी हैं।

'टेसू लेके ही टरे' में सिडनी में भारतीयों द्वारा मनाए जा रहे दशहरे का पर्व और टेसू का गीत लेखिका की अनंत देशीय स्मृतियों को जीवंत कर देता है और भावुक मन जालौन जिले के उरई शहर की अतीत यात्रा पर चला आता है। यहाँ दादा- दादी का सर्राफा, आढ़तिया कारोबार, साबो/ सावित्री बुआ, चाचियाँ, भाभी और संयुक्त परिवार के अनेक बच्चे हैं। यह संकलन की सबसे सशक्त कहानी है। 'टेसू लेके ही टरे' में दशहरा पर्व पर टेसू और झाँझी के विवाह की उस लोक कथा का उल्लेख है, जिसके बाद देश में शादियों का सीजन आरंभ होता है। जन्माष्टमी को मंदिरों में बनने वाली झाँकी बर्फ की सिल्लियों से बनाए गए कैलाश पर्वत का भी अंकन है। कहानी में महाभारत के भीम के बेटे घटोत्कच के बेटे बर्बरीक का उल्लेख है। 'टेसू लेके ही टरे' में भारत पाक युद्ध में पिता की रीढ़ में बम का छर्रा अटकना और सरकार की हृदयहीनता का उल्लेख है। त्रासदी यह है कि घर के बच्चे अनाथ और बोझ हो जाते हैं, कान्वेंट स्कूलों से निकालकर अनाथों की तरह परिवार के अन्य सदस्यों में बाँट दिये जाते हैं।

'घंटियाँ' में आस्ट्रेलिया का जुलाई का महीना, लगातार बारिश, तेज़ हवाओं, सर्दी/ जुकाम और हड्डियों में चुभने वाली ठंड है। अपूर्व और श्रेया दशकों पहले इस देश में आए थे। नौकरी, मकान, बच्चों की शादियाँ- सब काम निपटा चुके हैं। अपूर्व को टिटिनस की लाइलाज बीमारी हो जाती है। साउंड थेरेपी या ब्रेन ट्रेनिंग से इसका कुछ उपचार तो किया जा सकता है, पर इसका कोई इलाज नहीं। अपूर्व अंतत: इसे जीवन संगीत मान लेता है।

'मुक्ति' में पार्किंसन पीड़ित, परावलम्भी, बेबस, दयनीय, लाचार, अस्सी वर्षीय वृद्ध पति; थकी-हारी, भयभीत पत्नी और पच्चास वर्ष लंबे वैवाहिक जीवन के बेपनाह प्यार की अनंत स्मृतियाँ हैं; जिनमें आर्थिक ऊँचाइयाँ, बेटा, विश्व भ्रमण, क्लब, दावतें, फोटोग्राफी तथा और भी बहुत कुछ है। कहानी उस पत्नी की है जिसके पति को बीमारी ने इतना बेबस, आत्मकेंद्रित और असुरक्षित कर दिया है कि हर समय की उपस्थिति और टहल उसे चूर-चूर कर मानों किसी अदृश्य बीमारी से पीड़ित कर देती है, यहाँ तक कि वह मुक्ति की कामना करने लगती है।

'मिस्टर एक्स' सिडनी के इटैलियन रेस्टोरेन्ट में काम करने वाली उस लूचिया की कहानी है, जिसे पाँच वर्ष पहले रोम छोड़ना पड़ा था। डॉक्टर बनने की चाह रखने वाली लूचिया को क्रूर आर्थिक स्थितियाँ/ ग़रीबी कालगर्ल बना देती हैं। इसे एक अनाम डिटेक्टिव और काल गर्ल की प्रेम कहानी कह सकते है। यहाँ उस समय का वर्णन है, जब रोम में हर ओर बम धमाके, विस्फोट, अंतर्राष्ट्रीय जासूसी नेटवर्क, भ्रष्टाचार, संगठित अपराध, माफिया, राजनीतिक साज़िशों का बोलबाला था- 'रोम बदल रहा है। राजनीतिक अस्थिरता है। एक रिपब्लिक से एंपायर बन गया है, पावर रिप्रेजेंटेटिव डेमोक्रेसी से हटकर एक सेंट्रलाइज्ड इंपीरियल अथॉरिटी में बदल गई, जिसमें सम्राट के पास सबसे ज़्यादा पावर थी।'

'सपने और सच्चाई' के रमन और लक्ष्मी अट्ठाईस वर्ष पहले ख़ाली हाथ (रे और लैक्स) कंगारूओं की धरती पर उतरे थे। आज वे अनेक मोटलों के मालिक हैं। अपना घर है, उच्च

शिक्षित बच्चे सूर्या और शीला हैं। लगता मानों सब कुछ पा लिया। पाँव तले से ज़मीन तब खिसक जाती है, जब बेटा ड्रग लेने और ड्रग का धंधा करने लगता है और बेटी बताती है कि वह 'लेस्बियन' है। लीना उसकी पार्टनर है। वह उससे प्यार करती है। अगर घर में संवाद बंद हो जाएँ तो बच्चे बाहर अपनी ख़ुशियाँ ढूँढ़ने लगते हैं। सच छुपाने लगते हैं। घर वह होता है जहाँ बच्चे बिना डर के अपना सच बाँट सकें। जहाँ गिरने वाले को हाथ पकड़ उठाया जा सके- 'सपने वह भी होते हैं, जहाँ आपके बच्चे, अपनी-अपनी सच्चाइयों के साथ, आप के पास लौट सकें। जहाँ वे ख़ुश रह सकें।'

'सूर्य की तलाश' को स्त्री उत्पीड़न की कहानी कह सकते हैं। कहानी की मारग्रेट जीवन भर सूर्य की उस रोशनी के स्थायीत्व को ढूँढ़ती रहती है, जो कभी उसके पास टिक नहीं पाती। उसकी पहली शादी डेविड से हुई और वह उसके चार बच्चों की माँ बनी। लेकिन दिन-रात के गाली-गलौच और मारपीट से तंग आकर वह उसे छोड़ देती है। दस साल बाद वह न्यूजीलैंड की नेवी में काम करने वाले जैकब के संपर्क में आती है, जो उसकी प्रेग्नेंसी का सुन हमेशा के लिए चला जाता है। सोलह वर्ष बाद वह तीसरी शादी अपने से 19 वर्ष छोटे ईरान के इमरान से करती है और वह ड्रग एडिक्ट निकलता है। जीवन के यह दाँव-पेंच इतने भारी पड़ते हैं कि उसकी असमय मृत्यु हो जाती है।

'सूर्य की तलाश' कहानी कहती है कि बच्चों के लिए माँ ही रोशनी होती है। मारग्रेट के बच्चे उससे नफ़रत करते हैं, क्योंकि बच्चों को रोशनी/ संरक्षण माँ ही दे सकती है। उसके घर छोड़ देने पर बड़ी बेटी को दिन में छोटे भाई-बहनों का हर दायित्व निभाना पड़ता है और रात में पिता के मित्र के रेप का शिकार होना पड़ता है।

'मेन टू' पुरुष उत्पीड़न या पुरुष विमर्श की कहानी है। 32 वर्षीय सोफ़्टवेयर इंजीनियर आरव मेहता विगत दस वर्ष से सिडनी में अकेला रह रहा था। माता पिता अकेलेपन से निजात दिलाने के लिए भारत की प्रीति से उसकी शादी करते हैं। जीवन सामान्य चल रहा था, लेकिन रेसिडेंसी मिलते ही प्रीति बदल जाती है। मारपीट के झूठे आरोप कुछ ऐसे लगाती है कि आरव को जेल हो जाती है, सामाजिक प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है, नौकरी छूट जाती है, तलाक़ के कारण आधी संपत्ति उसे देनी पड़ती है। किराये के छोटे से अपार्टमेंट में रहना पड़ता है। 'व्हाइट रिबन' और 'बियोंड ब्लू' संस्थाओं के संपर्क आते ही उसकी मुलाक़ात चार्ल्स, जैक, माइकल, बलजिंदर जैसे अनेक ऐसे लोगों से होती है, जिनकी पत्नियों और प्रेमिकाओं ने उन पर शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, आर्थिक अत्याचार किए हैं। देखता- सोचता है- 'कौन कहता है कि सिर्फ महिलाएँ घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं, यहाँ तो महिलाओं ने ही पुरुष अत्याचार की पराकाष्ठा कर रखी है।' वह मेल राइट्स वालन्टियर बन सेमिनारों में बोलता है, लिखता है और पीड़ित पुरुषों की मदद करता है।

विदेश जाकर व्यक्ति अपने गाँव, घर, शहर, देश लौट तो नहीं पाता, पर व्यक्ति और वस्तु- दोनों उसे सदैव घेरे रखते हैं। 'वापसी' का महावीर चौबीस की उम्र में सिडनी आया था और फिर पूरा जीवन यहीं बिता दिया। पत्नी की मृत्यु और बच्चों के अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हो जाने के बाद वह डिमेन्शिया की चपेट में आ जाता है। आस्ट्रेलिया की सारी यादें मिट जाती हैं और पुरानी यादें उजली होने लगती हैं। डिमेन्शिया दशकों बाद उसे पिता के खेतों, माँ के चूल्हे, हँसती- बतियाती बहनों की यादों के मेले में वापसी करा देता है, उसका बुढ़ापा छीन बचपन लौटा देता है।

'नई शुरुआत' की मीरा और रोहित के जीवट की कहानी है। उन्हें सिडनी आए 22 वर्ष हो चुके हैं। जीवन मज़े से चल रहा था कि अचानक मीरा अफेशिया- वाचाघात रोग की शिकार हो जाती है- यानी जीभ, होंठ और दिमाग़ के बीच संतुलन टूट जाता है। अस्पताली इलाज के बाद भी उसे स्पीच थेरेपी, फ़िज़ियोथेरेपी, आक्युपेशनल थेरेपी के लिए ले जाया जाता है। पति और बेटी का साथ उसकी मदद करते हैं। यहाँ अपने जैसे लोगों के बीच रह कर आत्मविश्वास लौटने लगता है। कहानी का संदेश यही है कि शब्दों को खोकर भी जीवन की भाषा सीखी जा सकती है-

'मैं.... गिर गई थी.... लेकिन .... अब उठ गई हूँ।

धीरे... पर... चल रही हूँ।

और .... मैं.... अकेली नहीं हूँ।

आप सब मेरे साथ हैं।'

'आर्नी' पशु प्रेम/ संरक्षण की कहानी है। जर्मन शेफर्ड 'आर्नी' ही एनी की फैमिली है। वह आस्ट्रेलिया के क्वीन्सलैंड राज्य की राजधानी ब्रिस्बेन के सबर्ब विनम में रहती है और आर्नी तीन साल से उसके साथ है। आर्नी के प्रति एनी का लगाव, प्रेम उसके बॉय फ्रेंड से बर्दाश्त नहीं होता। वह उसे कार में बंद कर कार वैली की तरफ़ धकेल देता है। दिनों बाद आर्नी का मृत शरीर मिलता है। एनी का जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जाता है, जो तब तक सामान्य नहीं हो पाता जब तक उसे माँ एक छोटा सा पपी होप नहीं भेंट करती। कहानी पशु प्रेम, पशु संरक्षण पशुओं के प्रति आत्मीयता का स्वर लिए है। पुस्तक बंद करने के बाद भी कुछ वाक्य मस्तिष्क में हलचल मचाये रखते हैं।

'टेसू लेके ही टरे' की कहानियाँ देशी विदेशी जीवन के, नारी और पुरुष विमर्श तथा उत्पीड़न के, युवा और वृद्धावस्था के, स्वस्थ और रुग्ण शरीर के, संघर्ष और क्षमता के, नियति और जीवट के, देश- प्रशासन और राजनीति के अनेकानेक चित्र लिए हैं। पात्र सपनों का महल बनाने के लिए आस्ट्रेलिया आते हैं, बना भी लेते हैं। पर कहानीकार की दृष्टि क्या खोया क्या पाया का लगातार आकलन कर रही है। यहाँ संस्कृत के श्लोक/ मंत्र भी आए हैं। 'मिस्टर एक्स' में इतालवी भाषा के वाक्य और गीत हैं।

संदर्भ: रेखा राजवंशी, टेसू लेके ही टरे, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2026, पृष्ठ 98, वही, पृष्ठ 41, वही, पृष्ठ 50, वही, पृष्ठ 75, वही, पृष्ठ 18, वही, पृष्ठ 22, वही, पृष्ठ 24, वही, पृष्ठ 26, वही, पृष्ठ 77, वही, पृष्ठ 81, वही, पृष्ठ 97,

000

पुस्तक समीक्षा

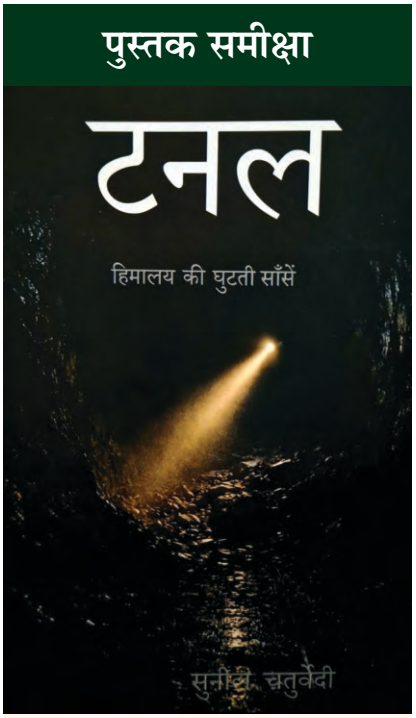

(उपन्यास)

टनल

समीक्षक : डॉ. यशोधरा भटनागर

लेखक : सुनील चतुर्वेदी

प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, हापुड़

यशोधरा भटनागर
152, अलकापुरी,
देवास, मप्र- 455001
मोबाइल- 9425306554
ईमेल- yashodharabhatnagar@gmail.com

हिमालय की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले सुंदरलाल बहुगुणा, एवं विमला देवी सहित उन सभी ज्ञात एवं अज्ञात योद्धाओं को समर्पित सुनील चतुर्वेदी का उपन्यास 'टनल (हिमालय की घुटती साँसें)' केवल एक दुर्घटना का आख्यान नहीं, बल्कि उस पूरे समय का दस्तावेज़ है जब विकास के लिए अधीर आकांक्षाएँ,प्रकृति की धड़कनों पर भारी पड़ती जा रही है। यह एक बहुआयामी उपन्यास है जिसमें सामाजिक यथार्थ है, पर्यावरणीय चेतना है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवीय संवेदनाएँ हैं।

सिल्क्यारा टनल दुर्घटना में निर्माणाधीन टनल का एक हिस्सा ध्वस्त हो गया था और 41 मज़दूर भीतर फँस गए थे। लेखक इस घटना को महज़ एक 'इंसिडेंट' की तरह नहीं लेते, बल्कि इसे एक बड़े विमर्श का प्रवेश-द्वार बना देते हैं- वह विमर्श है हिमालय और विकास के टकराव का।

यहाँ हिमालय केवल भौगोलिक संरचना नहीं बल्कि एक जीवित इकाई है, एक ऐसा अस्तित्व है जिसकी अपनी संवेदनाएँ, सीमाएँ और संतुलन हैं। लेखक हिमालय के अस्तित्व, उसकी नाज़ुक संरचना और उस पर थोपे जा रहे विकास के मॉडल की गहराई से पड़ताल करते हैं। लेखक भूविज्ञान के विशेषज्ञ हैं, इसलिए उपन्यास में वैज्ञानिक दृष्टि और संवेदनशीलता का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। 'टनल' केवल भावनात्मक कथा नहीं, बल्कि तथ्य और अनुभव से उपजी चेतावनी भी है।

सुनील चतुर्वेदी केवल भावनात्मक अपील नहीं करते, बल्कि वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर बताते हैं कि हिमालय क्यों इतना संवेदनशील है- यह दुनिया की सबसे युवा पर्वत श्रृंखला है, यह अब भी अपने बनने की प्रक्रिया में है। इसमं: अत्यधिक कटान और निर्माण गतिविधियाँ प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ देती हैं।

उपन्यास का वैचारिक केंद्र 'चुगान' और 'कटान' के द्वंद्व में निहित है। 'चुगान'अर्थात उतना ही लेना, जितना जीवन के लिए आवश्यक हो; और 'कटान' अर्थात जितना संभव हो उतना छीन लेना। यह द्वंद्व दरअसल दो युगों का संघर्ष है- एक वह, जहाँ मनुष्य प्रकृति के साथ सहोदर की तरह रहता था और दूसरा वह, जहाँ वह स्वामी बन बैठा है। सुनील चतुर्वेदी इस रूपक के माध्यम से विकास की वर्तमान अवधारणा पर गहरा प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं।

उपन्यास की संरचना अत्यंत रोचक और प्रभावी है। इसमें दो कथावाचक हैं- मुख्य कथावाचक जो टनल दुर्घटना, रेस्क्यू ऑपरेशन और उससे जुड़े घटनाक्रम को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करता है। दूसरा कथावाचक एक बूढ़ा रहस्यमय व्यक्ति है। यह चरित्र उपन्यास की आत्मा है। बूढ़ा टनल की घटना के साथ-साथ पहाड़ के लोकजीवन, परंपराओं और स्मृतियों को जोड़ता चलता है। वह लोककथाओं और अनुभवों के माध्यम से पहाड़ का इतिहास और संस्कृति सामने लाता है। उसकी बातें रहस्यमयी और गहरी हैं। इस बूढ़े के स्वर में कहीं-कहीं स्वयं हिमालय का थका, चेतावनी देता अडिग स्वर सुनाई देता है। यह द्वि-स्तरीय कथन शैली उपन्यास को केवल घटना-प्रधान नहीं रहने देती बल्कि उसे दार्शनिक और प्रतीकात्मक ऊँचाई देती है।

लेखक ने टनल के भीतर फँसे मज़दूरों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। एक ओर अँधेरे में क़ैद जीवन, सीमित संसाधन, हर क्षण मृत्यु की आशंका फिर भी जीवित रहने की जिजीविषा है, वहीं दूसरी ओर टनल के बाहर परिजनों की व्याकुल प्रतीक्षा, प्रशासन और कंपनियों का दबाव, विशेषज्ञों की असफल कोशिशें हैं। यह द्वंद्व केवल भौतिक नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी है। लेखक यह दिखाते हैं कि विकास की चमक के पीछे कितनी अदृश्य पीड़ाएँ छिपी होती हैं।

उपन्यास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि अंतत: सफलता स्थानीय मज़दूरों (रेट माइनर्स) के अनुभव से मिलती है। यहाँ लेखक यह स्थापित करते हैं कि आधुनिक तकनीक महत्त्वपूर्ण है, लेकिन सर्वशक्तिमान नहीं। प्रकृति के साथ जीने वालों का अनुभव अधिक गहरा और कारगर होता है। यह विचार आज के 'टेक्नो-सेंट्रिक' विकास मॉडल पर एक सशक्त प्रश्नचिह्न है।

उपन्यास में मुख्य कथा के साथ उपकथाएँ और मानवीय आयाम भी सुदृढ़ता से से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। टनल में फँसे मज़दूरों की व्यक्तिगत कहानियाँ- उनकी ग़रीबी, परिवार की ज़िम्मेदारियाँ, बेहतर जीवन की तलाश। इन सबको लेखक ने उपकथाओं के रूप में नहीं, बल्कि मुख्य कथा के अभिन्न हिस्से के रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ 'चिपको आंदोलन' और उससे जुड़े पर्यावरणविदों जैसे सुंदरलाल बहुगुणा और चंडी प्रसाद भट्ट का उल्लेख कथा को ऐतिहासिक और वैचारिक गहराई प्रदान करता है- 'चिपका पेड़ों पर अब न कटेण / जंगलुकी संपत्ति अब न लुटेण / पहाड़ों मा बर्णोद्योगों से बड़ों लाभ / बनवासी जनता कुछ जागलु भाग'। लेखक यह संकेत देते हैं कि हमारे पास पहले से चेतावनियाँ थीं, आंदोलनों का इतिहास था लेकिन हमने उन्हें अनदेखा किया।

भाषा की दृष्टि से उपन्यास अत्यंत सहज और प्रवाहपूर्ण है। उपन्यास में आंचलिक भाषा का प्रयोग अत्यंत सरस और माधुर्य से पूर्ण है। वैज्ञानिक तथ्यों की उपस्थिति के बावजूद भाषा कहीं भी बोझिल प्रतीत नहीं होता। लोक-जीवन, पहाड़ी संस्कृति और मान्यताओं के चित्रण में एक आत्मीयता है, जो पाठक को उस भूगोल से भावनात्मक रूप से जोड़ देती है।

'टनल' का सबसे गहरा प्रभाव उसके प्रतीक में निहित है। यह सुरंग केवल पहाड़ के भीतर नहीं जाती, बल्कि वर्तमान की चेतना में भी उतरती है और पूछती है कि क्या हम सचमुच आगे बढ़ रहे हैं या अँधेरे में और गहरे धँसते जा रहे हैं? अंतत:'टनल' एक चेतावनी है कि यदि विकास का वर्तमान मॉडल प्रकृति सहचरी को एक दरकिनार कर जारी रहा, तो हिमालय जैसे संवेदनशील क्षेत्र गंभीर संकट में पड़ सकते हैं। यह उपन्यास हमें पुनर्विचार के लिए प्रेरित करता है कि विकास कैसा हो और किसके लिए हो? वहीं यह हमें सोचने के लिए विवश करता है कि क्या हम सच में विकास कर रहे हैं? हरे पेड़ों के शैदाई सुनील चतुर्वेदी का गन्ने की खोई से निर्मित कागज़ पर छपा 'टनल' (हिमालय की घुटती साँसें) उपन्यास समकालीन हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है, जिसे हर गंभीर पाठक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

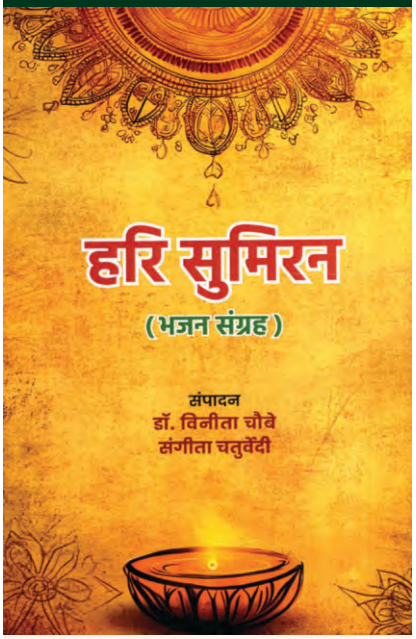

(लोक-भजन संग्रह)

हरि सुमिरन

समीक्षक : विनय उपाध्याय

लेखक : डॉ. विनीता चौबे, संगीता चतुर्वेदी

प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन, भोपाल, मप्र

विनय उपाध्याय
एम.एक्स. 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल 462016, मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

लोक स्मृति के पृष्ठों और लोक कंठ में बह रही कुछ अनश्वर आवाज़ों का छंद लिए विनीता चौबे सविनय पेश आई हैं। उनका अनुरागी मन लोक संस्कृति के लिए सदा ही उमगता रहा है। बीते दशक में उन्होंने ब्रज भूमि की धरोहर और उसके सांस्कृतिक इतिहास का हज़ारों पृष्ठों में भाष्य किया। ब्रज के ही संस्कार गीतों और वहाँ की पारम्परिक पाक-कला पर एकाग्र उनके ग्रंथों को विस्मयकारी लोकप्रियता मिली। इस तारतम्य में लोक प्रचलित भजनों के इस संग्रह का आना भी सुखद है। बेचैनी, बीहड़ और बदहवासी से बेज़ार इस भटकते दौर में भरोसे की उँगली थामते ये भक्ति पद निश्चय ही बेशकीमती सौगात हैं।

सुगंधित फूलों की इस अंजुरि में प्रेम है, करुणा है, विश्वास है, मनुहार है, निवेदन और समर्पण है। आराध्य और आराधक के बीच सुरीला संवाद है। ये भावनाओं और संवेदनाओं की पाँखुरियों से झरता पराग है। धन्यता का अहोभाव है। इतना सहज और आत्मीय, कि भगवान् और भक्त के बीच रज भर फासला भी नहीं। सच्ची भक्ति का रूप ऐसा ही निर्मल पावन होता है। विनीता चौबे के संग्रह के ये भजन परम्परा की पवित्र पुकार हैं। ये उन देव चरितों का बखान हैं जिनकी स्मृतियाँ सदियों से भारतीय लोक मानस को पखारती रही हैं। यहाँ आदिदेव शिव हैं, प्रथम पूज्य गणेश हैं, ज्ञान की देवी शारदा हैं, मर्यादा के प्रतीक श्रीराम और लीला पुरुष कृष्ण हैं, भक्ति के पर्याय पवन पुत्र हनुमान हैं, तुलसी और उनके शालिग्राम हैं। दिलचस्प यह कि इन सभी अवतारों की महिमा आस्था के आख्यान में, पौराणिक कथाओं और घटना-प्रसंगों की रोचक शृंखला में लयबद्ध हैं। इन पदों का पाठ करते हुए आत्मा में एक आदिम संगीत गूँजता है। ये मनोरम अनुगूँज पुरखों से मिली वह विरासत है जिन्हें कभी उन्होंने अपने जीवन के रंगमहल में सुख-दुख के क्षणों में गाया था। कभी भोर के उजास में, कभी संध्या पूजा के मुहूर्त में, तो कभी गहराती रात के एकांत में बुझे मन को रमाने इन्हीं छंदों का छोर थामा था। कभी किसी मंदिर के परकोटे में, कभी घर-आँगन-चौबारे, तो कभी गली-मोहल्ले की मंडलियों में ढोलक-झाँझ-खड़ताल की संगत में आनंद की यह हिलोर परवान चढ़ती। सूर, तुलसी, मीरा, दादू, नानक और ब्रह्मानंद जैसे संत कवियों से लेकर अनाम-अज्ञात भक्तों की रूह से फूटी भक्ति की यह लहर समय की अविराम-अनंत यात्रा और पीढ़ियों का पाथेय बनती गई।

भक्ति की लोक भूमि और लोक की संत परंपरा पर विचार करते, सबसे पहले हमारा ध्यान लोक की सांस्कृतिक परम्परा पर जाता है। ब्रज की लोक संस्कृति के बिना सूरदास और अष्टछाप के कवियों की रचनाएँ कैसे संभव होती? राजस्थानी लोक संस्कृति के आधार के बिना मीरा की वाणी कैसे संभव हो सकती थी? क्या हम अवधी लोक सांस्कृतिक परम्परा के बिना तुलसी और 'रामचरित मानस' की कल्पना कर सकते हैं? अभिप्राय है कि हमें लोक में 'भक्ति' और संतों के साहित्य का सार समझने उसमें निहित 'आध्यात्मिक' आधार को लोक की संस्कृति के भीतर ही समझना होगा। लोक की ज्ञान परम्परा का आधार व्यावहारिक जीवन और आचरण है। उसी के अनुभव से लोक का ज्ञान और सांस्कृतिक परम्परा निर्मित हुई है, यहाँ तक कि उसका 'आध्यात्मिक ज्ञान' भी व्यावहारिक जीवन के अनुभव के भीतर से ही अपने को प्रकट करता है। अर्थात सांस्कृतिक परम्परा को सारा समाज जीता है, रचता है, संरक्षित करता है और उसे अधिक समृद्ध तथा अर्थपूर्ण बनाकर अगली पीढ़ियों को सौंप देता है। यह प्रकट सत्य है कि भारत में आध्यात्म और आध्यात्मिक ज्ञान परम्परा एक सांस्कृतिक परम्परा और उसके बोध में रूपान्तरित कर दी गई है। पूर्वजों की यह थाती भारत की महान् वाचिक परंपरा का अमर उपहार है। बोले गए, गाये गए शब्द की सांस्कृतिक यात्रा में यहाँ लोक मन अपने पंख पसारता है और विपदाओं को चुनौती देता अपनी परिधि में त्राण पाता है। ये भजन, मन ही मन धुनों में जागते हैं और दुर्निवार परतों को भेदकर हमारी आत्मा के आसन पर शुभ की, मंगल की प्रतिष्ठा करते हैं। जिस देशज ज्ञान की टोह में हमारी अकादेमिक उर्जा सांस्कृतिक मूलाधारों की ओर लौटने को लालायित है उसे इस पोथी के पन्ने अवश्य बाँचने चाहिए।

000

(शोध आलेख)

मुरारी गुप्ता के कथा साहित्य में युगीन संवेदना के स्वर

डॉ. विजेयता चारण

समकालीन कथा साहित्य में युवा लेखकों की रचनाधर्मिता में राजस्थान के कथाकार मुरारी गुप्ता का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन्होंने कहानी और उपन्यास विधा के माध्यम से साहित्यिक जगत् में प्रभावशाली दस्तक दी है। एक दशक पूर्व उनके कहानी संकलन 'मोगरी' का हिन्दी साहित्य संसार में जिस तरह स्वागत हुआ था, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि राजस्थान के इस युवा लेखक की यात्रा साहित्य की मुख्यधारा की यात्रा के साथ अब अनवरत जारी रहेगी और वे अपने कथा साहित्य के माध्यम से हिन्दी पाठकों को नए विषयों की तरफ़ अपना ध्यान आकर्षित करेंगे। कालान्तर में ऐसा ही हुआ।

कहानीकार पंकज सुबीर ने मुरारी गुप्ता के कहानी संकलन 'मोगरी' की कहानियों को हिन्दी कहानी की नई सुखद यात्रा की शुरुआत माना है। वे लिखते हैं- 'भाषा, शैली, पात्र, विषय जैसे अलग-अलग मापदंड पर इनकी कहानियाँ खरी उतरती हैं और इनकी कहानियों में कथा रस भरपूर मात्रा में है, और बिल्कुल सही तरीक़े से कहानियों की रोचकता को बढ़ाते हुए प्रवाहित है। सबसे अच्छी बात इन कहानियों में यह है कि बहुत सलीक़े से बातें कही गई हैं।'1

कहानी अथवा गल्प को कहने का अपना अंदाज़ अथवा सलीक़ा होता है, जो कि कथाकार के अंदाज़े-बयाँ में अनुशासन की तरह प्रकट होता है, यह बात मुरारी गुप्ता के यहाँ भरपूर देखने को मिलती है। इस बात की पुष्टि युवा कहानीकार और सिनेमाई पटकथा लेखक दुष्यंत करते हैं- 'मेरी नज़र में, मुरारी गुप्ता की ये कहानियाँ आज के मसाइल का हल पुरानी किताबों में नहीं ढूँढ़ते, वे आज में खड़े होकर अपने वक़्त को देखते हैं।'2

मुरारी गुप्ता के प्रथम कहानी संकलन 'मोगरी' में कुल चौदह कहानियाँ संकलित हैं। क्रमश- भोगाली, मोगरी, गोजरपट्टी की सरहद पर, एक था टाइगर, उनचास, कुम्भ का वनवास, कुफ़्र, वजूद, मौत का मेहमान, ख़्वाब, कमाऊ पूत, स्कूल बैग, सुनयना और अक्षा। ये कहानियाँ मानव जीवन के विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं से पाठकों को रू-ब-रू करवाती हैं। ख़ासतौर पर मानव के रागात्मक सम्बन्धों पर सूक्ष्म दृष्टि लेखक की गई है जिसमें विभिन्न भाव अपने सम्पूर्ण आवेग के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। इनकी कहानियाँ जहाँ एक ओर स्त्री पुरुष संबंध,परम्परागत चरित्र आधारित नैतिकता, यौन शुचिता, तमाम वर्जनाएँ और यौन मुक्ति जैसे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पड़ताल करती नज़र आती हैं, वहीं दूसरी तरफ़ लेखक का भोगा हुआ यथार्थ भी कुम्भ का वनवास और मौत का मेहमान जैसी मार्मिक कहानियों में अभिव्यक्त हुआ है।

स्कूल बैग कहानी के बाल पात्र वासु को पढ़कर मुंशी प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी ईदगाह के हामिद की याद ताज़ा हो जाती है। कहानी 'स्कूल बैग' तो प्रत्येक पाठक को अपने बचपन की याद ताज़ा करवाने के लिए पर्याप्त जान पड़ती है। वासु के स्कूल के सारे बच्चे नए फैंसी बैग लेकर आते हैं। ऐसे में उस मासूम का कुंठित होना स्वाभाविक है कहानी के अंत में माँ उसे समझाती है कि- 'बेटा अच्छा आदमी बनने के लिए इन थैलों और बैग की ज़रूरत नहीं है। इनमें रखी किताबों का ज्ञान होना ज़रूरी है।'3

'सुनयना' कहानी जहाँ ट्रांसजेंडर जैसी जटिल समस्याओं और सामाजिक अस्वीकार्यता के बीच परिजनों के द्वंद्व को अभिव्यक्त करने में पूर्णत: सफल रही है। इस कहानी में एक माँ का अंतर्द्वंद्व मार्मिकता से प्रकट हुआ है। 'सायना ने पूरे ज़ोर से सुनयना को अपनी छाती से चिपका लिया और दहाड़ मारकर रोने लगी, मेरी सुनयना को बचा लो... हे भगवान् ! ये कैसा न्याय है तेरा। वह बेसुध सी इकट्ठे हुए लोगों से मदद की गुहार करने लगी। वहाँ खड़े कई लोगों की रुलाई फूट गई।'4

आज के दौर में सांप्रदायिकता को संकीर्ण अर्थ में हिन्दू मुस्लिम तनाव से जोड़ा जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में मुरारी गुप्ता की कहानियाँ कुफ़्र और गोजरपट्टी कि सरहद में गहरी अभिव्यंजना व्यक्त हुई है जो कि लेखक की संवेदनशील दृष्टि को ज़ाहिर करती है। 'गोजरपट्टी की सरहद' कहानी में बहत्तर साल के अब्दुल रहमान की सूझ-बूझ और राष्ट्रभक्ति को दर्शाया गया है जो

डॉ. विजेयता चारण
सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग,
राजकीय मूक बधिर महाविद्यालय,
गांधीनगर, जयपुर- 302015, राजस्थान
मोबाइल- 9256960337

अपने आतंकी पुत्र अब्दुल कासिम पंडित की लाश को अकेले खच्चर गाड़ी पर लादकर उसके गाँव गोजरपट्टी की सरहद के पार जाकर दफ़नाकर किसी तरह के साम्प्रदायिक उन्माद की स्थिति से घाटी को बचाता है। उसका यह संवाद कश्मीर के चरमपंथी अलगाववाद और वहाँ के नागरिकों के देश के प्रति कर्त्तव्य को रेखांकित करता है और राष्ट्रभक्ति की सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाता है- 'तुम्हारी चिंता थी न कमांडर कि कासिम के जनाज़े के बहाने लोगों में सेना और मुल्क के प्रति नफ़रत पैदा नहीं हो। इसलिए इन बूढ़े कंधों पर बेटे के जनाज़े को अकेल ढो कर इस सुनसान और उजड़ पर लाया हूँ, जिससे कासिम की क़ब्र से आतंक की कोई चिंगारी नहीं निकल सके।'5

इस संकलन की प्रथम कहानी भोगाली में लेखक यौन शुचिता, नैतिकता, पवित्रता के जटिल द्वंद्व से झूलते पंडित मदन किशोर की मानस स्थिति को रेखांकित करने में सफल रहा है, वहीं बेल्जियम की युवती इलियाना के यौन सम्बन्धों की खुली मानसिकता को रेखांकित करने में लेखक ने बहुत सावधानी दिखाई है। बतौर पंकज सुबीर- 'भोगाली में भाषा और शिल्प के सुंदर प्रयोग से कहानी को उस दिशा में जाने से बचा लिया है, जिस दिशा में इस प्रकार की कहानियाँ अक्सर चली जाती हैं।'6

इस संकलन की प्रत्येक कहानी मानवीय जीवन से जुड़ी विभिन्न संवेनशील स्थितियों को शब्द सम्प्रेषित करने में पूर्णत: सफल रही है। यही एक लेखक का सच्चा दायित्व है। कहानियों की भाषा आमफहम है। ज़रूरत के अनुसार कहीं कहीं अंग्रेज़ी, उर्दू-फारसी शब्दों का इस्तेमाल भी हुआ है। कहानियों के चरित्र हमें बहुत जाने पहचाने से और करीबी लगते हैं। यह लेखक का सार्वभौमिक होना है और बड़ी सफलता भी है।

मुरारी गुप्ता के यात्रा संस्मरण 'चलो किसी लंबे सफ़र पे चलें' के शुरुआत में जीवन की क्षणभंगुरता के बीच यात्राओं के आनंद को उद्घाटित करते हुए ख़्वाजा मीर दर्द का यह शे'र उद्धृत है, गोया शायर की यह पंक्तियाँ पाठक को यात्राओं के जीवनसार के बारे में इंगित कर रही हों- 'सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल ज़िंदगानी फिर कहाँ, ज़िंदगी गर कुछ रही तो ये जवानी फिर कहाँ।'

कहानीकार, उपन्यासकार और यायावर लेखक मुरारी गुप्ता की नई यात्रा कथा- 'चलो किसी लम्बे सफ़र पर चलें' वर्ष 2021 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को हिन्दी पाठकों ने हाथों हाथ लिया। इस पुस्तक पर कई सुधिजनों ने साहित्यिक समीक्षाएँ लिखी।

यह पुस्तक मुरारी गुप्ता के इक्कीसवीं सदी के पहले दशक से दूसरे दशक की भारतवर्ष की कुल ग्यारह अलग-अलग जगह की यात्राओं का जीवंत दस्तावेज़ हैं। यह अरुणाचल प्रदेश के सूर्योदय से लेकर द्वारिका में अस्त होते सूरज तक की यात्रा है। यह अमरनाथ के पहलगाम के पहाड़ों लेकर दीव के समंदर की यात्रा है। यह यात्रा कश्मीर घाटी के चिनार कहानी कहती है। ईटानगर की ज़िंदगी की हलचलें बताती है। सिक्किम की रपटीली वादियों की बातें करती हैं। नेपाल के काठमांडु और कन्याम की ओस भरी ख़ूबसूरती दिखाती है। दार्जीलिंग के घूम और लामहट्टा जैसी अलहदा मगर ख़ूबसूरत क़स्बाई संस्कृति के दर्शन करवाती है। माउंटआबू की नक्की के प्रेम को तो शैल सुंदरी मसूरी के ग़ुस्से भर प्यार का अंदाज़ बयाँ करती है। इसमें दीव के समंदर का प्यार उमड़ता है। यह यात्रा सोमनाथ के ध्वंस और सृजन की गाथा सुनाती है। द्वारिकाधीश के कुरुक्षेत्र के ऐतिहासिक पराक्रम और द्वारिका में अमर प्रेम, दूरदृष्टा और भव्यता की निशानियों को छूती है।

इस पुस्तक की भूमिका में युवा कवि और समीक्षक डॉ. रेवंत दान लेखक की घुमक्कड़ी प्रकृति और उससे उपजे साहित पर लिखते हैं- 'घूमने का शौक और उस पर अखिल भारतीय सेवा में होने के कारण लेखक ने ख़ूब यात्राएँ की हैं। इन यात्राओं ने उन्हें देश को देखने और जानने का सुनहरा अवसर दिया है।'7

वैसे मुरारी गुप्ता के यात्रा वृत्तांत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। वह अपनी इन यात्राओं के माध्यम से पाठकों को उन स्थानों के रोमांच से रू-ब-रू करवाते रहे हैं। मूल रूप से मुरारी गुप्ता कहानीकार हैं, इसलिए उनकी यात्राओं में भारत के स्थानों के भूगोल और इतिहास से ज़्यादा उन स्थानों की दिलचस्प कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक को अलग तरह का रोमांच महसूस होता है। हिमाचल प्रदेश के धौलाधार पर्वतों पर काँगड़ा घाटी में स्थित करेरी स्थल की ट्रेकिंग लेखक मुरारी गुप्ता ने पिछले दिनों सपरिवार की थी। राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित उनके इस यात्रा संस्मरण में वे लिखते हैं कि- 'इस बार की यात्रा में हमने ट्रेकिंग की योजना बनाई। वैसे भी साल में एक बार आठ दस किलोमीटर ट्रेकिंग की जाए तो मन मस्तिष्क के साथ दिल और फेफड़े मज़बूत बने रहते हैं। प्रकृति को समझने, जानने और उसके साहचर्य के लिए ट्रेकिंग से बेहतर कुछ नहीं।' 8

वहीं जब लेखक भारत के सुदूर उत्तर पूर्व की अरुणाचल प्रदेश यात्रा पर होते हैं तो वहाँ के अनुभव अलग होते हैं। लेखक मुरारी गुप्ता को पहाड़ बहुत आकर्षित करते हैं। उनकी यात्रा में पहाड़ और उनकी ऊँचाइयों का विशिष्ट स्थान जान पड़ता है। वे अरुणाचल के पहाड़ों को देखकर कयास लगाते हैं कि कदाचित स्वर्ग का रास्ता भी ऐसे ही सुन्दर पहाड़ों से होकर गुज़रता है। गुहावाटी से तवांग तक की यात्रा के बारे में वे अरुणाचल प्रदेश की संस्कृति इतिहास भूगोल और वर्तमान परिप्रेक्ष्य इत्यादि सभी पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। तवांग में स्थित भगवान् बुद्ध की विशाल प्रतिमा और मंदिर के बारे में वे लिखते हैं- 'तवांग में हम बुद्ध की शरण में थे। इस स्थान से तवांग का ख़ूबसूरत नज़ारा दिखाई देता है। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर स्थित है तवांग मठ। क़रीब तीन सौ साल पहले बनी इस मठ में प्रवेश करते ही सैलानियों की नसों में शांति के कण घुल जाते हैं'।9

सिनेमा जगत् को आधार बनाकर हिन्दी, अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में दर्जनों उपन्यास लिखे और पढ़े गए हैं। सिनेमा जगत् के रुपहले पर्दे पर अभिनय करने वाले किरदारों का निजी जीवन भी किसी सिनेमा कथा से कम रोचक नहीं होता है। इस लिहाज से

बॉलीवुड के हीरो हीरोइन की निजी जीवन से संबंधित कहानियाँ हमेशा से समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में पाठकों की माँग के अनुरूप विशेष स्थान पाती रही है। कथाकार मुरारी गुप्ता ने रूपहले पर्दे की एक ऐसी ही सनसनीखेज मगर मार्मिक कहानी को हिन्दी जगत् के पाठकों से समक्ष उपन्यास विधा में अभिव्यक्त किए है।

समकालीन युवा कथाकार नवीन चौधरी के अनुसार 'सुगंधा' उपन्यास का फ़लक बहुत विस्तृत है- 'उपन्यास कालखंड के साथ साथ भूगोल के भी बड़े कैनवास पर गढ़ा गया है। उपन्यास की टेकिंग काफी मज़ेदार है। हिमाचल के छोटे से कस्बे छैलापुर से शुरू हुई एक मशहूर अभिनेत्री सुगंधा सुन्दरम की कहानी खाड़ी मुल्कों को पार करती हुई अमेरिका तक पहुँचती है। इसमें लेखक ने कश्मीर, आतंकवाद, यूरोपीय संघ, नाटो, जेहाद और लव जेहाद,सेक्स स्लेव, आतंकी तंजीमें, टेरर फंडिंग, ग्लैमरस शो और बॉलीवुड में फैल रही नशे की लत को अपनी कहानी का हिस्सा बनाया है।'10

इधर कुछ सालों से उपन्यास विधा में नए प्रयोग के चलते एक ख़ास ढर्रे के उपन्यास प्रकाशित होने लगे हैं, जिसमें यूपीएससी में चयनित किसी छात्र की परीक्षा प्रणाली और चयनित होने की सहज सरल यात्रा को इतना ज़्यादा महिमामंडित करके प्रस्तुत किया है कि समझदार पाठकों को लगने लगता है कि अगर एक परीक्षा में उतीर्ण होना इतना संघर्षशील है, तो मनुष्य जीवन के और न जाने कितने ही संघर्ष हैं, जो बुनियादी ज़रूरतों से जुड़े हुए हैं, जिनके अभाव में असंख्य लोग असमय चले गए और करोड़ों, जो आज भी रोटी कपड़ा और मकान से वंचित हैं, उनके संघर्ष को क्या नाम दिया जाएगा? जनवादी सरोकारों से जुड़े लेखक और समीक्षक की यह राय हो सकती है लेकिन कुछ ज्वलंत मुद्दे ऐसे हैं जिनसे देश दुनिया सहित पूरी मानवता पीड़ित है, उन वैश्विक संकट वाले विषयों पर बहुत कम लेखकों का ध्यान गया है। आतंकवाद, नशे का अंतरराष्ट्रीय कारोबार और धार्मिक कट्टरता ऐसे विषय है जिनसे सारी मानवता भुगत रही है। कथाकार मुरारी गुप्ता का ध्यान इस बेहद ज़रूरी मुद्दे पर गया और परिणाम स्वरूप सुगंधा जैसे रचना हिन्दी जगत् को प्राप्त हुई।

इस उपन्यास में सब कुछ है- रोमांच, रोमांस, थ्रिलर, सस्पेंस। वैश्विक आतंकवाद के इर्द गिर्द रची गई इस कहानी में वह समस्या भी समाहित है जिस पर हमेशा सिनेमा जगत् पर उँगलियाँ उठाई जाती हैं। अलग-अलग पृष्ठभूमि के कलाकारों के बीच पनपने वाली प्रेम कहानी इस उपन्यास की रीढ़ है। वैसे तो यह प्रेम कहानी ही इस उपन्यास की यूएसपी है, मगर प्रेम कहानी के इर्द-गिर्द कई तिलिस्मी दुनियाओं का दर्शन होता है। इस दुनिया की क्रूर सच्चाई से सामना करते हुए पाठक बरबस ही कभी रौद्र तो कभी करुण रस से आप्लावित होता है।

कवि और समीक्षक डॉ. रेवंत दान इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं कि- 'उनका यह उपन्यास वैसे तो एक अभिनेत्री की संघर्ष कहानी को कहता हुआ आगे बढ़ता है लेकिन असल में यह सिनेमा जगत् के उस सियाह चेहरे को सामने लाता है जिसमें सिनेमाई दुनिया का अंडरवर्ल्ड और आतंकवाद से रिश्ता और रुपहले परदे की दुनिया से अंडरवर्ल्ड और आतंकवाद के फलने फूलने की कई कहानियाँ सामने लाता है।'11

उपन्यास में एक जगह लोमहर्षक दृश्य आता है जिसमें चरमपंथी गुट के ट्रेनिंग कैम्प में अंतिम दिन लड़ाकों के लिए बंधक बनाई हुई लड़कियाँ बलात्कार के लिए छोड़ दी जाती हैं और उनको प्रशिक्षण देने वाला मुखिया लड़ाकों को कहता है- 'यह सब माल-ए-ग़नीमत है और तुम लोगों के लिए बख्शीस है। यह हुस्न का दरिया तुम सबके लिए है। यह सब हमारी ओर से तुम सबके लिए ख़ास तोहफा है। आज की रात ख़ूबसूरत लड़कियों के साथ ज़िंदगी को भरपूर एंजॉय करो। कोई लड़की अगर बदतमीज़ी करे, तो सज़ा देना तुम लोगों को बख़ूबी आता है..' यह कहकर वह सीढ़ियों से उतरकर चला गया।'12

खतों के जरिए कहानी को आगे बढ़ाने और क्लाइमैक्स तक ले जाने का इस उपन्यास का कथा प्रवाह दूसरे उपन्यासों से बिलकुल अलग है। नई पीढ़ी के पाठकों के लिए इसमें दोनों तरह की टाइमलाइन दिखती है। ख़त भी और सोशल मीडिया भी। तीस से चालीस साल की उम्र के लोगों के लिए यह उपन्यास उन्हें अपना सा लगता है। तीस की उम्र के लोगों की शायद आखरी पीढ़ी होगी जिन्होंने आखरी बार ख़तों को छुआ होगा। उसमें भी उन लोगों की बात करें जिनके हाथों में प्रेम पत्र आया होगा। उस दौर की ख़ुशबू को महसूस करने के लिए 'सुगंधा' उपन्यास एक अलग अनुभव है। मगर उपन्यासकार आज के दौर के पाठकों को भी सोशल मीडिया के दौर से बाँधकर रखता है। सस्पेंस और थ्रिल पढ़ने वालों के लिए मुरारी गुप्ता का यह उपन्यास काफी रोचक है। अंडरवर्ल्ड और टेररिज्म का कॉकटेल और उनकी कहानियाँ पाठकों को बिलकुल नई दुनिया में ले जाती हैं। उपन्यास में इन कहानियों को पढ़कर यह आसानी से महसूस किया जा सकता है कि मुरारी गुप्ता ने इन दोनों विषयों पर गहन अध्ययन अनुशीलन किया होगा अन्यथा इतने बड़े फलक का उपन्यास रचना बहुत मुश्किल होता है। इस उपन्यास का सूत्रधार एक पत्रकार है जिसका उपन्यास में वर्णित नाम आशीष पटनायक है। लेखक ख़ुद भी पेशे से एक पत्रकार है। लिहाजा उनसे उपन्यास का लहजा और भाषा की जो अपेक्षा थी, उसमें वह खरे उतरे हैं।

मुरारी गुप्ता में कथा में संवेदना रचने की भी असीम संभावनाएँ हैं। इस उपन्यास में उन्होंने वेदना, संवेदना, तीव्रता, विरह और मिलन सबको यथोचित स्थान दिया है। यह उपन्यास वैसे तो एक मुख्य किरदार सुगंधा के इर्द-गिर्द ही रहता है, मगर उसके जरिए उपन्यासकार ने मायानगरी में पसरी नशे की लत को भी बेहद प्रभावी तरीक़े से व्यक्त किया है। फिल्मी दुनिया में नशे की लत कोई नई बात नहीं है। आए दिन इस तरह की घटनाएँ सुनने को भी मिलती हैं। सुगंधा अपने एक ख़त में लिखती हैं- 'मज़ेदार बात यह थी कि ड्रग्स पार्टियों ने यहाँ जेंडर के भेद को मिटा डाला था। मेरी जैसी नई उम्र की कई लड़कियाँ,

जिन्होंने मुंबई में एंट्री ही की थी, वे भी इन पार्टियों में नशे में धुत्त होकर कलाकारों की बाहों में झूमती दिखती थी। ड्रग्स के अवैध कारोबारियों के लिए ये पार्टियाँ किसी जन्नत से कम नहीं थी....नशेड़ी आर्टिस्ट पेंटी, ब्रा, चश्मा, मौजे, घड़ी और अंडरवीयर तक में ड्रग को छिपाकर ले जाते थे। हालाँकि मुंबई की फिल्मी दुनिया में ड्रग्स काफी पुरानी परंपरा है। शम्स, तुम जानते हो यह ड्रग्स कहाँ से सप्लाई होता था? असल में, मायानगरी की नसों में ड्रग्स के अवैध कारोबार का एक बहुत बड़ा नेटवर्क था और अंडरवर्ल्ड का एक बड़ा धंधा यही था।'13

उपन्यास की कहानी पढ़ते वक़्त किसी फिल्मी रील सा महसूस होता है। जिसमें भरपूर कथा प्रवाह के साथ कुतुहल भी है। उपन्यास की कहानी असल में मुंबई की कई वास्तविक घटनाओं को मिलाकर गढ़ी गई है। और इसमें मुरारी गुप्ता की फिल्मी पत्रकारिता का अनुभव काफी काम आया है। मुरारी गुप्ता ख़ुद कई वर्षों तक फिल्म पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं। उनके इस ताज़े उपन्यास को पढ़ते वक़्त लगता है कि उन्होंने इस उपन्यास पर काम करने से पहले मुंबई सिनेमा, परदे के इतर की राजनीति, सिनेमा का अंडरवर्ल्ड और ड्रग माफिया से ताल्लुकात, अंडरवर्ल्ड और आतंकवाद, कश्मीर में आतंकवाद, खाड़ी मुल्कों के आपसी संबंध, खाड़ी मुल्कों में जेहाद के फलने फूलने से लेकर लड़ाकों के जेहादी होने की मानसिकता पर काफी रिसर्च किया है। इस उपन्यास में नायिका सुगंधा और आतंकी संगठन के कुख्यात सरगना सुलेमान के बीच का संवाद लेखक की दार्शनिकता और वैचारिकता को अभिव्यक्त करता है- 'श्रीनगर के लालचौक के नीचे दबी हुई इमारतों की तकलीफ़ को समझने की कोशिश करना। ये इमारतें हज़ारों साल पुराने मंदिरों के अवशेष पर खड़ी है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। आज इन ऐतिहासिक इमारतों के नीचे एक भव्य मंदिर दबा है जो हज़ारों साल पहले चक्रवर्ती सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड़ के मंत्री विष्णु स्वामी ने बनाया था। और मज़ेदार बात यह है कि यह वही ललितादित्य था, जिसकी तारीफ़ें इस्लामिक क्रांति से पहले का अरब समाज करता था अगर तुम्हें फिर भी भरोसा नहीं है तो फारसी के मशहूर अदीब अलबरूनी को पढ़ लीजिए।'14 इस तरह के सुगंधा के लंबे संवाद और सटीक तर्कों के आगे आतंकी सरगना सुलेमान को निरुत्तर दर्शाया गया है।

हिन्दी सिनेमा की कई अभिनेता और अभिनेत्रियाँ की मौत संदेहास्पद हालातों में हुई है। ऐसी मौतों पर मीडिया में बहुत ज़्यादा नहीं लिखा गया। कुछ अभिनेत्रियों का कॅरियर बहुत जल्द ख़त्म हो गया था। उस पर सिनेमा जगत् में बहुत चर्चाएँ नहीं हुई थीं। मुरारी गुप्ता ने इन अनछुए विषयों को अपने उपन्यास में असरदार तरीक़े से लिखने की कोशिश की है। अगर फिल्मी दुनिया एक किताब है तो उसके कुछ स्याह पन्ने भी पढ़े जाने चाहिए। इन्हीं स्याह पन्नों पर दबी-छिपी कहानियों को उन्होंने अपने ही अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। फिल्मी दुनिया में कई अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के अंडरवर्ल्ड से ताल्लुकातों पर विवाद होते रहे हैं। उनके आपसी संबंधों पर ख़ूब बातें होती रही हैं। हालाँकि उनमें कितनी सच्चाई है, यह जाँच का विषय है। मगर एक क़िस्सागो लेखक के लिये ऐसी कहानियाँ अपनी कथा वस्तु का आधार बनती है। फ़िल्मी ग्लैमर की चकाचौंध में आर्टिस्ट किस तरह आत्मघाती रास्तों पर उतर जाता है। कहानी में मुरारी गुप्ता ने इसे काफी हद तक रेखांकित किया है। यह उपन्यास का वह भावुक पक्ष है, जिसमें पाठक भावुकता से साथ कहानी से अटैच हो जाता है। कहानी को पढ़कर लगता है कि सिनेमा जगत् में ग्लैमर, नेम, फेम सबके लिए इतना आसान नहीं होता। यह अपनी क़ीमत वसूलता है। कहानी के ट्विस्ट इसे जीवंत रखते हैं। यह रचना हर उम्र के पाठक के लिए पठनीय है। नई उम्र से लेकर पुरानी पीढ़ी के पाठकों के भीतर भी यह उपन्यास दिलचस्पी पैदा करने में कामयाब होता है। नई पीढ़ी के लिए यह उपन्यास एक बड़ा कैनवास जैसा है। कई मायनों में इस उपन्यास को ग्लोबल नॉवल भी कहा जा सकता है। सिनेमा, क्राइम, अंडरवर्ल्ड, टेररिज्म, जेहाद और ग्लैमर की रहस्यभरी दुनिया में दिलचस्पी रखने वालों के लिए यह उपन्यास पठनीय है।

सारांशत: कथाकार मुरारी गुप्ता ने साहित्य की कहानी यात्रा और उपन्यास जैसी आधुनिक विधा को चुनकर युगीन संवेदनाओं को अभिव्यक्ति किया है। इनकी कहानियाँ जहाँ मानवीय संबंधों और मानवता के सकारात्मक पक्ष के सूक्ष्म भावों को जाग्रत करने में सफल रही है, वहीं इनके यात्रा वृत्तान्त यह ज़ाहिर करते हैं कि किसी स्थान विशेष का मनोरंजन के साथ सैर सपाटा करना ही मनुष्य का इकलौता लक्ष्य नहीं होना चाहिए अपितु संबंधित स्थान के इतिहास, संस्कृति और भूगोल के ज्ञान से भी लाभान्वित होना चाहिए। आधुनिक कथा साहित्य में महाकाव्यात्मक विधा कही जाने वाली विधा उपन्यास में मुरारी गुप्ता का आगमन निश्चित रूप से हिन्दी भाषा और भारतीय पाठक को नवीन विषयों के साथ नवीन भावों के उच्चतम सोपान तक ले जाएगा।

संदर्भ- 1. मोगरी - मुरारी गुप्ता, भूमिका से, बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष 2018, 2. वही, मोगरी कहानी संकलन के फ्लैप से, 3. वही, पृष्ठ संख्या 91, 4. वही, पृष्ठ संख्या 95, 5. वही,पृष्ठ संख्या 32, 6. कहानी संकलन मोगरी की भूमिका से, 7.चलो किसी लंबे सफ़र पे चलते हैं - मुरारी गुप्ता (डॉ रेवंत दान द्वारा लिखी भूमिका पृष्ठ से) अमेजन किंडल संस्करण 2021, 8. बर्फ़ीली राहों पर बहता घुमक्कड़ मन - मुरारी गुप्ता,यात्रा और पड़ाव, परिवार परिशिष्ट, 4 नवम्बर 2024, 9. अरुणाचल प्रदेश : स्वर्ग के रास्ते पहाड़ों से जाते हैं, देशाटन, स्वदेश दैनिक समाचार पत्र, 1 जून 2025,पृष्ठ संख्या 4, 10. सुगंधा - भूमिका - नवीन चौधरी, पृष्ठ संख्या 9, शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2023, 11. डॉ रेवंत दान बारहठ, सुगंधा साहित्य समीक्षा, शिवना साहित्यिक, अक्टूबर दिसंबर 2024, पृष्ठ संख्या 54, 12.वही,पृष्ठ संख्या 253, 13.. वही, पृष्ठ संख्या 129, 14. वही, पृष्ठ संख्या 233

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

विजयमोहन सिंह की आलोचना दृष्टि

डॉ. पूनम सिंह

डॉ. पूनम सिंह
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर- हिन्दी
शम्भु दयाल पी. जी. कॉलेज,
एफ़.एफ़- 9, जीटी रोड, घंटाघर, नया गंज, ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201001
मोबाइल- 8860673306
ईमेल- drpoonamsingh42@gmail.com

शोध सार: विजयमोहन सिंह कहानी लेखन और कथा आलोचना इन दोनों विधाओं को साधने वाले रचनाकार हैं। उनका कथा लेखन और कथा समीक्षा साठोत्तर कहानी से शुरू होकर इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक अनवरत चलता रहा। विजयमोहन सिंह परम्परागत कथा मूल्यों और समीक्षा प्रतिमानों से इतर वैश्विक कथा मूल्यों, समीक्षा मानदण्डों के अनुसार अपनी कथा-दृष्टि निर्मित की है। उनके यहाँ कथा आलोचना रचना के समानान्तर चलती है। इसलिए वह समकालीनता के साथ पुनर्नवा होती रही है। आधुनिकता उनके लिए सबसे बड़ा कथा मूल्य है। जो उनकी कथा दृष्टि को प्रासंगिक बनाती है।

भूमिका: विजयमोहन सिंह साठोत्तरी दशक के महत्त्वपूर्ण कहानीकार और सुप्रसिद्ध कथा आलोचक हैं। नई कहानी के अवसान काल में अकहानी यानि साठोत्तर कहानी जब नया आकार ग्रहण कर रही थी। इन दोनों के संक्रांति काल में विजयमोहन सिंह अपने द्वारा सम्पादित 'सन् साठ के बाद की कहानियाँ' पुस्तक की भूमिकानुमा आलेख 'परिवर्तन की प्रक्रिया' (सन्1965) में कथा आलोचना के नए निकष तय कर रहे थे। दूधनाथ सिंह इसे किसी सम्पादित कहानी संकलन की भूमिका से ज़्यादा कथा आलोचना के ऐतिहासिक दस्तावेज1 के रूप में मूल्यांकित करते हैं। (1) विजयमोहन सिंह अपने सम्पादित इस पुस्तक में चौदह कथाकारों की अट्ठाईस कहानियों के पाठ विश्लेषण और उनके रचनात्मक परिवेश के आधार पर नई कहानी से साठोत्तर कहानी के अलगाव-बदलाव को दर्ज़ करते हैं। वे बतौर कहानीकार, कहानी-समीक्षक इस स्वाभाविक ढलाव और डिटैचमेंट को जितनी पारदर्शिता से लक्षित करते हैं, उतनी ही सघनता से साठोत्तर कहानियों के आगत-अनागत स्वरूप को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। भैरव प्रसाद गुप्त, नामवर सिंह, मार्कण्डेय, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर के नेतृत्व में चलने वाले नई कहानी आन्दोलन को ख़ारिज करने के लिए विजयमोहन सिंह दो केन्द्रीय आधार तय करते हैं- 1) यथार्थवाद और 2) आंचलिकता। ये दोनों ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर यह आन्दोलन चलाया जा रहा था। वे इन दोनों कथात्मक प्रवृत्तियों को 'रोमेंटिक' कहकर ख़ारिज करते हैं।

विजयमोहन सिंह की सबसे बड़ी आपत्ति नई कहानी के यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर है। इसमें यथार्थ का वास्तविक रूप चित्रित न होकर आभासी स्वरूप चित्रित है। कहानीकार अपनी कथा भाषा में भोक्ता या सफ़रर न होकर एक अन्य व्यक्ति है। यथार्थ की इसी सतही रूप की अभिव्यक्ति रोमांटिक मिश्रित आंचलिकता के रूप में परिणत हुई। इसे वे यथार्थ नहीं, यथार्थ का ककहरा मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रयुक्ति के आधार पर साठोत्तर कहानी में यथार्थ का स्वरूप इस प्रकार है 'वह शक्ल यथार्थ के साथ-साथ उसकी अपनी भी है।..आज की कहानी का सत्य कहानीकार की यह अनुभूति है कि 'अंतिम परिणति' कुछ नहीं होती, छोटी-छोटी यातनाएँ उसे विचलित नहीं करती, न ही वह उन्हें मैग्नीफाइंग ग्लास से देखता है- छोटी-छोटी घटनाएँ केवल छोटी घटनाएँ हैं, उन्हें बढ़ाकर दिखाना ढेर-सी रोमांटिक कहानियों की तरह मूर्खता है। (2) यथार्थ को लेकर नई कहानी और साठोत्तर कहानीकारों के अवधारणा में अंतर था। अत: इन दोनों के कहानियों का स्ट्रक्चरल ट्रीटमेंट हर स्तर पर अलग था। 'पुराना कहानीकार समस्याओं को 'सुलझाता' था। क्योंकि वह समस्याओं के बाहर होता था- वह उन्हें सुलझाना अपना कर्त्तव्य समझता था। लेकिन आज का कहानीकार समस्या के भीतर है, इसलिए उसे सुलझाता नहीं, सफ़र करता है।' (3) साठोत्तर कहानी सम्बन्धों पर शुरू तो होती है। लेकिन उसकी समाप्ति अर्थहीनता बोध पर होती है। उनका कहना है कि 'एक व्यापक 'अर्थहीनता' जो किसी कुंठा या निराशा की परिणति नहीं है- केवल एक मोहभंग की तर्कसंगत परिणति' है। आज का प्रेम आदर्श या मूल्य नहीं है एक स्थिति या मात्र एक अनुभूति है और यह अनुभूति क्षमता की ही नहीं 'अक्षमता' और 'विवशता' की है।...यह आज की ज़िंदगी के प्रेम का यथार्थ है। हम प्यार करते हैं, ऊबते हैं, नफ़रत करते हैं, तब या तो भागते हैं, या इस ऊब से समझौता कर लेते हैं- अपने इस अंश को संवेदनाशून्य बना लेते हैं।..आज की तमाम कहानियों में प्रेम की यही बदली हुई शक्ल

देखने को मिलती है।(4) इसलिए उसमें एक तटस्थ और रूखा मानवीय व्यवहार और दृष्टिकोण आकार ग्रहण करता है। अपने अलावा नए 13 अन्य कहानीकारों- अक्षोभ्येश्वरी प्रताप, काशीनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, गुणेन्द्र सिंह कम्पानी, दूधनाथ सिंह, प्रबोध कुमार, महेन्द्र भल्ला, मधुकर सिंह, रवीन्द्र कालिया, रामनारायण शुक्ल, विजयमोहन सिंह, विजय चौहान, श्रीकांत वर्मा, ज्ञानरंजन आदि के कहानियों द्वारा नई कहानी के वैशिष्ट्य को ख़ारिज़ करते हुए साठोत्तर कहानी को स्थापित करते हैं।

विजयमोहन सिंह कहानी आलोचना को लक्षण ग्रंथों की तरह सूत्रबद्ध नहीं करते, बल्कि कहानी की अंतरात्मा से आते संवेदनात्मक बदलाव की प्रतिध्वनियों के अनुगूँज को लक्षित करते हैं। संवेदना का सबसे बड़ा असर मानवीय सम्बंधों पर पड़ता है। अत: वे सम्बंधों के संवेदनात्मक बदलाव को अपनी कथा आलोचना का टूल बनाते हैं। उनकी दृष्टि में नई कहानी 'सम्बंधों की कहानी' है तो साठोत्तर कहानी 'सम्बंधों के मोहभंग' की कहानी है। यहाँ कहानीकार स्वयं अपनी कहानी में भुगतता हुआ शामिल है। यहाँ कहानी के पात्रों और कहानीकार के बीच कोई स्पेस या अंतराल नहीं है। द्वन्द्वात्मक रूप से दोनों एक ही है। अत: इसमें यथार्थ अपने वास्तविक रूप में अभिव्यक्त होता है।

उनकी साठोत्तर कथा आलोचना की मज़बूत स्थापनाएँ सम्बंधों के तनाव, यथार्थ और उसके परिवेश पर केन्द्रित है। दूधनाथ के शब्दों में- 'इस तरह '60 के बाद की कहानियाँ' जैसा संकलन तैयार करते वक़्त विजयमोहन इस सफ़रर को ही एक 'प्रस्थान बिन्दु' या 'लांचिंग पैड' की तरह इस्तेमाल करते हैं।'(5)

उनकी पहली प्रकाशित पुस्तक 'छायावादी कवियों की आलोचनात्मक दृष्टि' (1960) है। इसमें उन्होंने छायावादी कवियों की 'रचनात्मक काव्य दृष्टि' पर विचार किया। विजयमोहन सिंह कथा आलोचना के क्षेत्र में अपने शुरूआती दौर से ही एक अलग और मौलिक पहचान रखते हैं। उनकी दो पुस्तकें 'आज की कहानी' (1983) और 'कथा समय' (1993) को भी समझने की ज़रूरत है। विजयमोहन सिंह की पुस्तक 'आज की कहानी' में 65 और 82 के बीच लिखे गए कुल 27 लेख संग्रहीत हैं, जिनमें कई स्वतंत्र निबंध हैं और कई पुस्तक समीक्षाएँ हैं। अपने 'आज की कहानी' पुस्तक में उन्होंने गुलेरी, प्रेमचंद और मुक्तिबोध की कहानियों पर स्वतंत्र निबंध लिखा हैं। साथ ही नई कहानीकारों (मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, रामकुमार, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, अमरकांत और शेखर जोशी) और साठोत्तरी कहानीकारों पर भी लिखा है। इस पुस्तक में निर्मल वर्मा, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया पर दो-दो लेख हैं। अपने 'कथा समय' पुस्तक में विजयमोहन सिंह ने रेणु, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर की कहानियों पर लिखा है तो वहीं जैनेन्द्र, कृष्णा सोबती, ममता कालिया और मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों के साथ-साथ हिन्दी उपन्यासों के वर्तमान परिदृश्य पर भी विचार करते हैं। उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों पर भी बहुत सुविचारित ढंग से लिखा।

उन्होंने अपने कहानी संग्रहों की भूमिका में भी कथा आलोचना के सूत्र दिए हैं। 'शेरपुर 15 मील' की भूमिका में विजयमोहन सिंह हिन्दी कहानियों से 'ग़ायब होती पठनीयता' अथवा 'पढ़ने का सुख' पर सवाल उठाते हैं। उनकी दृष्टि में पठनीयता कहानी लेखन की पहली शर्त है।

विजयमोहन सिंह मानते हैं कि कहानी में आधुनिक, आधुनिकता भाव बोध, कथा-भाषा, शिल्प- संरचना जैसे अंतरंग तत्व महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं कि 'माधवराव सप्रे की कहानी 'एक पथिक का स्वप्न' को हम इसलिए भी आधुनिक मान सकते हैं क्योंकि इसमें आधुनिकता की अवधारणा स्वतंत्रता की अवधारणा के साथ-साथ ही विकसित हुई और 'एक पथिक का स्वप्न' में आधुनिक संदर्भ में पहली बार 'स्वतंत्रता' शब्द का प्रयोग किया गया था।(6) बाद में वे प्रसाद के साहित्य में 'स्वतंत्रता' को एक 'बीज शब्द' (की वर्ड) के रूप में रेखांकित करते हैं। 'उसने कहा था' कहानी को उन्होंने हिन्दी साहित्य की पहली रोमांटिक संवेदना या स्वच्छन्दतावादी भाव बोध की रचना कहा है।(7) उनकी दृष्टि में 'उसने कहा था' (1915) से हिन्दी कहानी के विशाल मानचित्र की रेखाओं का निर्माण होता है। प्राविधिक रूप से यह कहानी उनको विस्मित करती है। 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' इन दोनों कहानियों में वे काँगड़ा से सम्बद्ध उस गहरी आंचलिकता का उत्स देखते हैं, जो आगे चलकर नई कहानी का महत्त्वपूर्ण स्वर बना। विजयमोहन सिंह गुलेरी की इन तीनों कहानियों को 'प्रेम की दिवास्वप्न की कहानियाँ' माना हैं। एक महत्त्वपूर्ण सवाल भी इस कहानी के ज़रिए वे करते हैं- 'क्या यह माना जा सकता है कि हिन्दी कहानी के माध्यम से 'छायावाद रोमांटिक भाव बोध' पहले आया और कविता में तनिक देर से?'(8)

विजयमोहन सिंह ने 'जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ' की भूमिका में 'ग्राम', 'आकाशदीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खंडहर', 'सुनहरा साँप', 'समुद्र- संतरण', 'मधुआ', 'घीसू', 'चूड़ीवाली', 'आंधी', 'पुरस्कार', 'गुण्डा', 'सालवती', 'छोटा जादूगर' आदि कहानियों को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह उनकी कथा आलोचना दृष्टि को समझने में भी सहायक है। वे 'ग्राम' को 'हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी कहते हैं' जिसमें 'सामंतवाद की अमानवीयता' प्रदर्शित है। वे इसे एक 'ट्रेंड सेटर कहानी' कहते हैं। 'आकाशदीप' में वे प्रसाद को ग्रीस तथा शेक्सपियर की त्रासदियों के निकट पहुँचते देखते हैं और तुर्गनेव के उपन्यास 'टारेट्स ऑफ स्प्रिंग' (1872) के नायक का स्मरण कर प्रसाद को विडम्बनाओं के रचनाकार मानते हैं। साथ ही वे इस कहानी में 'व्याख्याओं की संभावित असीमता' भी देखते हैं, जिससे कोई रचना कालजयी बनती है। विजयमोहन सिंह ने प्रसाद को 'अनेक विधेयात्मक अस्वीकारों का कथाकार' कहा है। वे जयशंकर प्रसाद की 'ममता' कहानी में वे वैभव और ऐश्वर्य का ही नहीं, सम्मान का भी अस्वीकार पाते हैं। 'स्वर्ग के खंडहर' को

उन्होंने 'हिन्दी की संभवत: पहली फंतासी (फैंटेसी)' कहानी कहा है।(9) वे जयशंकर प्रसाद के योगदान को इस रूप में भी उल्लेखित करते हैं- 'सुनहला साँप' में 'पंक्तियों के बीच अलक्षित अर्थ भर देने की कला' में प्रसाद हिन्दी कहानीकारों में उस समय अकेले कथाकार थे। यही कारण है कि प्रसाद के यहाँ कहानियों में अर्थ के अनेक स्तर और आयाम खुलते हैं। संकेत, प्रतीक, व्यंजना पर उनका विशेष ध्यान है। इसी तरह वे 'सालवती' कहानी को 'ऐतिहासिक से अधिक सामाजिक तथा समकालीन' कहानी मानते हैं। 'सालवती' कहानी में प्रसाद आर्थिक स्वतंत्रता को ही वास्तविक स्वतंत्रता मानते हैं। विजयमोहन सिंह जयशंकर प्रसाद को उनकी कहानियों के आधार पर उन्हें तत्व चिंतक के साथ ही हिन्दी का पहला दार्शनिक कथाकार मानते हैं। 'स्वर्ग के खंडहर' कहानी में प्रसाद के इस कथन 'स्वर्ग बनाने की हर कल्पना धरती पर एक नरक ही रचती है' के संकेत को केवल कथ्य व्यंजना के स्तर पर ही नहीं, भाव-भंगिमा के अनेक स्तरों पर प्रतिध्वनित होते देखते हैं। वे 'यहाँ तक कि आने वाले दूसरे विश्व युद्ध की परिणतियों के रूप में भी।'(10) विजयमोहन सिंह के यहाँ प्रसाद की कहानियों का बारीक विश्लेषण हमें मिलता है। उनकी दृष्टि में रचना जैसी दिखती है, वैसी ही नहीं होती, जब हम उसके अन्तर्जगत में प्रवेश करते हैं तो उसका अर्थ ही नहीं, संदर्भ भी बदल जाता है। कहानी का यह अंत: संस्कार विजयमोहन सिंह के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। 'आकाशदीप' कहानी की शुरूआत ही जिस नाटकीय संरचना तथा संवाद से होती है। उसका निर्वाह कहानी की पूरी रचना-प्रक्रिया में निरंतर चलता रहता है। घृणा और प्रेम का यह सहअस्तित्व उसी नाटकीय विडम्बना का चरमोत्कर्ष है। जिसे हम 'नाटकीयता' कहते है। यहाँ प्रसाद जी ग्रीक तथा शेक्सपियर की त्रासदियों के निकट पहुँच जाते हैं। जहाँ ऐसी विडम्बनाएँ ही मानवीय सम्बंधों का मूलाधार प्रतीत होती है।'(11)

विजयमोहन सिंह जयशंकर प्रसाद की कहानियों में निहित काव्यात्मकता तथा कल्पनाशीलता को अनावश्यक नहीं मानते और न ही प्रभावान्विति, शिल्प के स्तर पर प्रेमचंद से कमतर ही। वे लिखते हैं- प्रसाद जी ने अपनी कहानियों मंभ वस्तु और शिल्प सम्बंधित जितने प्रयोग किए, उतना आगे चलकर संभवत: अज्ञेय ने भी नहीं किए होंगे।(12)

प्रसाद के कथा-भाषा में प्रयुक्त तत्समनिष्ठ संस्कृत शब्दावली की बहुत आलोचना हुई है। विजयमोहन सिंह की दृष्टि में इसमें प्रसाद का दोष नहीं, यह हमारे संकीर्ण दृष्टिकोण की परिसीमा है। प्रसाद की कथा भाषा हमारी सांस्कृतिक समावेशी विरासत की शब्द सम्पदा से निर्मित है। जयशंकर प्रसाद जिस ऐतिहासिक, सांस्कृतिक कथा भाषा को अपनी कहानियों में गढ़ते हैं। उसके प्रति हिन्दी जगत् की अनदेखी, उपेक्षा के कारण ही आगे चलकर हिन्दी कथा भाषा समृद्ध नहीं रह गई। नतीजा यह हुआ '....हमारी कथा भाषा झीनी और इकहरी होकर अख़बारी भाषा बनकर रह गई है।'(13)

विजयमोहन सिंह का मानना है कि प्रेमचंद का महत्त्व साहित्यिक से ज़्यादा ऐतिहासिक इस रूप से है- उन्होंने हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना, यथार्थबोध तथा सामान्य मनुष्य को लगभग एक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया और जो आगे आने वाले उपन्यासकारों के लिए ही नहीं, बल्कि समीक्षकों के लिए यह आकलन का प्रतिमान या निकष बन गया। प्रेमचंद द्वारा निर्मित उपन्यास की यह कसौटी आज भी काम कर रही है.. प्रेमचंद की प्रासंगिकता इसी अर्थ में है।(14) विजयमोहन सिंह ने प्रेमचंद की कहानियों को उपन्यासों से अधिक महत्त्व दिया है। उनकी दृष्टि में प्रेमचंद की कहानियाँ किसी ख़ास व्यक्ति व वर्ग विशेष की न होकर ज़िंदगी की कहानियाँ हैं। क्योंकि 'प्रेमचंद ज़िंदगी को उसके सम्पूर्ण व्यास और बहुरंगेपन में देखना चाहते थे।'(15) उनके लिए प्रेमचंद का उत्तरोत्तर विकास महत्त्वपूर्ण है। उनका मत है कि संवेदना में परिवर्तन उपन्यास से पहले कहानी में परिलक्षित होता है। 'संवेदना में परिवर्तन ही क्रमश: विचारधारा में परिवर्तन बन जाता है।' इसे वे प्रेमचंद की कहानी 'क़फ़न' के माध्यम से समझाते हैं... 'क़फ़न' उस डिह्यूमनाइजेशन की प्रक्रिया को सबसे पहले सामने लाती है। जो एक तरह से आज पूरे साहित्य का चरित्र लक्षण बन गया है- यही नहीं, 'क़फ़न इस डिह्यूमनाइजेशन के कारणों को पूरी बेबाकी तथा वैचारिक स्पष्टता से सामने लाता है।' उन्होंने प्रेमचंद की कहानियों को एक दूसरे से गूँथा हुआ माना है। उदाहरण के लिए 'सवा सेर गेहूँ' में 'क़फ़न' के माधो और घीसू की स्थिति का स्रोत देखते हैं, जो जीवन स्थिति है, वे उसके कारणों के तह तक जाते हैं। (16)

विजयमोहन सिंह प्रेमचंद के योगदान को इस प्रकार याद करते हैं- 'प्रेमचंद ने केवल ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ ही नहीं, उसे शक्ति प्रदान करने वाले भारतीय सामंतों और जमींदारों के ख़िलाफ़ भी लड़ाई लड़ी। उनकी लड़ाई मेरी दृष्टि में गांधी से बड़ी थी।'(17) विजयमोहन सिंह ने प्रेमचंद की अलक्षित कहानियों 'दो कब्रें', 'मृतक भोज' पर भी विचार किया। 'दो कब्रें' कहानी में प्रेमचंद भारतीय संदर्भ में जिस अकेलापन या अजनबीपन (एलियेनेशन) को सर्वाधिक जटिलता, सूक्ष्मता और प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। वह अद्वितीय है। इसी तरह 'मृतक भोज' कहानी में पंचायत संस्था का खोखलापन प्रदर्शित है, इसमें विचरित धन पिशाच दृश्यमान हैं और इसमें शोषण तंत्र की अनेक इकाइयाँ विद्यमान हैं। विजयमोहन सिंह प्रेमचंद का सर्वथा नवीन मूल्यांकन करते हैं।

जैनेन्द्र पर लिखते हुए वे 'भारतीय संदर्भ में आधुनिकता को नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता' पर बल देते हैं। जैनेन्द्र ही ऐसे कथाकार हैं जो अपने सम्पूर्ण साहित्य के केन्द्र में हमारे समक्ष 'नैतिकता का प्रश्न' रखते है। जैनेन्द्र के यहाँ मितकथन, संक्षिप्तता और सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मकता है और ये आधुनिक कथा साहित्य के अनिवार्य गुण है।' (18) विजयमोहन सिंह ने 'सुनीता' उपन्यास को 'गांधीवादी नैतिक मूल्य-दृष्टि को स्थापित' करने वाला उपन्यास कहा है। वे

रचना में विचारधारा के घुल-मिल जाने को किसी कृति की महत्ता की बड़ी कसौटी मानते हैं, जिसे वे 'सुनीता' में पाते हैं। 'त्याग पत्र' उनकी दृष्टि में एक रचनात्मक विस्फोट है। विजयमोहन सिंह जैनेन्द्र के कथा साहित्य की उन विशिष्टताओं को रेखांकित करते हैं। जो उन्हें अन्य कथाकारों से अलग और श्रेष्ठ बनाता है। उनकी कहानियाँ विशेषकर 'जान्ह्वी' कहानी का प्रत्येक पाठ अर्थ का एक नया स्तर उद्घाटित करता है।

अज्ञेय ने हिन्दी कहानी में कई प्रयोग किए और नए चिंतन सूत्र भी दिये। अपने कहानी संग्रह 'जयदोल' में वे कहानी को 'दौड़ती लहर का गति-चित्र' कहते हैं और 'यथार्थ को एक मिथ्या धारणा या आत्मप्रवंचना' मानते हैं। अपनी यथार्थ की इस परिभाषा को अज्ञेय अपनी कहानी 'पठार का धीरज' के माध्यम से व्यक्त करते हैं। अज्ञेय ने यथार्थ को विषयीगत माना है, विषयगत या वस्तुगत नहीं। वे प्रश्न करते हैं कि 'स्वप्न, कल्पना या प्रतीति' यथार्थ क्यों नहीं हो सकता? प्रेमचंद और अज्ञेय यथार्थ के संदर्भ में दो ध्रुवों पर स्थित हैं। विजयमोहन सिंह अज्ञेय की यथार्थ सम्बंधी अवधारणा पर सवाल उठाते हैं कि विषयीगत प्रतीति के अतिरिक्त यथार्थ का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता। अज्ञेय की यह अवधारणा उन्हें 'निरर्थकता अथवा ऐबसर्डिटी' की अवधारणा के निकट लाकर खड़ा करती है। 'कोठरी की बात' कहानी इस अपवाद से मुक्त कहानी है। जो हिन्दी कहानी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मुकाम हासिल करती है। अज्ञेय की कहानियाँ ही नहीं, उनकी भाषा भी चिन्तनपरक है। लेकिन 'हीलीबोन की बतखें' विचार या चिंतन से परे अलग तरह की कहानी है। वे इस कहानी का संदर्भ दूसरे विश्व युद्ध से जोड़ते हैं। उनका मानना है कि यह 'कहानी और हिन्दी कहानी की परम्परा से विपरीत' है। इसे वे अपने ढंग से नई कहानी की शुरुआत कहते हैं। जो 'विशेष विश्लेषण की माँग करती' है। इसे वह बतखों की कहानी से अधिक हीलीबोन की कहानी मानते हैं। विजयमोहन कहानी के मर्मोद्घाटक आलोचक हैं। विजयमोहन सिंह का बतौर आलोचक योगदान ये है कि उन्होंने आलोचना के परम्परागत नज़रिए से हटकर हिन्दी कहानियों को नए सिरे से पढ़ा, समझा और उसे विश्लेषित किया। वे हिन्दी कहानी को एक भाषा के वृत्त से बाहर अन्य भाषिक, वैश्विक कहानियों के समकक्ष रखकर देखा और विश्लेषित किया हैं। उनका दृष्टि विस्तार उनके आलोचना कर्म को व्यापक बनाता है। वे मानते हैं कि 'अज्ञेय ने हिन्दी कहानी को जो नई दिशा दी, उसका विकास और विस्तार आगे चलकर निर्मल की कहानियों में हुआ।' (19)

निष्कर्ष: विजयमोहन सिंह की कथा आलोचना की ख़ूबी है कि वे प्रत्येक कहानी की निजी विशेषताओं की संरचनात्मक स्तर पर पहचान करते हैं। साथ ही दूसरे कहानीकारों से उनकी भिन्नता और निजता को रेखांकित करते हैं। जिसमें वे एक साथ रचना का प्रस्थान बिन्दु तय करते हैं और उसका सामाजिक संदर्भ भी उद्घाटित करते हैं और रचना के कला पक्ष पर भी बल देते हैं। उन्होंने अपने विश्व कथा साहित्य के व्यापक अध्ययन के आधार पर कथा चिंतन के सार्वभौमिक सूत्र दिए। वे हेमिंग्वे के 'हिडेन फैक्ट' के ख़ासे प्रशंसक रहें और चेखव, सार्त्र का विशेष रूप से ऋणी रहे। वे कहानी में मेटाफिज़िक्स को भी महत्त्व देते हैं।

विजयमोहन सिंह के कथा आलोचना का वृत्त काफी बड़ा है। उन्होंने लगभग सभी कथाकारों पर विचार किया है। लेकिन व्यापक रूप से 15 कहानीकारों- गुलेरी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, अमरकांत, रेणु, रघुवीर सहाय, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया और उदयप्रकाश का स्वतंत्र रूप से विचार किया है। उन्होंने नए कथाकारों की कृतियों पर जैसे पंकज सुबीर के उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं', कुणाल सिंह के उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान', मनोज तिवारी के उपन्यास 'सप्ताहांत का अंत' की भी समीक्षाएँ लिखी हैं।

विजयमोहन सिंह ने अपनी आलोचना दृष्टि पर समकालीन साहित्यिक आंदोलनों, वादों और विमर्शों के प्रभावाच्छन्नता और समर्थन के धुंध से मुक्त रखा। वे प्रभाव को विकास रूप में ज़्यादा महसूस करते हैं। वे अपनी आलोचना में पुनर्मूल्यांकन, पुनर्विचार, पुनर्स्थापना को बहस के केन्द्र में लाते हैं। पूर्व और पाश्चात्य विचारों के ज़रिए टेस्टीफाई कर उसे विश्लेषणपरक बनाते हैं। साथ ही वे समय की नब्ज़ टटोलते हुए साहित्येतिहास, आधुनिकता, समकालीनता, उत्तर आधुनिकता, विखंडन जैसे अनेक सिद्धांतों के साथ जोड़कर देखते हैं। विजयमोहन सिंह कथा आलोचना में सदैव सार्वभौमिक कथा मूल्य, प्रविधि कथा तकनीक के अंत:सूत्र स्वीकारने के पक्षधर रहे हैं।

संदर्भ-

1) सिंह विजयमोहन,सिंह मधुकर: संपादक: साठ के बाद की कहानियाँ, परिवर्तन की प्रक्रिया, तलघर प्रकाशन इलाहाबाद, पुनर्प्रकाशन 2016, पृ.7, 2) पूर्वोक्त, पृ0:14-15, 3) पूर्वोक्त, पृ.:15, 4) पूर्वोक्त, पृ.:17, 5) पूर्वोक्त, पृ.:08, 6) सिंह विजयमोहन: आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2014,पृ.: 404, 7) सिंह विजयमोहन :बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ.: 161, 8) सिंह विजयमोहन: आज की कहानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1983, पृ.:14, 9) सिंह विजयमोहन: समय और साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली, 2012, पृ.:11-12, 10) पूर्वोक्त, पृ.:13, 11) पूर्वोक्त, पृ.:105, 12) सिंह विजयमोहन: बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, 2019, पृष्ठ162, 13) पूर्वोक्त, पृ.165, 14) पूर्वोक्त, पृ.92, 15) सिंह विजयमोहन:आज की कहानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1983, पृष्ठ 19, 16) पूर्वोक्त, पृ.23, 17) पूर्वोक्त, पृ.20, 18) सिंह विजयमोहन:समय और साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली, 2012, पृ.:26, 19) सिंह विजयमोहन:बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, 2019, पृष्ठ:174,

000

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

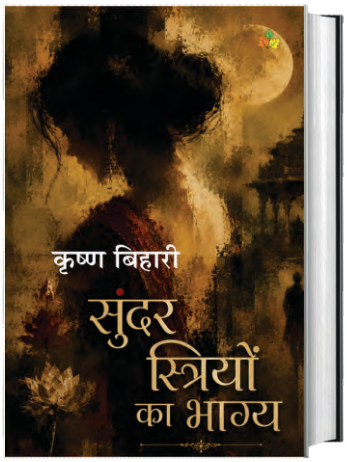

सुंदर स्त्रियों का भाग्य
कहानी संग्रह
कृष्ण बिहारी
मूल्य- 375 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-399-2

औरत के भीतर औरत
कहानी संग्रह
सुधा जुगरान
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-001-4

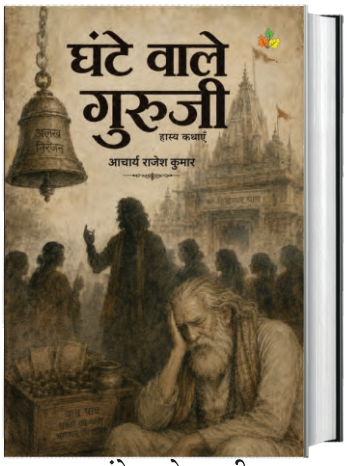

घंटे वाले गुरुजी
हास्य कथाएँ
आचार्य राजेश कुमार
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-003-8

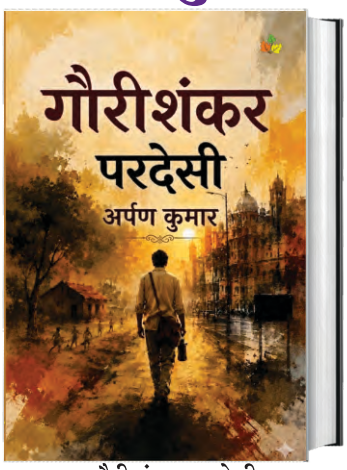

गौरीशंकर परदेसी
कहानी संग्रह
अर्पण कुमार
मूल्य- 375 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-002-1

अल्टिमेट टाइम मैनेजमेंट मास्टरी
आलेख संग्रह
डी. के. गोस्वामी
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-21-8

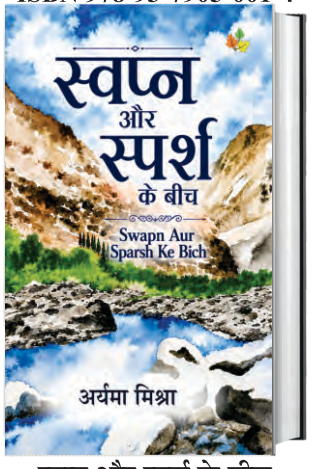

स्वप्न और स्पर्श के बीच
कविता संग्रह
अर्यमा मिश्रा
मूल्य- 180 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-006-9

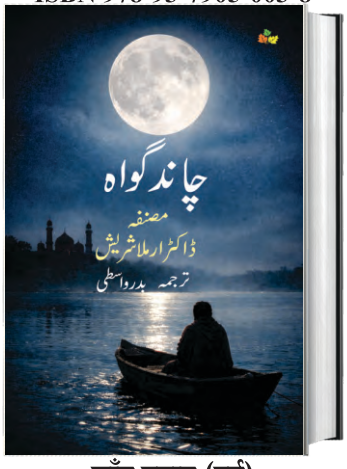

चाँद गवाह (उर्दू)
उपन्यास- उर्मिला शिरीष
अनुवाद- बद्र वास्ती
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-7905-658-0

विचार और समय भाग 2
लेख संग्रह
सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-23-2

सुर- सफ़र एक अनचाही लड़की का
उपन्यास
नीलिमा शर्मा
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-78-2

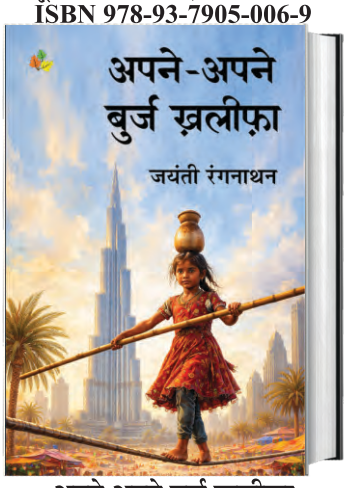

अपने अपने बुर्ज ख़लीफ़ा
उपन्यास
जयंती रंगनाथन
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-19-5

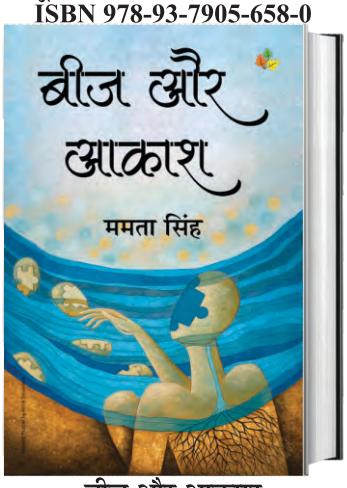

बीज और आकाश
उपन्यास
ममता सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-84-3

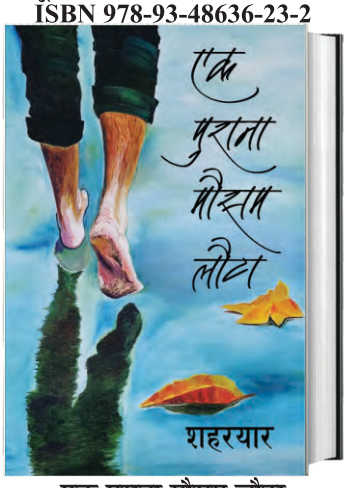

एक पुराना मौसम लौटा
कविता संग्रह
शहरयार
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2026
ISBN 978-93-48636-99-7

शिवना प्रकाशन एलएलपी, शॉप नं. एल 7-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल shivna.prakashan@gmail.com वेबसाइट www.shivnaprakashan.com
Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर अमेरिका से पधारे बैंक ऑफ़ अमेरिका के वाइस प्रेसिडेंट श्री आनंद भाटिया तथा सुप्रसिद्ध लेखक श्रीमती रेखा भाटिया का स्वागत समारोह विधायक श्री सुदेश राय की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।